पुस्तक प्राप्ति स्थान
वैद्य अमर चन्द जैन
पो० बरनाला (पंजाब)

पूज्य श्री जीवनराम जैन पुस्तक माला पुष्प-[illegible]

लेखक कविरत्न श्री चन्दन मुनि जी महाराज
सम्पादक श्री नेमीचन्द जी पुगलिया
प्रकाशक पूज्य श्री जीवनराम प्रकाशक समिति
मण्डी गीदड़बाहा (पंजाब)

चित्रकार श्री बृज जी, जालन्धर

संस्करण द्वितीय
वीर निर्वाण सम्वत् २५००
विक्रम सम्वत् २०३१

मुद्रक आत्म जैन प्रिंटिंग प्रेस:
३५० इण्डस्ट्रियल एरिया-ए,
लुधियाना-३

अर्धमूल्य : पांच रुपए

श्रद्धेय आचार्य-सम्राट श्री १००८

श्री आनन्द ऋषि जी महाराज को

शुभ-आशीर्वाद

"श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ का सौभाग्य है कि उसमें श्री चन्दनमुनि जो जैसे विद्वान् वक्ता, गंभीर स्वभाव, कविरत्न मुनि सुशोभित हैं।

इन्होंने—'संगीत भगवान पार्श्वनाथ', 'सगीत श्रीजम्बू कुमार' 'संगीत-इषुकार', 'संगीत संजय राजऋषि', 'सगीत सती दमयन्ती', 'संगीत गजसुकुमाल', 'संगीत सबला नारी', 'संगीत चार चरित्र,' 'संगीत निर्मोही नृप' आदि ऐतिहासिक चरित्रों की रचना की है इसी प्रकार 'गीतों की दुनियां', 'सगीतों की दुनियां,' नामक ग्रन्थों में सामाजिक, धार्मिक, काव्यों का निर्माणं करके उन्हें प्रकाशित किया है।

यह साहित्य मुमुक्षु आत्माओं के लिये नवोत्साह, नई चेतना, नई उमंगें प्रदान करता है। सुशिक्षित लोगों के दिल और दिमाग़ को पौष्टिक भोजन देता है। यह साधारण तथा पठित जनता के लिये सरल, सुबोध काव्यरूप होने से लाभप्रद है, क्योंकि यह साहित्य, प्रेरणा का मंगलमय सूत्र, संस्कारों का संशोधक, जीवन का मापदण्ड, भावनाओं का सदेशवाहक, सोई हुई आत्माओं को जागृत करके गतिशील बनाने वाला है।

धर्मानुरागी एवं साहित्य प्रेमी बन्धुओं एवं भगिनियों को इस साहित्य से लाभ प्राप्त करना चाहिए।

वन्दना : अभिनन्दन

श्री तिलकधर शास्त्री

एक नहीं अनेक वर्ष
पूर्व जैन जगत में
छाया था नवीन हर्ष
उदित हुआ शुभ वसन्त
आया जैन जगती पर
पुनीत प्रतिभा ले एक सन्त
विकास शील सन्तत्त्व
जिसका था अति महत्त्व
कवित्व भी जिसके समक्ष
कर उठा वन्दन था
और नहीं कोई वह
कवि मुनि 'चन्दन' था

आज भी है वसन्त
बैठे हैं चन्दन सन्त
दीक्षोत्सव की स्मृतियाँ ही
ला रही सुख अनन्त
इस अनन्त उल्लास में ही
करता है मन वन्दन
'तिलक' रूप सब के ही
मस्तक पर है 'चन्दन'
आशा है वन्दन की
सतत परम्परा को
स्वीकृत करेंगे ही
श्रद्धेय मुनीश्वर ये
'चन्दन' कवीश्वर ये
साथ ही चरणार्पित हैं
शत-शत अभिनन्दन।
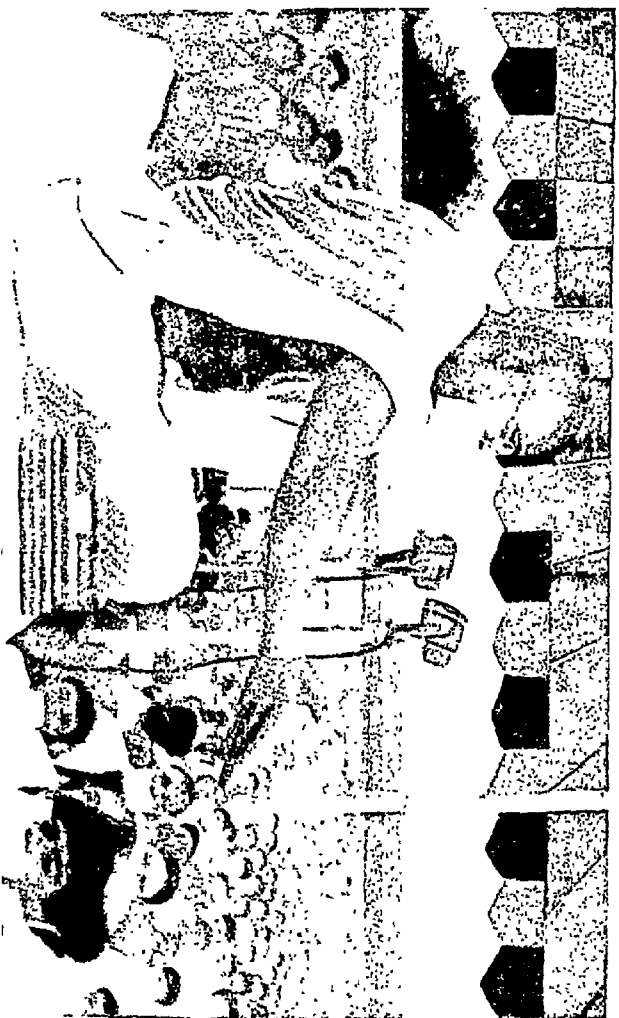
कविरत्न श्री चन्दन मुनि जी द्वारा जनोद्बोध

श्री हंसराज बच्छराज नाहटा
सरदारशहर निवासी
द्वारा
जैन विश्व भारती, लाडनूं
को सप्रेम भेंट –

लेखकीय

कहानियां चलीं पलीं फलीं फूलीं और फैलीं। जन-श्रुति द्वारा दुनिया के इस कोने से उस कोने तक पहुंचीं। युग की हवा सभी को लगती है तब कहानियां कैसे बच सकती हैं? कथा-प्रेमियों ने समय-समय पर उन्हें नये परिधानों में प्रस्तुत किया।

सभी कहानियां वैसे ही स्वतन्त्र-अस्तित्व वाली होती हैं जैसे प्रत्येक प्राणी। सभी कथाएं अपनी-अपनी भाषा में बोलती हैं जैसे प्रत्येक प्रान्तीय जनता। प्रत्येक स्थल भिन्न-भिन्न होने पर भी धर्म और नीति की कहानियां एक हैं जैसे स्वर्ण की रेखाएं। कौन कब चला और कहां तक पहुंचा यह ज्ञान-वीथियों को नहीं होता, कहानियां यह जानने का प्रयत्न भी नहीं करतीं, कि किसने हमें कहां तक पढ़ा और क्या लिया।

मैंने कथाओं के माध्यम से बहुत कुछ पाया और

दिया है। कुछ सुनी हुई, कुछ पढ़ी हुई कहानियों में मे कुछ कहानियों को चुनकर पद्य में बांधने का प्रयत्न किया है मैंने। प्रेम से बांधने पर प्रत्येक प्राणी बंध जाता है तब कहानियां क्यों न बंधती? हां इतना अवश्य है कि इन्हें बांधने पर भी ये खुली की खुली हैं, अतः सुनने वाला कहता है कहानी कहां तक चली? पद्य या पद्य की संख्या से पठित वाचित स्थल को कौन स्मरण दिलवाता है?

प्रस्तुत पुस्तक "संगीतों की दुनिया" में चौबीस चरित्र-प्रधान कहानियां और एक-यात्रा कहानी है। भगवान महावीर की पच्चीसवीं निर्वाण-शताब्दी के उपलक्ष्य में कहानियों की संख्या २५ रखना ही उचित समझा गया।

आशा है इससे कथा-प्रेमी (वक्ता और श्रोता) सज्जन लाभान्वित होंगे। साथ ही चाहे मूक भाव से ही सही कहानियां भी रचनाकार का उपकार मानेंगी।

—चन्दन मुनि
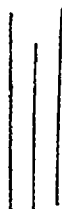
कविरत्न श्री चन्दन मुनि जी (पंजाबी) का साक्षात् परिचय तो अभी-अभी हुआ है, किन्तु आपकी सुन्दर रचनाओं से मैं बहुत समय से परिचित हूं।

"वाक्यं रसात्मकं काव्यं" के अनुसार वह वाक्य ही काव्य है जिसमें रसानुभूति हो। श्री चन्दन मुनि जी की रचनाएं सभी रसों को साथ लेकर इसलिये चलती हैं कि वे चरित्र-प्रधान होती हैं। जिन रचनाओं में जीवन के प्रत्येक अंगों का सांगोपांग विवेचन हो वे समादरणीय क्यों न होंगी?

यदि आपकी रचनाओं में से केवल सूक्तियों का ही चयन किया जाये तो भी एक स्वतन्त्र सूक्ति-ग्रन्थ बन सकता है।

जब से मुनि श्री जी ने मुद्रित, अमुद्रित साहित्य का सम्पादन-भार मुझे सौंपा है, तब से मैं अनुभव करता हूं कि सन्त-

साहित्य तो स्वयमेव सम्पादित ही होता है। जिसमें श्री चन्दन मुनि जी स्वय एक अच्छे मंजे, मंजे तपे हुए कविरत्न हैं। जिनकी रचनाओं से स्वयं सम्पादक को बहुत कुछ जानने-सीखने को मिलता है फिर उसका सम्पादन कैसा ?

मैं सोचता हूं यह तो मुनि श्री जी का स्नेहानुग्रह एव "गुणिषु प्रमोद"—की वृत्ति ही है कि वे दूसरे के गुणों का, कला का न केवल सम्मान ही करते हैं, किन्तु उसे बढ़ा-चढ़ाकर भी बताते हैं। मेरे लघु प्रयासों द्वारा मुनि श्री जी के साहित्य को नव रूप देने में जो कुछ सहयोग मिल पाया है उसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूं।

मेरा विश्वास है कि मुनि श्री जी के साहित्य में व्याप्त विस्तरण शैली भी नीरसता के द्वार नहीं खटखटाती। प्रवाह का पूर्णतया निर्वाह ही तो सरसता का द्योतक है।

जगन्मात्र के लेखक, सम्पादक, मुद्रक क्षमा-योग्य ही होते हैं, तब मुझे अपवाद समझने की भूल मत कर जाना। बस, पाठकों से इसी नम्र निवेदन के साथ......

नेमीचन्द पूगलिया

द्वारा : श्री रेखचन्द जी वैद

रांगड़ी बाजार, बीकानेर (राजस्थान)

प्रकाशकीय

'पूज्य जीवन राम जैन प्रकाशक समिति' अनेक वर्षों से 'चन्दन-साहित्य-सुरभि' का प्रचार एवं प्रसार करती आ रही है। समिति का लक्ष्य साहित्य प्रकाशन नहीं, अपितु सत्साहित्य द्वारा लोक-जीवन का निर्माण, संसार-पथ को प्रशस्त करते हुए मोक्ष-मार्ग की ओर जन-मानस को उन्मुख करना है।

आलोचकों की दृष्टि में कौन सा साहित्य 'सत्'-की सीमाओं में आबद्ध हमें इस विवाद से कोई प्रयोजन नहीं है, समिति के सदस्यों एवं परिष्कृत-मस्तिष्क विचारकों की यह धारणा है कि साहित्य वही 'सत्' है जिसके अध्ययन से जन-मानस को तप,त्याग, करुणा, प्रेम, मैत्री, सत्य और अध्यात्मिक जीवन जीने की प्रेरणा प्राप्त हो। 'चन्दन-साहित्य' इस दृष्टि मे परम-सत् है, क्योंकि वह संगीत के स्वर्ण कटोरों में भर-भर कर समाज को नैतिकता और आध्यात्मिकता का वह अमृत पिलाता है जो जीवन के प्रत्येक दुखते अंग को स्वस्थ करता है। वह यथार्थ के चित्रण के माध्यम से जीवन के विधायक आदर्श तत्त्व भी प्रदान करता है।

'चन्दन'-साहित्य विस्तृत अध्ययन और गहन चिन्तन के साथ उद्भूत होता है। 'चन्दन' के निर्भीक ओजस्वी स्वर समाज को झकझोर कर कुछ सोचने के लिये बाध्य भी कर देते है और उसे माधुर्य से परितृप्त भी कर देते हैं, क्योंकि उसका सहज गुण 'प्रसाद' है।

आलोचक प्राय: कहा करते हैं कि सन्त-साहित्य निराशा-वादी और जीवन से पलायन सिखलानेवाला होता है। ऐसे आलोचकों को हम यह राय देते हैं कि वे 'चन्दन-साहित्य' से प्रेरणा पाकर अपनी धारणाओं को संशुद्ध कर लें। 'चन्दन-साहित्य'

इस लोक को स्वर्ग बनाने की कामना और स्वर्ग को सर्वसुलभ करने की अभिलाषा से प्रेरित होकर मुखरित होता है।

प्रस्तुत रचना 'संगीतों की दुनिया' पहले भी प्रकाशित हो चुकी है, परन्तु मुनिराज ने पच्चीसवीं महावीर निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य में इसका संशोधित एवं परिवर्धित जो रूप उपस्थित किया है वह पुराना होते हुए भी सर्वथा नया बन गया है और यह नया रूप समाज के लिये 'वरदान' सिद्ध होगा यह मेरा दृढ़ विश्वास है।

प्रस्तुत रचना के सम्पादन में श्री नेमीचन्द्र जी पूगलिया ने हमें प्रशंसनीय सहयोग दिया ही है, साथ ही हम श्री तिलकधर शास्त्री, (सम्पादक 'आत्म-रश्मि') के भी आभारी हैं जिन्होंने ग्रन्थ के सम्पादन से लेकर प्रकाशन तक सभी कार्यों में अपना योग-दान देकर रचना के सौन्दर्य में अपूर्व वृद्धि की है।

हम अपने उन सहयोगियों को भी शतशः धन्यवाद देते हैं जिनके आर्थिक-सहयोग ने हमें इस कार्य को पूर्ण करने की शक्ति प्रदान की है।

अन्त में हम श्रद्धेय कविरत्न उप-प्रवर्तक श्री चन्दन मुनि जी महाराज के प्रति भी अपनी श्रद्धान्वित कृतज्ञता व्यक्त किए बिना नहीं रह सकते जिन्होंने हमें अपना पावन साहित्य प्रकाशित करने के योग्य समझा है और हमें साहित्य द्वारा जन-सेवा का अवसर प्रदान किया है।

विनीत :-

वैद्य अमर चन्द जैन

[मन्त्री]

पूज्य जीवन राम जैन प्रकाशक, समिति।

श्री हेमराज कमलकिशोर जी कांसल
(तपे वाले)
बरनाला (पंजाब)

श्री तिलकधर शास्त्री

संगीतों की दुनिया

एक विचरण

●

भारतीय सस्कृति जितनी कथा-साहित्य के अन्तराल में पहुंचकर समृद्ध हुई है उतनी सम्भवतः अन्यत्र कहीं भी पनप नहीं पाई। जैन-साहित्य तो है ही लोकाभिमुखी, अतः लोक-कथाओं के अक्षय भण्डार की दृष्टि से जैन-साहित्य अनुपम है। विक्रम सम्वत् के आरम्भ से लेकर उन्नीसवीं शती तक जैन साहित्य की उर्वराभूमि में कथा-धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती जन-मानस को आनन्दोर्मियों से आप्लावित करती रही है।

जैन-संस्कृति के मूल आगम-ग्रन्थों में "नाया धम्म कहा, उवासगदसाओ, अन्तगड़, अनुत्तरोपपातिक, और विपाक-सूत्र तो समग्ररूप से कथात्मक ही रहे हैं। इनके अतिरिक्त, समराइच्च कहा, कुवलयमाला, तरंगवती आदि अनेक कथा-ग्रन्थ विश्व की सर्वोत्तम कथा-विभूति हैं । आचार्य श्री जिनविजय जी ने मार्च १९५४ के 'श्रमण' में विक्रम की प्रथम शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं

शती तक उपलब्ध लगभग १३३ कथा-ग्रन्थों की सूची उपस्थित की थी। उस सूची में उस वर्तमान कथा-साहित्य की गणना नहीं की गई जो वर्तमान जैन कवियों की अमर लेखनी से प्रसूत हुआ है।

---- जब कवि की भाव-धारा जीवनधारा के साथ मिलकर पद्य के क्षेत्र में प्रवेश करती है तो उसे 'काव्य' कहा जाता है। यद्यपि काव्य को गेय काव्य और पाठ्य-काव्य के रूप में विभक्त किया गया है; परन्तु मैं समझता हूं पाठ्य काव्य भी छन्दोमयता काव्य के आवरण में संगीतात्मक ही बन जाया करता है, क्यों कि उसमें भी लयबद्धता के कारण संगीतात्मकता उदित हो ही जाती है। वाल्मीकि रामायण छन्दोबद्ध रचना है, फिर भी उसे गेय काव्य माना जाता है और लवकुश द्वारा अयोध्या की वीथियों में उसका सरस एवं प्रभावशील गायन लोक-प्रसिद्ध है।

संगीतों की दुनियां यद्यपि लावनी दोहा सार और कवित्त रूप छन्दों में आबद्ध है फिर भी इसे गेय कहा जा सकता है क्योंकि इसकी लयात्मकता इसकी गेयता में सहायक तत्त्व है।

श्री चन्दन मुनि जी को महान् नैतिक एवं धार्मिकता के उद्बोधक मननशील मुनित्व से मण्डित कवि के रूप में कोटि-कोटि जन जानते हैं, वे अपनी संयम-यात्रा में मुनित्व के ऊंचे शिखरों पर आसीन होकर जब आत्म-साधना से सिंचित काव्य-सुमनों की सुगन्ध फैलाते हैं तो उससे चारों ओर का वातावरण दान, शील, तप और सद्भावों की सुरभि से महक उठता है। उनकी रचनाओं में विविधता है, वे कवित्व-कल्पतरु बनकर सबके विविध अभीष्टों को प्रदान करने वाले मुनीश्वर हैं, अतः उनका प्रत्येक शब्द जन-मानस को आन्दोलित करता है, उद्बुद्ध

करता है, उसके प्रसुप्त धर्मभावों को जागृत करता है और पाठक के जीवन-पथ को प्रशस्त करता है।

'संगीतों की दुनियां' में वह काव्य-धारा प्रवाहित हो रही है जिसमें जीवन, जगत, साधना, उपासना, नैतिकता, सामाजिकता की विविध लहरियां लहरा रही हैं, जैसे ही पाठक की चेतना इसके तट पर पहुंचती है वैसे ही वह बराबर उसमें आकण्ठ डूब जाने में ही आनन्द की अनुभूति करती है।

यह मानवता का सौभाग्य है कि सं० २०३१ की दीपावली से पच्चीसवीं महावीर निर्वाण शताब्दी का आरम्भ हो रहा है, इस अवसर पर भगवान् महावीर के अनन्य उपासक अपने-अपने मनोभावों और सामर्थ्य के अनुरूप उनके चरणों में अपने-अपने श्रद्धा-पुष्प अर्पित करने की तैयारियां कर रहे हैं। 'कविवर चन्दन' इस तैयारी में सबसे आगे आ खड़े हुए हैं, उन्होंने पच्चीस संगीतों के माध्यम से अपने चन्दन से महकते पच्चीस काव्य-कमल अपने इष्ट देवता के चरणों में अर्पित कर अपनी लेखनी को सफल बनाया है।

उनकी धर्म-चेतना ने इन पच्चीस काव्य-कमलों का चयन विविध जीवन-सरोवरों से किया है, वर्धमान महावीर, जिनदत्त का दान, पूनिया श्रावक इलायची कुमार जैसे कथानक जैन साहित्य-सरोवर से लिये गये हैं, राजा शूरपाल दन्तिल, चांपसी मेहता जैसे कथानक इतिहास-सरोवर से ग्रहीत हैं। अनमोल हीरा, शान्ति की शक्ति, एक दिन का राजा, लकड़हारा, चार घेवर, तीन बनिए जैसे कथानक लोक-साहित्य के महासर से प्राप्त किए गए हैं और कुछ ऐसे भी काव्य-कमल हैं जो कवि की प्रतिभा-पुष्करिणी में विकसित हुए हैं। पच्चीसवां 'यात्रा-संगीत' जैन-इतिहास

एवं साधु-परम्परा के इतिवृत्त की सुन्दर कड़ी के रूप रूप में रखा गया है।

इन गीतों का निर्माण श्री चन्दनमुनि जी ने विभिन्न स्थानों में किया है या उनमे हुआ है, परन्तु अधिकतर गीत 'बरनाला' की देन हैं। मालूम होता है गुरुदेव के स्थविरवास के कारण उनकी चरण-यात्रा रुक कर मस्तिष्क की यात्रा बन गई है और इस यात्रा में अनेक कथानक मानो अभिव्यक्ति पाने के लिये उनके सामने ही खड़े रहते हैं, अतः अहर्निश अबावगति से उनकी लेखनी का ऐसा प्रवाह प्रवाहित होता ही रहता है। जो पाताल की गहराइयों, आकाश की ऊंचाइयों और जीवन-अन्तरिक्ष की विशालताओं को स्पर्श करता-सा जान पड़ता है। मैं समझता हूं कि जीवन का शायद ही ऐसा कोई पहलू हो जिसे कवि की प्रतिभा ने स्पर्श न किया हो। कुछ उदाहरण जिन्हें मेरा हृदय बार-बार गुन गुनाया करता है प्रस्तुत कर ही देता हूं—

कर्ज—

लेना कर्ज सरल होता है, होता कठिन पुनः देना।
भूखे रह जाना अच्छा है, अच्छा नहीं सुनो लेना॥

(पृ० २५)

अभिमान—

करो नहीं अभिमान कभी भी, कल है छिपा अन्धेरे में।
पता नहीं कब पड़ जाए नर, स्वयं प्रकृति के फेरे में॥

(पृ० ४८)

मातृगौरव—

मातृभाव नारी के मन से, जिस दिन हो जाएगा लुप्त।
सृष्टि समाप्त उसी दिन होगी, हो जाएगा विश्व प्रसुप्त॥

(पृ० ९७)

भय—

भय आने पर निर्भयता से, खड़े सामने हो जाओ।
मर जाओ पर मर जाने के, भय से कभी न घबराओ॥

(पृ० २०९)

नर-नारी—

मन मिलने का अवसर देती, समानता नर-नारी की।
निभने और निभाने की है, शपथें वे उच्च स्तर की॥

(पृ० २११)

किसान—

कृषकों का आधार भूमि है, दुनियां का आधार किसान।
बिना किसान अन्न न मिलता? बिना अन्न क्या बचते प्रान?

(पृ० २१७)

नारी-मौन—

नहीं सयानी नारी कहती, सह लेती है गृह-सन्ताप।
क्योंकि बोलनेवाली के तो, वचन समझते सभी प्रलाप॥

(पृ० २२४)

सत्ता-मद-

सत्ता लक्ष्मी और सरलता, पाने पर जो हो अभिमान।
'चन्दन' उस मानव को कैसे, माना जाए यहां महान॥

(पृ० २५६)

स्वार्थ—

स्वार्थ टूटते ही यहां, नाते जाते टूट।
स्वार्थ नहीं होता अगर, तो क्या होती फूट?

(पृ० ३६२)

कंचन-कामिनी—

माया स्वयं मोहिनी होती, बहुत कठिन है इसका त्याग।
कचन और कामिनी से तो, कोई ही रहता बेदाग़॥

(पृ० ४०१)

प्रतिभा—

प्रतिभा और परिश्रम मिलकर, पैदा करने आए धन।
केवल श्रम से धन कब जुड़ना, घिस जाता है सुन्दर तन॥

(पृ० ४६३)

संसारी—

दान नहीं है, दया नहीं है, नहीं भलाई भी करते।
हाय कमाई! हाय कमाई! हाय! हाय! करते मरते॥

(पृ० ४६५)

ये कुछ उदाहरण 'स्थाली-पुलाक-न्याय' से दिये हैं। वस्तुतः यह समग्र रचना ही सूक्तियों का अक्षय भण्डार है। जीवन-निर्माण के अमूल्य तत्व इसमें यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं। कथानकों के कनक-कटोरों में भर-भर कर उपदेशामृत का पान कराने में कविरत्न श्री चन्दन मुनि जी महाराज सिद्ध-हस्त हैं। वे अपनी उदात्त अध्यात्म-भावनाओं, तपोमय जीवन और बौद्धिक प्रकर्ष की प्रेरणा से समाज को प्रेरित करके उसको अमर जीवन प्रदान करनेवाले अमर कवि हैं।

कथात्मकता और आधार की दृष्टि से प्रस्तुत कथानक-संग्रह के सभी कथानक अत्यन्त व्यापक है, प्रभाव की दृष्टि से मर्मस्पर्शी हैं, जीवन-तत्व निरूपण की दृष्टि से सर्वग्राह्य है।

प्रत्येक कथानक के साथ जुड़ा हुआ देशकाल वातावरण का चित्रण भाव-भूमि को मनोरम बनाता है, पात्रों की विचारधारा में वैशिष्ट्य उत्पन्न करता है, तत्कालीन धार्मिक सामाजिक एव ऐतिहासिक तथ्यों के चित्र उरेहता हुआ पाठक को प्रभावित करता है।

मुनि श्री जी की चिन्तन-स्फुरणा तो ऐसी है जो भौतिक धरातल से लेकर अध्यात्म-गगन के प्रत्येक भाव-तारक का स्पर्श करती-सी जान पड़ती है।

श्री चन्दनमुनि जी की वाक्यावली और शब्द-योजना सीधी हृदय-स्पर्शिनी है, वाक्य-विन्यास जितना मीठा है उतना तीखा भी है, उसमें पाठक के मन-मस्तिष्क को झकझोर कर परिवर्तित कर देने की अपूर्व क्षमता है।

यह मेरा सौभाग्य है कि श्री चन्दन मुनि जी की कृतियों

के साथ मेरा अनायास ही कुछ सम्बन्ध जुड़ गया है, यह सम्बन्ध मेरी ज्ञान-चेतना के लिये कितना लाभकारी हुआ है यह बतलाना मेरे लिये 'गूंगे का गुड़' है। या यह कहूं कि इस महाकवि के काव्य सौष्ठव में मैं इतना खो जाता हूँ कि वर्ण्य क्या है मुझे इसका ज्ञान और भान ही नहीं रह जाता है।

कुल मिला कर मैं यह कह सकता हूं कि "संगीतों की दुनिया" कवित्वमयता, संगीतात्मकता, नीतिमयता और धार्मिकता का पावन संगम-स्थल है। इस संगम पर पहुंचकर श्रद्धाशील लोग विभिन्न चरित्रों के आदर्शों को सहज ही हृदयंगम कर जीवन को सुखशान्तिमय बना सकेंगे और साथ ही गान का आनन्द और काव्य का अमृत पीकर तृप्त हो सकेंगे।

'संगीतों की दुनिया' में विचरण जैसे मेरे लिये लाभकारी हुआ है वैसे ही सभी के लिये मंगलकारी हो मैं इसी हार्दिक भावना के साथ प्रस्तुत रचना का अभिनन्दन एवं मुनि श्री के चरणों में वन्दन करता हूं।

तिलकधर शास्त्री

सम्पादक—'आत्म-रश्मि'

लुधियाना

एक महान पिता की पुण्यस्मृति

शिष्य ने विनीत भाव से पूछा -"किमुत्तमम्" संसार में सर्वोत्तम वस्तु क्या है ?

गुरु ने जवाब दिया 'सच्चरित्र यदस्ति' सर्वोत्तम सच्चरित्र है। सच्चरित्र से ज्ञान, दर्शन और शील की उपलब्धि होती है।

दुर्योधन को सच्चरित्र की महिमा बताई गई। तब उसने आत्म-निवेदन किया—**जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः**—मैं धर्म के रहस्य को समझता हूं, फिर भी उसमें प्रवृत्त नही हो सकता और अधर्म के परिणामों से परिचित हूं, तब भी उनसे निवृत्त नही हो सकता। दुर्योधन के इस जवाब में सचाई है।

आज हम धर्म की चर्चा करते-करते व्यवहार से विमुख हो गए है। धर्म स्वभाव है। हमने उसे अस्वभाव बना दिया है, इसीलिए धर्म के द्वारा इस समय न इसलोक की समस्याएं हल हो रही हैं और न परलोक की। यह हमारी सबसे बड़ी पराजय है। हम इस विषय में गभीरतापूर्वक चिन्तन कर निष्ठा के साथ धर्माराधन करें तो वह पराजय जय में परिवर्तित हो सकती है। महामना लाला 'रामामल' जी ने अपने सच्चरित्र से इस तथ्य को स्पष्ट कर दिखाया।

लाला रामामल जी बोथरा, एक धर्मपरायण पुरुष थे। वे सम्वत् १६४० में हमारे बीच आए और सवत् २००२ माघ शुक्ला १२ को हमसे बिछुड़ कर चले गए। इस अल्प अवधि मे उन्होंने

ओसवाल कुल भूषण श्री रामामल जी जैन

हमें अपने जीवन से जो संदेश दिया, वह 'प्रसाद' के शब्दों में इस प्रकार है—

अमर्त्य वीर-पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो।
प्रशस्त पुण्य-पन्थ है, बढ़े चलो! बढ़े चलो!

श्री बोथरा जी बराबर बढ़ते रहे, वे कभी रुके नहीं, झुके नहीं। जहां भी गए, सफल हुए। राजस्थान की वीरता, साधना और व्यवसाय-कला आपको विरासत में मिली थी। आपके पूर्वज मूलत: नौहर (बीकानेर-राजस्थान) के निवासी थे। फिर 'मलकाना' बसे और वहां से फिर 'त्योना' (फिरोजपुर) को अपना स्थान बना लिया। नहरी ज़मीन के मालिक होते हुए भी आपने सारा जीवन व्यवसाय में लगाया। प्रामाणिकता के कारण सहज ही उनकी प्रतिष्ठा जम गई। गरीब से गरीब आदमी भी आपके पास आकर आत्मीयता अनुभव करता था। आपका घर सबके लिए खुला था।

श्री बोथरा जी प्रात:काल आत्मचिंतन करते, सामायिक करते। उस समय तीर्थङ्करों की स्तुति गाते हुए जिसने आपको एक बार भी देख लिया, वह आपके भक्ति-रंग में सराबोर हुए बिना न रह सका। आपकी भक्ति अद्वितीय थी। जैन-धर्म के प्रति आपकी अटल आस्था व्यक्त करने वाला यह पद्य अक्सर स्मरण हो आता है—

"जैन जवाहर-कोठड़ी, जिसमें हीरे लाल।
जो सत गुरु सांचा मिले, पलमें करे निहाल ॥"

आध्यात्मिक और भौतिक जगत् में आपके लिये चारों ओर बराबर हीरे और लाल बिखरे ही रहे।

श्री रामामल जी के पांच सन्तानें हुई। उनके नाम ये हैं— श्री मेहरचन्द जी, सुश्री सन्ती देवी, श्री कृपाराम जी, श्री चन्दन

लाल जी और श्री कंवरचन्द जी। श्री मेहरचन्द जी और श्री कृपा राम जी अल्पायु में ही स्वर्गवासी हो गए और विवाह के कई वर्ष बाद सुश्री सन्ती बाई भी स्वर्गवासिनी बन गई। जिस कुसुम को पाला, पोसा, उसे अपने ही सामने मिटता देखकर बोथरा जी का क्या हाल हुआ, यह अनुभवगम्य है। श्री बोथरा जी जीवन के महा-समर में बढ़ते रहे और वीरता पूर्वक सब कुछ सहन करते रहे।

श्री चन्दनलाल जी भी एक बार बीमार हो गए। हालत बहुत गंभीर हो गई। डाक्टर आए, वैद्य आए, हर वैद्य के नुस्खों को भी धन्वन्तरि का निदान समझ कर दवा की गई, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। बचने की कोई उम्मीद नहीं रही। तब बोथरा जी ने धर्म-भावना भाते हुए यह संकल्प किया कि यदि चन्दन की जीवन रक्षा हो जाय, तो मैं इसे धर्म की शरण में दे दूंगा। संकल्प ने असर दिखाया। चन्दन की रक्षा हो गई। रोग देवता चम्पत हो गए और चन्दन ने स्वस्थ होते ही अपनी साधु बनने की भावना पिता श्री के सामने व्यक्त की।

उत्तराध्ययन में नमि राजर्षि का उल्लेख है। वे दाह-ज्वर से ग्रसित हो गए थे। उन्हें एक क्षण भी चैन नहीं मिलता था। सभी वैद्य, डाक्टर, ज्योतिषी और मन्त्र-तन्त्र-वेत्ताओं ने जवाब दे दिया था। तब सहसा नमिराज के हृदय में यह भावना पैदा हुई कि यदि मैं दाहज्वर से मुक्त हो जाऊं तो अर्हत्-धर्म की दीक्षा धारण कर लूंगा। भावना में बल होता है। राजर्षि स्वस्थ हो गए। उन्होंने प्रातःकाल दीक्षा ले ली।

श्री चन्दन, नमि राजर्षि की राह पर बढ़ चले। वे चन्दन से 'चन्दन,मुनि' बन गए। इस समय वे अपनी शुद्ध साधना के पथ पर

श्री कंवरचन्द जैन मण्डी गीदड़बाहा (पंजाब)

अग्रसर होते हुए स्व-पर-कल्याण में लगे हुए हैं। उनकी कविताए किसे नहीं मोहती ? पजाव प्रदेश मे आज कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो इस कविरत्न के नाम से अपरिचित होगा ? अनुभूति आचार में उतरती है तो वाणी में वल आ जाता है। श्री चन्दन मुनि के तपः-पूत जीवन का यही रहस्य है।

श्री वोथरा जी के सवसे छोटे सुपुत्र श्री कवरचन्द जी इन दिनों मण्डी गीदड़वाहा में वस गए हैं। वे वड़े अच्छे पैमाने पर वजाजी का कारोवार कर रहे हैं। और आगे उनके भी इस समय चार सन्तानें हैं तीन पुत्र—श्री ज्ञानचन्द जी, श्री राजकुमार जी, श्री महेन्द्रकुमार जी; और चौथी सन्तान है कन्या—स्नेहलता।

इस प्रकार श्रीमान् लाला रामामल जी वोथरा धार्मिक जीवन जीते रहे और धार्मिक जीवन की लौ जलाने के लिये अपनी यादगार हमे दे गए। उनके दोनों सुपुत्र निवृत्ति और प्रवृत्ति के क्षेत्र में पूरी निष्ठा के साथ लगे हुए हैं। श्री वोथरा जी ने जिस अमर भावना से जीवन जिया, उसी अमर भावना की आज सारे समाज को और देश को ज़रूरत है। धार्मिक जीवन की यशस्विता के लिये यह आवश्यक है कि अव धार्मिक लोग अपनी वृत्ति और कृति में निष्ठा को अभिव्यक्ति दें। श्री वोथरा जी ने यही किया। इसलिये आज उनकी पुण्य स्मृति म हम सव श्रद्धावनत हैं।

—उपमन्त्री—वैद्य अमरचन्द्र जैन, वरनाला (पंजाव)

श्रीमान् लाला रामामल जी बोथरा का वंश-वृक्ष
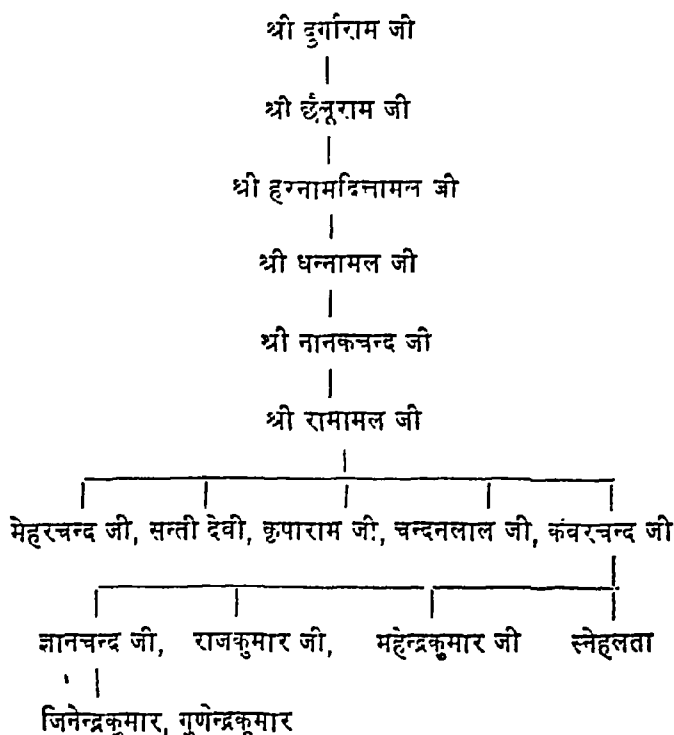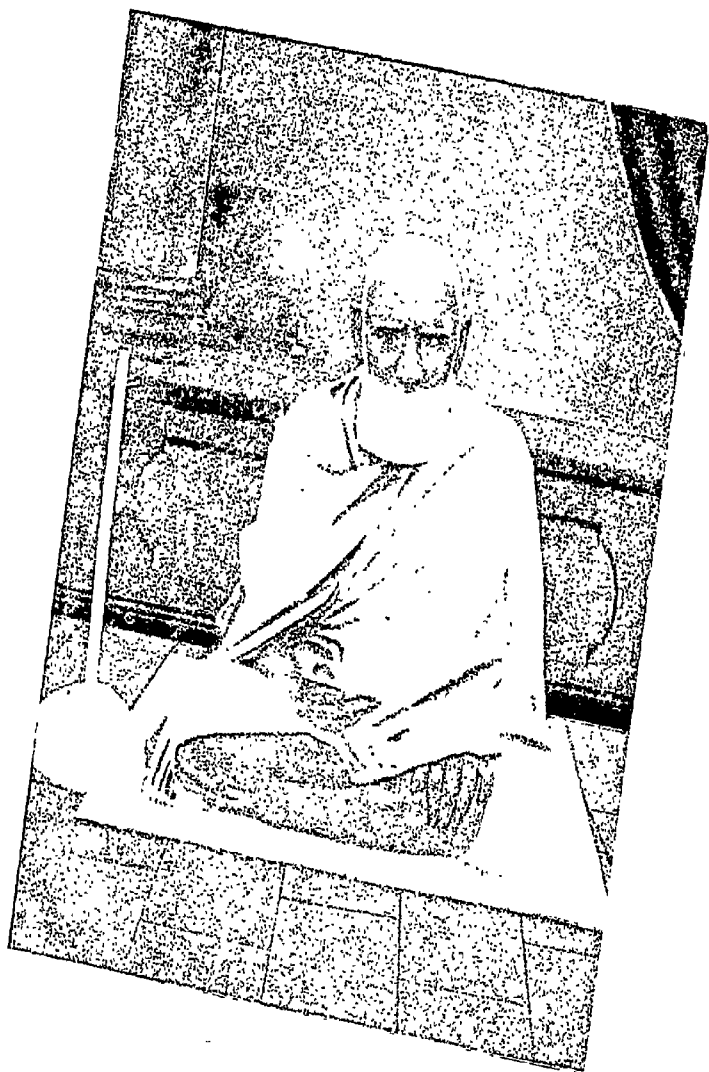
सम्वत १८८२ में बीकानेर के निकट 'नोहर' नगर में जन्म लेकर जिन्होंने ओसवालों के सरोहिया वंश की कीर्ति का विस्तार किया।

श्रद्धेय पिता सेठ हीरालाल जी का स्नेह पूज्य माता जयन्ता देवी का वात्सल्य, भ्राता मेघमल जी का प्रेम पाकर जिनका जीवन-सुमन खिला और सुरभित हुआ।

जो व्यापार का विस्तार करने के लिये फरीदकोट आए और वहां के महाराजा पहाड़ा सिंह जी की मृत्यु का सारे नगर पर छाया शोक देखकर जिनका हृदय कह उठा—

'विनश्वर संसार में कौन सदा रहा है? सब काल के गाल में समा जाते हैं। क्यों न काल से बचाव का प्रयास करूं।" इन्हीं भावों के साथ जो वैराग्य की गंगा में तैरने लगे।

जिनकी संयम-निष्ठा प्रशंसनीय थी, जिनकी ज्ञान-ध्यान-प्रतिष्ठा अभिनन्दनीय थी, जिनके ब्रह्मचर्य महाव्रत पर संसार मुग्ध था जिनकी वाणी में वचन-सिद्धि का दुग्ध था।

श्रद्धा-पुष्प

जिनके दर्शन मात्र से जैनत्व के चरणों में कोटि-कोटि मस्तक झुक जाते थे, जिन्होंने धर्म-प्रचार के लिये मालवा तक यात्राएं कीं, जिन्होंने वीर निर्वाण-दिवस सम्वत् १९५८ की दीपावली की रात को अनशन व्रत द्वारा देवलोक की ओर गमन किया, उन्हीं श्रद्धेय-चरण, प्रातः-स्मरणीय श्री जीवनराम जी महाराज के चरणों में—
'चन्दन' अपनी कृति 'मगीनों की दुनिया'
श्रद्धा सहित अर्पित करता हुआ कहता है—

हे दिवंगत, विश्व-वंदित, पूज्य जीवनराम जी!
स्वीकृत करें 'चन्दन'—हृदय के देव! कोटि प्रणाम जी!

आप ने जिनधर्म का, जग में किया जो नाद है।
भूला नहीं गुरुदेव हमको, आज भी वह याद है।

सद्-विचारक, जगसुधारक, सुप्रचारक हे गुणी!
कर रहा पुस्तक समर्पित आपका 'चन्दन मुनि'।

स्वीकृत करें भगवन्! इसे, यह विनय वारम्वार है।
है अर्चना पूजा यही, समझें यही सत्कार है।

——चन्दन मुनि

अनुक्रम

चढ़ते यौवन को साधुत्व की ऊंचाइयों और कवित्व की गहराइयों में पहुंचाने के लिये कृतसंकल्प श्री चन्दन मुनि जी महाराज

संगीतों की दुनिया

फल-श्रुति

अगर ध्यान से इन गीतों पर, अपनी नज़र दौड़ायेंगे।
सरस-सरस संगीत निराले, आत्म-विभोर बनायेंगे॥

मनुष्यत्व पाया है दुर्लभ, क्यों इसको व्यर्थ गंवाएंगे।
धर्म-ध्यान में इसे लगाकर, जन्म सफल कर जाएंगे॥

भाव पूर्ण संगीत सभी ये, भव से पार पहुंचाएंगे।
शत प्रतिशत यह बात सही है, नहीं डूबने पाएंगे॥

है विश्वास शब्द तर्ज़ पर, ध्यान न आप लगाएंगे।
उनसे जीवन-दर्शन पाकर, आप धन्य हो जाएंगे॥

बच्चे, बूढ़े, बहनें, भाई, जो भी पढ़ें-पढ़ायेंगे।
'चन्दन' वे जिनेन्द्र-भक्ति से, अजर-अमर पद पाएंगे॥

○ १ ○

वर्द्धमान से महावीर

"वर्द्धमान से महावीर" को,
पढ़कर आत्मिक बल पायें।
'चन्दन' आत्मिक बल के द्वारा,
शान्ति प्रेम का स्थल पायें॥

ज्ञातपुत्र त्रिशलानन्दन का, मात-पिता ने करके ध्यान।
गुण-प्रधान यह नाम रखा था, 'वर्द्धमान' सुख-शान्ति-निधान ॥
नाम बदल जाते दुनिया में, होते हैं जब कार्य विशिष्ट।
कार्य विशिष्ट बताया करते, जीवन कितना है उत्कृष्ट ॥
'वर्द्धमान'-प्रभु जब थे बालक, बालक उनके मित्र- अनेक।
उसी समय का सुन्दर चित्रण, करता आज यहाँ पर एक ॥

बालकों का खेल

बाल-सखा मिल करके सारे, गए खेलने को वन में।
खेलों-कूदों में रुचि होती, स्वाभाविक ही बचपन में ॥

कोमल-सरल-तरल दिल होता, केवल बचपन में 'चन्दन ।'
प्रभु-स्वरूप बालक का करते, इसीलिये सब अभिनन्दन ॥

दौड़े सभी, एक पकड़ेगा, पकड़ा जाए वह हारा ।
वही दुबारा पकड़ेगा फिर, खेल खेलते यह प्यारा ॥
चढ़ते और उतरते देखो, एक वृक्ष पर सारे बाल ।
लम्बी दौड़ लगा करके फिर, दिखलाते थे बड़े कमाल ॥
'वर्द्धमान' भी बड़े चाव से, दिखलाते अपना पुरुषार्थ ।
बिना मूल के लिखा न जाता, विद्वानों से भी भावार्थ ॥

साँप निकला

इतने में उस वृक्ष-मूल[1] से, फणधर[2] निकला काला एक ।
डर कर भागें सभी बाल थे, विषधर लिया गया जब देख ॥
कोई छिपा कहीं झाड़ी में, कोई दौड़ लगा भागा ।
कोई थर-थर लगा कांपने, चिल्लाहट से वन जागा ॥
शाखाओं पर चढ़ कर बैठे, दिन में दीख गए तारे ।
नहीं बोलते, नहीं डोलते, बच्चे सब भय के मारे ॥

---

१ पेड़ । २ फण वाला सांप

फैलाता फन सांप जोर से, मार रहा अपनी फुंकार

☐ निर्भय 'वर्द्धमान'

खड़े वहीं के वहीं रहे हैं, 'वर्द्धमान' प्रभु राजकुमार।
देने लगी दिखाई सब को, मानो निर्भयता साकार॥
फैलाता फन सांप जोर से, मार रहा अपनी फुंकार।
प्रलयंकर झंझा के मानो, हों उठते भारी सुंकार॥

☐ आओ खेलें

'वर्द्धमान' ने कहा—सखाओ! क्यों डर करके भागे हो।
डरने की क्या आवश्यकता, वर्द्धमान जब आगे हो॥
आओ-आओ हिल-मिल खेलें, खेल देखने आया नाग।
नाग देख कर आप सभी बस, डर कर गए यहां से भाग!

☐ बालकों का उत्तर

बालक बोले—सखे! खेल-हित, नहीं सकेंगे पीड़ा झेल।
कैसे नीचे उतरा जाए, कैसे खेला जाए खेल॥
खेल खेलना दूर रहा हम, कैसे अपने घर जाएं।
कहीं सर्प के दंशन से हम, आज यहीं न मर जाएं॥

राजकुमार! इधर आ जाओ, काट न खाए, तुमको सांप।
वहीं खड़े हो कैसे ऐसे, क्या न कलेजा जाता कांप?
अगर आपको सांप डंसेगा, डांटेंगे "सिद्धार्थ" हमें।
इतनी शक्ति कहां है हम में, राजाओं की डांट सहें॥

▫ 'वर्द्धमान' की बात

'वर्द्धमान' ने कहा-भला क्यों, काटेगा यह नाग मुझे।
होगा ही अनुराग इसे भी, इससे जब अनुराग मुझे॥
हम से डरता सांप, सांप से- डरते हैं हम सारे लोग।
लगा हुआ है जग में सबको, अपने मन से भय का रोग॥
भय पर विजय पाइये पहले, समय नहीं है डरने का।
निर्भय बन कर कार्य कीजिये, जग को निर्भय करने का॥
प्राणि-मात्र में मैत्रि-भावना, भरने का संकल्प करो।
बढ़े चलो अपने सत्पथ पर, नहीं किसी से कभी डरो॥
इसे पकड़ कर और कहीं पर, अभी छोड़ आता हूँ मैं।
नहीं किसी भी प्राणी से अब, खौफ़ ज़रा खाता हूँ मैं॥

▫ सांप को छोड़ दिया

'वर्द्धमान' ने पूंछ पकड़ कर, फन भी पकड़ा हाथों से।
निर्भयता का परिचय मिलता, नहीं कभी भी बातों से॥

छोड़ दिया विषधर को वन में, बालक हर्षित हुए सभी।
आज हुए आकर्षित इतने, जितने पहले नहीं कभी॥

☐ 'वर्द्धमान' से 'महावीर

'वर्द्धमान' से 'महावीर' यों, कहलाते त्रिशलानन्दन।
त्रिशलानन्दन के चरणों में, 'चन्दन मुनि' शत-शत वन्दन॥
बहुत प्रसंगों में से मैंने, मात्र सुनाया एक प्रसंग।
नहीं एक कपड़े पर चढ़ते, एक साथ ही सातों रंग॥
ढंग रंग रंगने का अपना, हल्का गहरा रुचि अनुसार।
हम सब को करना ही होगा, निर्भयता से पूरा प्यार॥
निर्भयता के बिना मुक्ति का, खोला जाता द्वार नहीं।
हो भयभीत जिया जाए तो, जीने में भी सार नहीं॥
असदाचारी को भय होता, नहीं सदाचारी को भय।
"चन्दन" बन कर सदाचारमय, भय पर करिये पूर्ण विजय॥

लुधियाना
२०१९ महावीर-जयन्ती

○ २ ○

जिनदत्त का दान

□

दिया दुखितावस्था में जो,
दान लाभ देता तत्काल।
श्रावक "श्री जिनदत्त सेठ" का,
दान धन्य! 'मुनि चन्दनलाल' ॥

□

० २ ०

जिनदत्त का दान

□ दान-महिमा

बड़ा महत्त्व सुपात्र-दान का, शास्त्रों में बतलाया है।
डाला दाना एक खेत में, सहस गुना फल पाया है॥
नहीं महत्त्व वस्तु का होता, भाव, पात्र का बड़ा महत्त्व।
यथा व्याप्त हैं सकल लोक में, 'चन्दन' धर्मादिक षड् तत्त्व॥
देने वाला दे सकता है, चाहे हो निर्धन, धनवान।
आगम-ग्रन्थ-कथानक देते, इसके लिये अनेक प्रमाण॥
शील प्रभाव यथा दिखलाता, दिखलाता त्यों दान प्रभाव।
नहीं प्रभावों से 'मुनि चन्दन', बदला जाता दान-स्वभाव॥

सुनो कथानक एक ध्यान से, दान-धर्म का देखो फल।
श्रद्धान्वित जो दान उसी का, बढ़ता 'चन्दन' शतगुन बल ॥

□ 'जिनदत्त' और 'पूर्णा'

'पोतनपुर' में एक महर्द्धिक, व्यापारी था 'श्री जिनदत्त।'
मानो धरती पर कुबेर ही, देवों ने था किया प्रदत्त ॥
पत्नी 'पूर्णा' कहलाती थी, दोनों में था प्रेम महान।
दोनों जैन धर्म के प्रति थे, श्रद्धायुत अति निष्ठावान ॥
सभी तरह से सुखी व्यक्ति थे, घर में सुख के सर्व संयोग।
भोगों की यदि अन्तराय हो, तो क्या भोगे जाते भोग?
होने पर भी दिया न जाता, किया न जाता सुख से भोग।
दान भोग में अन्तराय भी, देते नहीं सयाने लोग ॥
सेठ और सेठानी दोनों, भोगी थे तो थे दानी।
बड़े निरभिमानी थे ज्ञानी, 'चन्दन मुनि' उत्तम प्रानी ॥

□ आचार्य श्री का आगमन

एक बार आचार्यदेव का, हुआ आगमन सुखकारी।
मिली सूचना दर्शन करने, निकल पड़े हैं नर-नारी ॥

गए सेठ-सेठानी दोनों, मुनिवर का व्याख्यान सुना।
सुनने से ही धर्म-भावना, बल पाती है कई गुना॥
प्रत्याख्यान लिए जाएं तो, भाषण सुनने का है सार।
भाषण सुनने से ही खुलते, ज्ञान-ध्यान के सब भण्डार?
संध्या प्रातः प्रतिक्रमण फिर, एकान्तर करना उपवास।
लिया अभिग्रह ऐसा भारी, पति-पत्नी ने मिल सोल्लास॥

▭ नियम की उपयोगिता

जो भी नियम लिया जाए बस, दृढ़ता से पाला जाए।
'भूल गए' कह करके उसका, भाव नहीं टाला जाए॥
अगर नहीं निभता हो तो मत, नियम करो खाकर के शर्म।
शक्ति परखने और बढ़ाने- का अवसर देता है धर्म॥
सत्संकल्पों से बल मिलता, डरने का कुछ काम नहीं।
कहीं टूट जाएगा ऐसा, लेना पहले नाम नहीं॥
श्रद्धा-भक्ति सहित पालूंगा, नियम बढ़ाता जाऊंगा।
सोच-समझ कर लिये नियम से, भव-सागर तर जाऊंगा॥

नियम न लेने पर यह आत्मा, बन सकती बलवान नहीं।
जड़ें भूमि में गईं न जिसकी, पादप वह फलवान नहीं॥

आज भावना है करने की, कल होंगे परिणाम नहीं।
करो प्रतिज्ञा गुरु के सम्मुख, शैथिल्य का काम नहीं॥
महाव्रतों की कठिन प्रतिज्ञा, गुरु जी करते आजीवन।
अवधि सहित व्रत लेने में भी, क्यों घबड़ाएं श्रावक जन॥
अव्रत आस्रव रुक जाता है, व्रत संवर अपनाने से।
माध्यम सन्त हुआ करते हैं, प्रत्याख्यान दिलाने से॥
दृढ़धर्मी प्रियधर्मी श्रावक, कहलाते हैं व्रतधारी।
डिगते नहीं डिगाने से भी, होते इतने सत धारी॥

□ 'जिनदत्त' का घाटा

'श्री जिनदत्त' सेठ का देखो, पड़ा शिथिल सारा व्यापार।
घटती-बढ़ती रहती छाया, मायामय माना संसार॥
बाकी डूब गई है सारी, माल उधार नहीं मिलता।
सूर्योदय के बिना बताओ, सूर्यमुखी कैसे खिलता?
गिर जाने पर गिरता-गिरता, धरती पर नर आता है।
गिरने वालों को बोलो फिर, 'चन्दन' कौन उठाता है॥

चढ़ने वाला चढ़ता जाता, एक-एक करके सीढ़ी।
इसीलिये कहते इनकी है, साहूकारी सत पीढ़ी॥

उठना-गिरना नियम नित्य का, घबराने की बात नहीं।
गिरती हुई अवस्था में बस, देता कोई साथ नहीं॥
हालत बिगड़ी बड़े सेठ की, मुश्किल से मिलता खाना।
जाना जाता तभी देखलो, कितना है मंहगा दाना॥
लक्ष्मी रूठी, फूटी किस्मत, छूटा अभी न केवल स्थान।
प्रतिक्रमण, उपवास,अभिग्रह, पालन करता एक समान॥

▭ पत्नी का आग्रह

'पूर्णा' बोली—'सुनो प्राणप्रिय ! जावो अब मेरे पीहर।
मेरे पूज्य पिता जी का है, प्रेम अधिकतर मेरे पर॥
उन्हें पता चलते ही देंगे, जितना आप कहेंगे धन।
धन होने से ही हो सकता, घर में धन का शुभागमन॥'

▭ पति की धारणा

बोला सेठ-'श्वसुर-गृह जाकर, अपना नाक कटाना है।
संकट में सहयोग मांगना, अपना मान घटाना है॥
दुख के दिन धीरज से काटो, रखो धर्म पर दृढ़ विश्वास।
अन्धेरे में बिना दीप के, दे सकता है कौन प्रकाश ?'

□ पत्नी का विश्वास

पत्नी बोली—'हठ न करो तुम, जावो मेरे कहने से।
कोई आकर कभी न देता, घर पर बैठे रहने से॥
अपनों से ही मांगा जाता, जो भी चाहिए वह सहयोग।
अपने अपनों को ही जग में, देते आए कहते लोग॥
देंगे, अगर न देंगे तो भी, पता प्रेम का पाएंगे।
पता नहीं पाएंगे, उनके- घर पर अगर न जाएंगे॥
ऋण ले-लेकर खाने से हम, दिन-दिन दबते जाएंगे।
खोलोगे व्यवसाय बड़ा तो, वैभव पुनः कमाएंगे॥
धंधा पूंजी बिना न होता, पूंजी लावो पीहर से।
पीहर वाले मेह नहीं हैं, अपने आप यहां बरसें॥

□ यात्रा और धर्म

नहीं सेठ का मन जाने का, फिर भी सेठ हुआ तैयार।
पत्नी-हठ के सम्मुख सारी, दुनिया हो जाती लाचार॥
अच्छा, तेरे कहने से मैं, जाता हूं तेरे पीहर।
जाते समय दिया 'पूर्णा' ने, सत्तू का पाथेय प्रवर॥
यात्रा में भी एकान्तर तप, चालू रक्खा है अपना।
श्री जिनेन्द्र का नाम शुभावह, चलता रहा सदा जपना॥

था उपवास चला सारे दिन, खाने का कुछ काम नहीं।
ग्राम नहीं अच्छा आने से, कहीं किया विश्राम नहीं॥
सोया किसी वृक्ष के नीचे, उठकर चला सवेरे फिर।
कपड़े की गठड़ी में सत्तू, उठा रखा है अपने सिर॥

□ तालाब का तट

चलते-चलते हुई दुपहरी, पहुंचा किसी गांव के पास।
बैठा है तालाब-किनारे, ले प्रभु नाम सहित उल्लास॥
व्रत का यहां पारना करलूं, कर लूं 'सत्तू' का आहार।
विधि-विधान सब स्वयं कर रहा, करता स्वयं पुण्य-विस्तार?
भावित किया हुआ वह सत्तू, मुख के सम्मुख रखा पड़ा।
सेठ भावना भाता मन में, आता अवसर अभी बड़ा॥

□ दान की भावना

"मैं घर पर होता था तब तो, मिलता मुनियों का संयोग।
यहां कहां से आयें मुनिवर, दान किसे दूं रख उपयोग?
क्या ही अच्छा हो यदि वन में, दान सुपात्र दिया जाए।
आजाएं यदि साधु कहीं से, तो यह लाभ लिया जाए॥

खाना तो है ही मुझको यह, थोड़ी देर न खाऊंगा।
किसी साधु को वहराने की, शुद्ध भावना भाऊंगा॥"
श्रद्धा से 'नवकार मन्त्र' का, बैठा-बैठा जपता जाप।
जाप बिना क्या जा सकता है, मन का या शारीरिक ताप॥

तपस्वी मुनि

इतने ही में आजाते हैं, वहां तपस्वी मुनिवर एक।
करता है 'जिनदत्त' वंदना, श्रद्धा का होता अतिरेक॥
प्रतिदिन प्रथम पहर में करते, वे मुनिवर स्वाध्याय भली।
ध्यान दूसरे, और तीसरे, भिक्षाचर्या जहां मिली॥
'मासखमण' का आज पारणा, तप से देह बनी थी क्षीण।
नहीं देह को देखा करते, आत्मार्थी जो पुरुष-प्रवीण॥

सत्तू का दान

"हे गुरुदेव! कीजिये करुणा, और लीजिये शुद्धाहार।
लाभ दीजिये इस अवसर का, करो विनय मेरी स्वीकार॥"
भावित किया हुआ वह सत्तू, भाव सहित वहराया है।
क्या जाने यह सत्तू देकर, कितना पुण्य कमाया है॥

❑ ससुराल का रुख

किया पारणा गए साधु बस, सेठ गया अपने ससुराल।
नहीं छिपाया छिप सकता है, नर से निर्धनता का हाल ॥
कुशल-प्रश्न के बाद श्वसुर से, वार्त्तालाप किया सारा।
भले जंवाई भी हो लेकिन, निर्धन कब लगता प्यारा ॥
अपनी सारी स्थिति बतलाकर, लगा मांगने अब कुछ धन।
दान नहीं, ऋण लेता हूँ मैं, लेते ज्यों व्यापारी जन ॥

कहा श्वसुर ने—'मैं बूढ़ा हूँ, मैंने छोड़ दिया व्यापार।
मेरा बड़ा पुत्र ही सारा, संभाला करता है भार ॥
उसको पूछे बिना आपको, 'हां' या 'ना' न कही जाए।
प्रत्यक्ष सम्पदा जाती हो जब विपदा क्यों न सही जाए ॥

❑ देवी से पूछा

छोटे-बड़े मिले घर वाले, करने बैठे आज विचार।
मांग रहे यह पूंजी, फिर से- करने कोई कारोबार ॥
कहा एक ने–'यदि दोगे धन, नहीं लौटकर आयेगा।
अपने धन से अपने घर का, खर्च चलाया जायेगा ॥

किस-किस को दोगे आयेंगे, सभी जंवाई ही घर पर।
घर का खर्च चलाने को धन, देते देखे नहीं श्वसुर॥
'न' कहना भी मुश्किल होता, आखिर है बेटी का घर।
दुनियां में अपयश का भारी, रहता है लोगों को डर॥

कुलदेवी से पूछा—'कैसे- करें बताओ कोई पंथ।
देने में, 'ना' कह देने में, उलझन उलझी है अत्यन्त॥
कहा स्वप्न में—'आते इसने, दिया साधु को था जो दान।
उसके द्वारा पुण्योपार्जन, किया सेठ ने वहां महान॥
चतुर्थांश उसका तुम मांगो, यदि दे दे तो दे दो धन।
अगर न दे तो 'ना' कहने में, आएगी कैसे अड़चन?

□ ऐसे करें

कहा श्वसुर ने—'हम धन देंगे, दान-पुण्य का दो हिस्सा।
लगा सोचने सेठ-दान का, किसने बतलाया किस्सा?
बोला सेठ—चतुर्थांश क्या, नहीं शतांश दिया जाता।
दान-पुण्य औरों के खातिर, औरों से न किया जाता॥
'अपनी करनी पार उतरनी'; धर्म-शास्त्र का है यह सार।
पुण्य न मांगे पर मिलता है, कहता है यह धर्माचार॥'

आप नहीं देते तो हम भी, देने को तैयार नहीं।
दोनों को दोनों की बातें, आपस में स्वीकार नहीं॥
बोला सेठ—आपकी इच्छा, देना साहूकारी जोग।
अगर नहीं देते तो न दो, भोगूंगा कर्मों का भोग॥

▭ आत्मबल का उदय

नहीं हीनता नहीं दीनता, दिखलाई जाती नर से।
की जाती है अर्थ-याचना, गौरव भरे हुए स्वर से॥
"राज्य न मिलता है रोने से", सुनो कहावत नहीं असत्य।
चाहे जैसी स्थिति में 'चन्दन', है पुरुषार्थ निरन्तर स्तुत्य॥
चला सेठ वापिस निज घर को, मिला न श्वसुरालय से धन।
धन तो दूर रहा आश्वासन, दे पाता क्या शंकित मन?
है उपवास आज फ़िर पथ में, खाने की दरकार नहीं।
नहीं काम बनने पर भी मन, करता हीन विचार नहीं॥

▭ नदी के किनारे

बैठा है विश्राम हेतु अब, किसी वृक्ष की छाया में।
मन दृढ़ होने पर भी आती, क्या न थकावट काया में?

बहती हुई नदी का पानी, वाणी बोल रहा कल-कल।
अरे सेठ! घर जाते ही तू, हो जाएगा पूर्ण सफल ॥

▫ सेठ का मन

सेठ सोचने लगा—'यहां से, घर लौटूंगा खाली हाथ।
सत्य न मानेगी सेठानी, श्वसुरालय जाने की बात ॥
बात मान लेगी जाने की, दिया नहीं क्या मानेगी?
आखिर वह भी तो नारी है, मन का ताना तानेगी ॥
तुमने कहा न होगा, अथवा, मांगा होगा बोल नहीं।
अपनी सारी घर की हालत, बतलाई है खोल नहीं ॥
जाते ही उत्तर देने में, कठिनाई होगी भारी।
भले शिक्षिता और धर्मिणी, नारी आखिर है नारी ॥
उसको समझाने के खातिर, गठड़ी बांधूं कंकर की।
समझेगी कुछ ले आए हैं, बात यही है शंकर[1] की ॥
फिर तो सारा किस्सा सम्मुख, आजाएगा अपने आप।
हवा तेज चलने से होता, ज्यों सारा तारापथ साफ़ ॥"

सोच नदी से चुन-चुन कंकर, बांधी गठड़ी एक बड़ी।
जिसको उठा सके अपने सिर, करके हिम्मत एक घड़ी ॥

---

१ कल्याण करने की

▫ पत्नी का व्यवहार

गठड़ी लेकर घर आया है, समझी पत्नी—लाए धन।
मेरे पूज्य पिता जी का यह, क्या न बड़प्पन है 'चन्दन?'
सम्मुख जाकर पति के सिर से, गठड़ी ले ली हाथों में।
गांठ कौन खोलेगा यदि मैं, लग जाऊंगी बातों में॥
गठड़ी लेजा करके खोली, उससे दिव्य रतन निकले।
एक पड़ोसिन से जा बोलो, रतन अमानत यह रखले॥
घर ले आई माल मसाला, त्वरित किया भोजन तैयार।
भोजन से भी ताजा मीठा, दिखलाती है अपना प्यार॥

▫ देखो तो सही

पति ने कहा—'कर्ज लेकर के, माल बनाना ठीक नहीं।
स्वयं सयानी पत्नी को जन, देते देखो सीख नहीं॥
लेना कर्ज सरल होता है, होता कठिन पुनः देना।
भूखे रह जाना अच्छा है, अच्छा नहीं सुनो लेना॥'

पत्नी बोली—'क्या कहते हो यह, लाई पैसा नहीं उधार।
रत्न एक ही रखा अमानत, गठड़ी में से अभी निकाल॥

'रत्न कहां से आए?' 'देखो- एक नहीं हैं रत्न अनेक।'
बड़ा अचंभित सेठ हो रहा, रत्नों की ढेरी को देख॥

▭ खुली बात

मेरे पूज्य पिता जी ने ये, देखो कितने रतन दिए।
और बताओ सत्य आपने, कितने दिन के लिये लिये?'

बोला सेठ—'सुनो सेठानी! सारा दान-धर्म का फल।
स्त्री वंध्या हो सकती पर, करनी जाती कब निष्फल!
दिया न तेरे पूज्य पिता ने, किया नहीं मेरा सम्मान।
श्वसुरालय में आदर मिलता, अगर जंवाई हो धनवान॥
देना दूर रहा, देने का, मन भी उनने किया नहीं।
खाना दूर रहा उस घर पर, जल भी मैंने पिया नहीं॥
जहां नहीं सम्मान, प्रेम हो, वहां नहीं पीना-खाना।
भला नहीं होता उस घर पर, भले आदमी का जाना॥
गर्व न कर अपने पीहर का, पीहर का धन इसे न मान।
सत्तू का जो दान दिया था, उसका मिला प्रभाव महान॥
मैं लाया था चुन-चुन कंकर, रत्न हो गए वे सारे।
श्रद्धा करो धर्म पर अपनी, बनो धर्म के ही प्यारे॥

सेठ और सेठानी दोनों, हुए धर्म में अति तत्पर।
श्रावकत्त्व सम्यक् आराधा, बने अमर सुखपूर्वक मर॥

□ चान्दनीय-चिन्तन

'चन्दन' दान-धर्म की महिमा, मिली सेठ को हाथों हाथ।
इसीलिये तुम जुड़ो धर्म में, दिल की दृढ़ताओं के साथ॥
कष्ट-काल में धर्म न छोड़ो, मांगो नहीं मुसीबत में।
रहा बोलना दूर, लिखो मत- हाल गरीबी का खत में॥

कौन किसे देता है बोलो, देते सुख अपने ही दिन।
रोकर और मांग कर अपना, करना क्यों फिर हृदय मलिन॥
सहो शान्ति से विपदाओं को, कट जाएंगी अपने आप।
रोने से विपदा बढ़ती है, बढ़ता है हार्दिक संताप॥
सहना भी तो एक धर्म है, रोना पाप बड़ा है एक।
'चन्दन'सुन'जिनदत्त' कथानक, आप रखोगे पूर्ण विवेक॥

▭ पूर्त्ति और प्रकाश

महिमा दान सुपात्र की, 'चन्दन' करता सिद्ध।
कथा सेठ 'जिनदत्त' की, सुनिये जगत प्रसिद्ध॥

पाप-पुण्य का फल सदा, मिलता हाथों हाथ ।
पालो प्रत्याख्यान भी, मज़बूती के साथ ॥

किस क्षण में किस वस्तु का, क्या होता परिणाम ।
लेना कभी न चाहिये, और किसी का नाम ॥

नाम-कर्म का लीजिये, रखिये दृढ़ विश्वास ।
'चन्दन' इस आख्यान से, देता यही प्रकाश ॥

○ ३ ○

अनमोल हीरा

जो पहचान लिया हीरे को,
तो उसको क्यों खोना जी !
देखो एक जोहरी जी को,
पड़ा बहुत फिर रोना जी !

वन और गडरिया

एक गडरिया गया चराने, भेड़-बकरियों को वन में ।
जो भी देखा सुना व्यक्ति ने, अपनाता वह जीवन में ॥
नदी किनारे तरु-छाया में, बैठा छेड़ रहा है तान ।
अपना समय बिताने को ही, 'चन्दन' गाया जाता गान ॥
उमड़-घुमड़ कर बादल नभ में, घूम रहे हैं इधर-उधर ।
गाता-गाता डाल रहा है, उन पर अपनी शुद्ध नज़र ॥
घास बिछी धरती पर मानो, बिछा गलीचा सुखकारी ।
प्रकृति-नदी की लीलाएं तो, सब को लगती हैं प्यारी ॥

सरिताएं कल-कल रव करतीं, दौड़ रही हैं होड़ लगा।
बिना होड़ के नहीं किसी से, जाता है अति तेज़ भगा॥

गिरियों से निर्भर गिरते हैं, प्यास बुझाने पान्थों को।
जीवन देकर करते रहते, सेवा क्लान्तों-श्रान्तों को॥
उठो यहां से, हटो यहां से, जाओ मेरी छाया छोड़।
कभी न कहते हैं वन के तरु, शान्ति पूर्ण निज देते क्रोड़[1]।
चरो घास पीओ शीतल जल, वन में घूमो इधर-उधर।
ध्यान गंडरिया रखता सारा, भेड़ कौन सी गई किधर॥
लाठी से, बोली से सब को, रखता है अपने आधीन।
जिसका जो धंधा होता है, होता उस में वही प्रवीन॥
लेखक[2] पिता पुत्र से बछड़ा, बांधा गया न सारी रात।
एक पलक में बांध दिया है, सेवक ने आकर के प्रात॥

□ पत्थर का टुकड़ा

चमकीला पत्थर का टुकड़ा, नदी किनारे एक पड़ा।
पड़ा सामने ऐसे समझो, जहां गडरिया स्वयं खड़ा॥
वर्षा ऋतु में आया करते, जल के साथ पड़े पत्थर।
पड़े हुए पत्थर-कंकर सब, उजले हो जाते घुल कर॥

---

१ गोद। २ यह एक योरोपीय घटना है

घड़ने कोई नहीं बैठता, फिर भी होते घाट अनेक।
नहीं संग्रहालय में जाना, नदी-किनारे लो यह देख ।।
उठा लिया उसने वह पत्थर, खेल रहा है उसे उछाल।
गाता और नाचता जाता, मस्ती भरी दिखाता चाल ।।
लौटा भेड़-बकरियों को ले, लिये हाथ में वह कंकर।
मूढ़ नहीं पहचाना करते, कंकर-हीरे का अन्तर ।।

□ एक सेर गुड़

घुसा गांव की सीमा में जब, आई एक दुकान बड़ी।
चमकीले कंकर पर सहसा, खड़े सेठ की नज़र पड़ी ।।

"अरे गडरिये ! पत्थर तेरा, अगर बेचना हो तो बोल।
तोल-मोल की नहीं जरूरत, एक बार में कहदे मोल ।।"

"एक सेर गुड़ लूंगा यदि यह, पत्थर लेना हो तो लो।
सच्चा व्यापारी या क्षत्रिय, करते एक घाव में दो ।।"

बनिये ने गुड़ तोल दिया है, मोल ले लिया वह पत्थर।
काम घड़ा करने में लेता, और काम क्या दे कंकर ।।

□ एक रुपये में

बहुत दिनों के बाद बिसाती, सौदा लेने को आया।
चमकीले पत्थर को देखा, बहुत-बहुत मन को भाया॥

"बोला-चमकीला यह पत्थर, मुझको देदो कह दो मोल।"
"रुपया एक लगेगा भाई! वैसे पत्थर हैं अनमोल॥
तुझे चाहिये तो तू लेले, मेरे आता काम नहीं।
बिना काम की वस्तु किसी को, क्या देती आराम कहीं?

रुपया एक दे दिया नकदी, लिया बिसाती ने पत्थर।
चमक-दमक पर मुग्ध हुआ मन, नहीं देखता काण-कसर॥

□ बिसाती की वेदना

जब अपना सामान सजाता, रखता पत्थर भी बाहर।
ग्राहक कोई आ जाए तो, क्यों जाए वह खाली कर॥
पत्थर का ग्राहक कोई भी, नहीं दिनों तक आया जी।
लेकर पत्थर एक रुपय्या, मैंने व्यर्थ गंवाया जी!!

कितना सौदा आजाता यदि, नकद रुपय्या होता पास।
रकम बांध दी है मैंने तो, नहीं लाभ की कुछ भी आश॥

□ मेले का मौका

मेला लगा एक दिन भारी, लगी दुकानें कई वहां।
गए सभी व्यापारी जब हैं, रुक सकता था वही कहां ?
गया बिसाती भी मेले में, सजा लिया अपना सामान।
उस चमकीले पत्थर को भी, दिया गया है ऊंचा स्थान॥
सूई, कैंची, डोरा, डिबिया, कंघी, दर्पण लेते नर।
कोई मिला नहीं ग्राहक जो, ले यह चमकीला पत्थर॥
मेला भरा हुआ है भारी, नर-नारी की भीड़ लगी।
मेलों-ठेलों में ही होते, चोरी-धोखा लूट—ठगी॥

□ संध्या का समय

संध्या होने से पहले ही, मेले वाले जाते घर।
क्योंकि रात में रहता ही है, लूटपाट का भारी डर॥
कम दामों में बिकनें लगता, ऊंचे दामों वाला माल।
जानें की तैयारी में सब, लेते अपना घर संभाल॥

नहीं मुनाफ़ा, सही-सही में, पार करो इतना तो माल।
ग्राहक खाली चला न जाए, लेने लायक ले तत्काल ॥

□ पत्थर की परीक्षा

एक जौहरी घूम रहा है, इस मेले में इधर-उधर।
क्या बिकता क्या खपता सौदा, क्या मिलता है किधर-किधर ॥
जिधर बिसाती बैठा था वह, आया उसी हाट के पास।
उस चमकीले पत्थर पर अब, दृष्टि पड़ी जा करके खास ॥
समझ गया—यह तो हीरा है, हीरे से यह नर अनजान।
अगर जानता होता तो क्यों, देता इसे यहां पर स्थान ॥
"खड़ा रहा दो मिनट देखता, बोला—"बेचोगे पत्थर ?"
बोला—"नहीं बेचना होता- तो मैं बैठा रहता घर ॥
माल बेचने को आया हूं, लो देखो कुछ करो पसन्द।"
"मोल बताओ इस पत्थर का, और माल सब करदो बन्द ॥"

□ बिसाती और जौहरी

"रुपय्ये पांच लगेंगे इसके, अगर आपको लेना है।"
ग्राहक बोला–"ऐसा लगता, तुम्हें नहीं यह देना है ॥

खड़ा रहा दो मिंट देखता, बोला,-"बेचोगे पत्थर ?"

"एक रुपय्या लेलो नक़दी, देदो पत्थर चमकीला।"
बोला—इतना क्यों सस्ता दूं, नहीं गांठ का मैं ढीला॥
इतने दिन तक रोक रुपय्या, अव पूरे ही लूंगा पांच।
बनिया नहीं बिसाती हूँ मैं, सदा बोलता आया सांच॥'

"ले दो, ढाई, तीन, चार ले, ये ले साढ़े चार भले।
थे ले पौने पांच, चवन्नी- जो छोड़े तो काम चले॥
तेरह, चौदह, पन्द्रह आना, कुछ तो करना होगा कम।
किसी माल की क्या मिलती है, मुंह से मांगी हुई रक़म॥
चार रुपय्ये साढ़े पन्द्रह, आने लेलो अब तो मान।
दो पैसे के ख़ातिर मेरा, क्या न रखेगा तू सम्मान?"

"दो क्या एक नहीं छोडूंगा, लूंगा जो बोला है दाम।
लेना हो तो लेलो, वरना- जाओ, करने दो आराम॥"

"चार रुपय्ये पौने सोलह- आने ले लो करो विचार।
नक़द दाम ही होगा सारा, नहीं करूंगा मित्र! उधार॥
बतला एक रुपय्या इसका, तेरे को है देता कौन।
रुपय्ये पांच खर्च कर बतला, और इसे है लेता कौन?
पत्थर के टुकड़े के ख़ातिर, मैंने समय किया बरबाद।
छोड़ी जाती बात न अपनी, बात-बात का होता स्वाद॥

कहा बिसाती ने लाला जो ! मेरा सिर मत खाओ जी !
आप नहीं ले सकते पत्थर, आगे कदम बढ़ाओ जी !
पूरे आप न देते, मैं भी- नहीं अधूरे लेता दाम।
सौदा कैसे पट सकता है, कट सकता जब नहीं छिदाम ॥

रत्न-परीक्षक लगा सोचने, वापस आकर ले लूंगा।
अभी नहीं दूं, फिर चाहे मैं, पूरी कीमत दे दूंगा ॥
कोई नहीं यहां पर आता, हीरे का लेने वाला।
रुपय्ये पांच भला पत्थर के, मिलता क्या देने वाला ॥
ऐसे सोच-समझकर बोला, अच्छा भाई ! जावूं मैं।
"हां-हां जावो बड़ी खुशी से, नहीं तुम्हें बुलवावूं मैं ॥
लेता होगा वह आएगा, मैं देता आवाज नहीं।
मोल-माल करते हो इतना, क्या आती कुछ लाज नहीं ?"

सुन कर चला जौहरी आगे, हर्ष बिसाती ने पाया।
हाय! हाय! भगवान! आज यह, कैसा था ग्राहक आया ॥
मात्र एक पैसे के खातिर, चला गया है सौदा छोड़।
अरे! निरर्थक घण्टे भर तक, की मेरे से माथा फोड़ ॥

न्याय "काक तालीय" समझलो, आया एक जौहरी फिर।
घर जाने की तैयारी में, निकला होके शीघ्र इधर ॥

नज़र पड़ी उस पत्थर पर बस, परख लिया उसने हीरा।
निर्णय लिए बिना क्या डाक्टर, कभी दिया करते चीरा ?
थामे क़दम उठाया पत्थर, बोला—क्या यह बेचोगे ?
ठीक-ठीक क़ीमत बतलादो, नहीं बात को खींचोगे ॥
आश्चर्यान्वित हुआ बिसाती, पत्थर है क़ीमत वाला।
तभी उठा कर पहले पत्थर, मोल पूछता है लाला ॥
जितना गुणा लाभ है करना, सोचा मन से विश्वावीस।
इस पत्थर की क़ीमत है जी! पूरे नकद रुपय्ये बीस ॥
देकर बीस रुपय्ये नक़दी, चला जौहरी अपने घर।
डर है मन में अन्य जौहरी- की पड़ जाए नहीं नज़र ॥
एक लाख कीमत का हीरा, बीस रुपय्यों में पाया।
मेले में मैं आया अथवा, यह मेला मुझको लाया ॥

प्रथम जौहरी सौदा लेने, गया हुआ था जो आगे।
आया नहीं अभी बेचारा, सोई क़िस्मत क्यों जागे ॥
आया धीरे-धीरे चलकर, बोला हठी बिसाती रे !
मैंने नहीं आज तक देखा, तेरा कोई साथी रे !
ले ये रुपय्ये पांच पूर्ण ले, दे—दे पत्थर चमकीला।
मैं ही ढीला हुआ अन्त में, तू तो नहीं हुआ ढीला ॥

बोला-"पत्थर बेच दिया है, चले गए लेने वाले।
अब तो श्रीमन्! और कहीं पर, वैसा पत्थर देखें भालें ॥

हैं! हैं! बेच दिया क्या पत्थर, वह तो हीरा था भारी।
अरे बिसाती! अक़्ल तुम्हारी, आज गई कैसे मारी?
"कितने में बेचा? बतलादे", "मैंने रुपय्ये बीस लिए।
मेरे बड़े-बडेरों ने भी, कभी न इतने गुणा किए॥"

"एक लाख का था वह हीरा, लेने वाला था चालाक।
अरे! बीस में देकर तूने, बेचा रे! क्या बेचा ख़ाक॥"
"पत्थर नहीं, क़ीमती हीरा, ऐसा मुझ को ज्ञान नहीं।
हर इनसान सभी विषयों का, हो सकता विद्वान नहीं॥

□ मैं नहीं, तू

"मैं मेरे धंधे में माहर, मूर्ख नहीं--अनजान नहीं।
बना जौहरी फिरता है तू, पर सच्चा इनसान नहीं॥
तुझे पता था यह हीरा है, कैसे चला गया तू छोड़?
सिर्फ़ एक पैसे के ख़ातिर, लिया मूर्ख! क्यों तब मुंह मोड़॥
रुपय्ये पांच लगाने से ही, मिल जाने थे तुमको लाख।
फिर भी लिया नहीं तूने तो, बुद्धू है या है चालाक?
मैं हूँ चतुर, मूर्ख तू पूरा, जा अपने घर रोता जा।
पश्चाताप-आंसुओं से तू, मुखड़ा अपना धोता जा॥

० ४ ०

जैसा देना वैसा लेना

□ कथा-सार और शिक्षा

कथा समाप्त हो गई पाठक ! सोचो इसका सार भला ।
क्या नवनीत मिला करता है, मथने की जो नहीं कला ?
चिन्तन-मनन समझिए मन्थन, तत्त्व-तत्त्व समझो नवनीत ।
दृष्टान्तों के द्वारा मैंने, समझाने की पकड़ी रीत ॥
मानव-जन्म अमोलक हीरा, लाखों से भी पढ़ कर मोल ।
नहीं गंवा देना पैसे में, हो जाएगा बड़ा मखौल ॥
लाभ उठा लो इससे पूरा, समय नहीं है सोने का ।
खेत नहीं बोया जाता है, समय नहीं जब बोने का ॥
निकल हाथ से जाएगा तो, क्या हीरा मिल पाएगा ?
पूरी क़ीमत देने वाला, कोई ग्राहक आवेगा ?
'चन्दन' बन्धन नहीं किसी का, हर मानव का है अधिकार ।
अपनी ही आत्मा से होता, अपनी आत्मा का उद्धार ॥
सन्त पन्थ बतलाते केवल, चलता पुरुषार्थी का काम ।
पुरुषार्थी के लिये हमेशा, होता है आराम हराम ॥
भोग मानसिक रोग समझलो, आर्त्तध्यान संयोग-वियोग ।
योगी बनकर बनो अयोगी, 'चन्दन' करलो नया प्रयोग ॥

दो हज़ार उन्नीस विक्रमी, 'बरनाला' में 'फाल्गुन' मास ।
रचा गया संगीत सरस यह, 'चन्दन मुनि' द्वारा सोल्लास ॥

□

जैसा देना वैसा लेना,
लेने को ही देते जन।
नहीं व्यंग है सत्य उक्ति यह,
'चन्दन' चिन्तन करो मनन ॥

□

४ जैसा देना वैसा लेना

भिखारी की मांग

एक भिखारी ने बाबू से, बोला—'कुछ देकर जाओ।
दयावान् हो, दीन दुखी पर, दया मया कुछ दिखलाओ॥

धन का नशा, नशा यौवन का, नशा अशिक्षा का सर पर।
जिस पर होता उसे न होती, इस दुनिया की खोज-ख़बर॥
बाबू झुंझला करके बोला, झोली इधर बढाओ तो।
लगा गालिया देने खुल कर, यही दिया ले जाओ तो॥

और नहीं कुछ देने को है, आते बहुत भिखारी लोग।
जान न खाओ हमें बहुत से, करने होते हैं उद्योग ॥
लिया नहीं तेरे से कुछ भी, देखो केवल दिया-दिया।
कुछ देने के लिये कहा था, तेरा कहना सही किया ॥

☐ आप को भी यही

"नहले पर दहला मारा है, मंगते ने उसदम ऐसा।
आगे जाओ पाओ बाबू ! मुझे दिया है अब जैसा ॥"
होश हुआ सुन करके मन में, बोला—'भूलो मेरी भूल।
फूल कहां से वह पाएगा, जिसने बोए शूल बबूल ॥"

☐ मेरी बात

देना हो तो दो, पर मत दो- गाली किसी भिखारी को।
दुःख मिटा सकते न आप क्यों, करते दुखी दुखारी को ?
इसके पास अगर होता कुछ, नहीं मांगने आता जी !
'बाबू जी' 'बाबू जी' कहकर, झोली क्यों फैलाता जी !

"वात्रू झुंझला करके बोला, झोली इधर बढ़ाओ तो"

स्थितियों ने ही इसे बनाया, भीख मांगने को मजबूर।
'चन्दन' क्यों बनता जाता है, मानव मानव के प्रति क्रूर॥

जीवन के साधन दो जिस से, हो जाए जीवन-निर्वाह।
जीवनधारी कब होते हैं, जीवन के प्रति बेपरवाह॥
करो नहीं अभिमान आज का, कल है छिपा अंधेरे में।
पता नहीं कब पड़ जाए नर, स्वयं प्रकृति के फेरे में॥
धन अस्थिर, यौवन अस्थिर है, स्थिर है केवल दया धर्म।
दया धर्म से बढ़कर कोई, 'चन्दन' क्या होगा सत्कर्म॥

राजकोट
सम्वत् २०१९, ज्येष्ठ

○ ५ ○

शान्ति की शक्ति

शक्ति शान्ति में पाई जाती,
शान्ति बनाने को 'चन्दन'।
नहीं सुहाता किसी व्यक्ति को,
किसी स्थान पर भी क्रन्दन ॥

○ ५ ○ शान्ति की शक्ति

शान्ति-गान

शान्तिनाथ जिनराज से, हुई शान्ति साकार ।
शान्ति प्राप्ति के हित करूं, प्रभु-स्तुति बारम्बार ।।

शान्ति नहीं हो अगर गगन में, उड़ सकते क्या वायु-विमान ?
शान्ति नहीं हो यदि सागर में, प्रवहण नहीं छोड़ते स्थान ।।
शान्ति नहीं हो अगर नगर में, रुक जाता है यातायात ।
शान्ति नहीं हो ज्योतिर्गण में, तब होता है उल्कापात ।।
शान्ति नहीं होती सरिता में, बाढ़ ग्रस्त हो जाता स्थान ।
शान्ति नहीं हो अगर वायु में, तभी उठा करते तूफ़ान ।।

शान्ति नहीं हो अगर चित्त में, हो जाता जीना दुर्भर।
शान्ति नहीं होने से नर, जान-बूझ कर जाता मर॥
शान्ति चाहिये, शान्ति चहिये, 'चन्दन' सारे क्षेत्रों में।
नहीं अशान्ति चाहिये किंचित्, वाणी में या नेत्रों में॥

शान्ति बनाये रखना ही तो, शान्त मनुष्यों का है काम।
शान्ति-भंग करने वाले क्या, स्वयं कभी पाते आराम?
बिना शान्ति के शान्ति न रहती, करती शान्ति शान्ति से प्यार।
शान्ति आपकी विश्व शान्ति का, बन सकती है मूलाधार॥
शान्ति सहित भोजन करने से, भोजन का रस बनता है।
बिना शान्ति के खा लेने से, भोजन भी विष बनता है॥
किसी अशान्त अवस्था में जो, किये गये वे त्याग नहीं।
बिना शान्ति के जो उपजा हो, वास्तव में वैराग नहीं॥
शान्ति नहीं हो जिस घर में वह, घर है नरकावास समान।
जंगल में भी मंगल लगता, अगर शान्ति मय सुन्दर स्थान॥

कहीं अशान्ति हो रही हो तो, शान्ति उसे सकती है जीत।
बिना शान्ति के शान्ति हो सके, नहीं ध्यान में ऐसी रीत॥
तू-तू मैं-मैं गरम लड़ाई, और लड़ाई क्या, भाई?
तू चुप मैं चुप खतम लड़ाई, शान्ति स्थापना सुखदाई॥

साधु गृहस्थी कोई भी हों, सभी चाहते शान्ति परम।
सदा शान्त हो जीवन मेरा, यह मानव का लक्ष्य चरम॥

गाली ही गाली सुनती है, नहीं शान्ति सुनती गाली।
गाली गाली लेने आती, जाने दो उसको खाली॥
गाली देने से गाली की, शक्ति बहुत बढ़ जायेगी।
गाली सुनकर गाली मत दो, फिर क्यों गाली आयेगी॥
देख अशान्ति और की अपनी- शान्ति भला क्यों खोते हो?
नग्न देख कर किसी और को, आप नग्न क्यों होते हो?
नहीं क्रोध से क्रोध दबेगा, नहीं आग से दबती आग।
विजातीय द्रव्यों का ढूंढो, खुला हुआ है कहां विभाग॥
क्रोध शान्ति से जीता जाता, जल से शीतल होती आग।
भाग-भाग कर आती लक्ष्मी, जब करते जाते हैं त्याग॥
शन्ति प्रेमियो! सुनो शान्ति से, मार्ग शान्ति का बतलाता।
"ॐ नमः श्री शान्ति" मन्त्र का, चमत्कार इक दिखलाता॥
संगीतों की रचना द्वारा, शिक्षा मिलती नई-नई।
'चन्दन' की सत् शिक्षाओं से, सुधर गये नर कई-कई॥

□ कथा प्रारम्भ

एक गांव में एक सेठ का, सुन्दर घर था लिपा-पुता।
मन-आंगन भी भरा हुआ था, चार पुत्र थे एक सुता॥

प्यारी सुता पिता-माता से; भ्राताओं से पाकर प्यार।
शिक्षा-संस्कारों के द्वारा, नहीं सुधार सकी व्यवहार॥
छोटे और बड़ों का इसके, मन ने जाना नहीं सवाल।
इसीलिये प्रत्येक व्यक्ति को, दे देती गाली तत्काल॥

पढ़ना-लिखना सीना-पोना, काम नहीं कोई सीखा।
कोई काम बिना सीखे तो, मानव का जीवन फीका॥
बच्ची है-बच्ची है कहकर, पहले डांटा दिया नहीं।
घर वालों ने कभी सुता को, थप्पड़—चांटा दिया नहीं॥
इसने गाली अगर निकाली, सहली सब ने हंस-हंस कर।
सहा और भी मन बे-मन से, मारा यदि थप्पड़ कस कर॥
कहां कमाने जाना इसको, इसीलिये यह नहीं पढ़ी।
छौंक लगाये बिना कौन सी, बन जाती स्वादिष्ट कढ़ी॥
घर वाले सब भले आदमी, मात्र बुरी लड़की है एक।
नहीं इसे अब तक भी आया, जीने का व्यवहार विवेक॥

आयु सयानी होने पर भी, सकुचाने का नाम नहीं।
मात-पिता के कहने पर भी, करती घर का काम नहीं॥
काम एक ही खाना-पीना, सोना और झगड़ना है।
छोटी-छोटी बातों पर भी, लड़ना और अकड़ना है॥

रूप-रंग में कमी न कोई, कमी बुद्धि की बहुत बड़ी।
बड़बड़ गड़बड़ खड़बड़ करती, मौन न रहती एक घड़ी॥
सूरत मिट्टी की मूरत है, सीरत कहलाती उत्तम।
उत्तम गुण वालों की इज्ज़त, कभी नहीं हो सकती कम॥
हुकम चलाना ही आता था, नहीं मानना आता था।
कोई नहीं सहेली, इसका- नहीं प्यार से नाता था॥

☐ सगपन में अड़चन

सगपन करने के दिन आये, यौवन का जब हुआ उदय।
पूर्ण व्यवस्थित करता है नित, अपना सारा काम समय॥
लड़के वाले मात-पिता जब, इसे देखने को आते।
बुरा स्वभाव जानकर इसका, स्वीकृति कैसे दे जाते॥
केवल रूप-रंग के ऊपर, क्या करता कोई सगपन?
भला स्वभाव नहीं देखा तो, कहलायेगा पागलपन॥
मधुर स्वभाव आयु भर रहता, रूप-रंग क्या है स्थायी?
जो स्वभाव को परख न सकता, कहलायेगा सौदाई॥

कहीं दूर जाकरके आखिर, किया गया इसका सगपन।
साथ-साथ बारात बुलाकर, निपटाया है पाणिग्रहण॥

□ ससुराल गई

पीहर से ले विदा गई है, प्रथम बार लड़की सुसराल ।
माल ले गई और ले गई, अपनी वही पुरानी चाल ॥
नई बहू हूं सब से छोटी, इसका इसको ध्यान नहीं ।
नई-नई पहचान जान का, नये स्थान का ज्ञान नहीं ॥
सास ससुर पति देवर को भी, इसने दिया नहीं सम्मान ।
अपरिचितों का अपशब्दों से, किया बहुत भारी अपमान ॥
धीरे से भी इसे कहे कुछ, तो भी यह देती गाली ।
अगर सामने पति भी आये, वह भी क्यों जाये खाली ॥
खा लो पी लो और पहन लो, सजलो नये-नये श्रृंगार ।
काम नहीं करना कोई भी, नहीं किसी से करना प्यार ॥

□ मर जाये तो

सास बहू की बातें सुनले, क्यों सुनलें फिर जेठानी ।
ननदें नहीं सुना करती हैं, भाभी जी को कटु वाणी ॥
पति पत्नी की गाली सुनले, देवर सुन ले बुरा-भला ।
हम भी दम रखते हैं कुछ तो, सारे घर का स्वर निकला ॥
हम सारे हैं बुरे, भली है- नई बहू जो घर आई ।
गई आज़माई क्या ताक़त, आफ़त यह सिर पर आई ॥

अगर बहू मर जाये यह तो, लायें अच्छी लड़की देख।
रूप-रंग ही देखा हमने, देखा पहले नहीं विवेक ॥
भूल हमारी हमें खा रही, अब कैसे हो छुटकारा ?
गया परिश्रम सभी निरर्थक, नहीं चल रहा कुछ चारा !!

○ कैसे जीऊं ?

बहू सोचती—'श्वसुरालय है, अथवा कोई कारावास ?
कोई मुझे न लेने देता, सुख से यहां शान्ति की सांस ॥
सास बुरी है, बुरे श्वसुर हैं; देवर जेठ न एक भले।
ननद और जेठानी पति भी; सभी बुराई के पुतले ॥
सभी बुरे हों जहां, वहां पर; एक भला क्यों जी सकता !
पीहर वालों ने भी मुझको; भुला दिया है यह लगता ॥
नहीं पिता जी ने घर देखा; वर भी देखा भला नहीं।
भला कण्टकाकीर्ण मार्ग में; चल सकता है कौन कहीं ॥

ये सारे मर जायें तो मैं, सुख पूर्वक जीवन जीऊं।
सारा ही आकाश फटा है, कहां-कहां से अब सीऊं ॥
नींद हराम हो गई मेरी; खाना-पीना हुआ हराम।
याद नहीं रह पायेगा अब, शायद मुझको मेरा नाम ॥

□ शान्ति डूब गई

ऊब गये यों सारे उससे, सारो से वह ऊब गई।
दु:ख-सिन्धु में जीवन-नौका, मानो सब की डूब गई।।
मन:-शान्ति दोनों पक्षों की, है मिट्टी के मोल विकी।
कैसे हो छुटकारा, सबकी- इसी लक्ष्य पर दृष्टि टिकी।।

□ पिता जी आये

बीते मास चार-छ: ऐसे, स्वयं पिता जी आए हैं।
"बेटी लेने, दर्शन करने", कारण यही बताए हैं।।
मन ही मन सब हुए प्रफुल्लित, पर ऊपर से कहते हैं।
"कैसे भेजें" इसके कारण, हम सब सुख से रहते हैं।।
पर बेटी को कोई कैसे, पिता भुला भी सकता है?
कब लौटेगी बेटी मेरी, सदा पिता यह तकता है।।
आप धन्य हैं! आज आपने, अनुकम्पा दिखलाई है।
समझ रहे थे हम तो सचमुच, दिल से याद भुलाई है।।

हमको ऐसा लगता ऐसा, होना नहीं मुनासिब था।
दीर्घ काल तक पूज्य पिता को, सोना नहीं मुनासिब था।।

समय सुता से मिलने का यों, खोना नहीं मुनासिब था।
काम-काज का व्यर्थ बोझ सिर, ढोना नहीं मुनासिब था॥
प्यारी सुता तुम्हारी तुम को, पल भर नहीं भुलाती है।
मधुर याद फिर उसकी बोलो, क्यों न आपको आती है?

□ जल्दी ले जाओ

भाव भांपते हुए हृदय के, उनने केवल यही कहा।
आना तो था पहले लेकिन, भावी का बल प्रबल रहा॥
आया हूँ अब लेने को मैं, शीघ्र इसे तैयार करें।
अपनी मां से मिल आयेगी, मन में सोच-विचार करें॥

कहा सभी ने—'आप इसे तो, बहुत शीघ्र ले जाओ जी!
बात सोचने की क्या इसमें, देरी नहीं लगाओ जी!
करती होगी इन्तजार मां, उससे शीघ्र मिलाओ जी!
बेटी के जीवन की कालिका, स्नेह सहित विकसाओ जी!

□ बला गई

सारा घर है खुश जाने से, नहीं विदा में वार लगी।
नई वधू की आंखों में भी, नहीं अश्रु की धार लगी॥

नहीं सास ने कहा—'शान्ति से- जाकर जल्दी आना जी !
जब आओ लघु देवर के हित, वस्त्र मिठाई लाना जी !
देना पत्र भूल मत जाना, याद तुम्हारी आयेगी।
जब आओगी वापस तब ही, रोटी पूरी भायेगी ॥
जाती है तो जाने दो यह, जाती घर से एक बला।
बला दूर टलने से घर का, हो जाता है स्वयं भला ॥

□ पीहर पहुँची

बेटी को ले साथ सेठ अब, अपने घर पर आता है।
बड़े प्यार से प्रिय पुत्री को, स्वयं पास बिठलाता है ॥
'सत्य बता अय बेटी! तुझको, कैसी वह ससुराल लगी ?
सुन्दर स्वर्ग विशाल लगी या, जीवन का जंजाल लगी ?
लगी कली-सी कोमल अथवा, कांटों सम विकराल लगी ?
कहदो तज संकोच सर्वथा, जैसी 'चन्दनलाल' लगी ॥

○ रो पड़ी

प्रश्न पिता का सुनते ही बस, बांध हृदय का टूट पड़ा।
आंखों के पथ छिपे दर्द का, भारी सोता फूट पड़ा ॥

लम्बी लेने लगी सिसकियां, नहीं एक क्षण बोल सकी।
दिल का दर्द बताने को भी, मुख का द्वार न खोल सकी॥
मधुर वचन का पा आश्वासन, आखिर ऐसे कहती है।
क्या बतलाऊं पिता! आपको, पुत्री क्या दुख सहती है॥
मेरे चारों ओर पिता जी! ग़म की नदियां बहती हैं।
नरक-यातनाएं ही मुझको, हर क्षण घेरे रहती हैं॥

○ वे कैसे हैं?

सास ससुर हैं कैसे तेरे? बेटी! साफ़ सुनादे तू।
पूछ रहा हूं तुझे प्यार से, सब संकोच हटादे तू॥

"सास डाकिनी ससुरा डाकू, भरी रोष में बोली है।
घर के सभी सदस्यों की बस, बड़ी निकम्मी टोली है।"

"पूछा है फिर प्रश्न तीसरा, लेने मन का अता-पता।
और छोड़दे बेटी! तेरा, कैसा है पतिदेव बता॥"

"वे तो हैं यमराज दूसरे", बहकी है फिर ऐसे वह।
और आपको क्या बतलावूं, रखते मुझको जैसे वह॥

घर में जब भी आते तब ही, खाने को वह आते हैं।
नहीं भूल हो तो भी मुझ को, डण्डे सदा दिखाते हैं॥
सुख का सांस वहां पर मैंने, नहीं आज तक पाया है।
डुसके भरकर रो-रो करके, सारा समय बिताया है॥

○ पुत्री का निर्णय

हाथ जोड़ कर कहती हूँ अब, जाऊंगी सुसराल नहीं।
क्योंकि बाप के घर रहने से, उठता हीन सवाल नहीं॥
पितृ-मातृ-सेवा में रहकर, अपना समय बितावूंगी।
घर का सारा काम करूंगी, रूखी-सूखी खावूंगी॥
नहीं चाहिये मुझको वैभव, और हार-शृंगार नहीं।
अगर नहीं हो शान्ति चित्त में, जीने में भी सार नहीं॥
हथिनी जैसी मेरी काया, सूख होगई लकड़ी-सी।
क्या न कलाई देख रहे हो, मानो पतली ककड़ी-सी ?
अगर सुपारी होता यह दिल, तो दिखलाती टुकड़े कर।
टुकड़े-टुकड़े हुआ कलेजा, झांको मेरे मुखड़े पर॥

इतना प्यार आपका था पर, घर-वर देखा ठीक नहीं।
सारा खाका ही बिगड़ा है, दी जाती अब सीख नहीं॥

क़िस्मत ही फूटी जब मेरी, नहीं आपका कोई दोष।
'चन्दन' क़िस्मत अगर न होती, तो कैसे लेते सन्तोष॥

थोड़े दिन तक आप न आते, तो शायद मैं मर जाती।
पता नहीं मर जाने पर भी, आगें किसके घर जाती॥
आप आगये उचित समय पर, मैं जीवित हूं मिल पाई।
इसीलिये जीवन की नींवें, नहीं अभी तक हिल पाईं॥

○ सेठ का अंतर

पिता चतुर था इसीलिये वह, क्षण भर में सब जान गया।
बुरा कौन है भला कौन है, असल बात पहचान गया॥
कभी बुरा क्या हो सकता है, वह सारा का सारा घर?
बुरी यही है मेरी बेटी, लिया सेठ ने निर्णय कर॥
उसे सुनाये पर वह कैसे, बेटी अपनी ठहरी जब।
यही सेठ के सम्मुख 'चन्दन', बनी समस्या गहरी अब॥
अधिक समय तक मात-पिता के, घर न लड़कियां रहती हैं।
जीवन भर ऐसी कन्याएं, दुःख-ताप ही सहती हैं॥
करना मुझे चाहिये अब क्या, सोच रहा है सेठ यही।
आखिर उसने ढूंढ निकाला, समाधान जो शुद्ध सही॥

बोला—'बेटी! जो कुछ तुझ से, विवरण मुझको ज्ञात हुआ।
क्या बतलाऊं मेरे मन पर, बहुत बड़ा आघात हुआ॥
नहीं कभी भी पहले ऐसा, सिर पर उल्कापात हुआ।
दिल है टुकड़े-टुकड़े सुनकर, यह क्या तेरे साथ हुआ!!
सारे समधी हैं यों खोटे, अगर पता पा जाता मैं।
सपने में भी तेरा उस घर, नहीं विवाह रचाता मैं॥
ज्यादा जोर और भी अपना, जाकर कहीं लगाता मैं।
जैसे भी बन पाता 'चन्दन', जीवन सुखी बनाता मैं॥
मगर सोचना व्यर्थ सभी कुछ, अब तो इसकी बाबत है।
"बिंध गया सो मोती" वाली, क्या न यथार्थ कहावत है?
बढ़ी हृदय की धड़कन ऐसी, देखी जब बेहाल सुता!
क्योंकि नहीं बदली जा सकती, लड़की की सुसराल सुता!
लेकिन एक नज़र में आती, अब भी सुन्दर राह सुनो।
"एक पन्थ दो काज" बनेंगे, मेरी नेक सलाह सुनो॥

○ मन्त्र की बात

मन्त्र प्रभावोत्पादक मुझको, मेरी बिटिया! आता है।
सही साधना करने से वह, चमत्कार दिखलाता है॥

हैं अनुभूत हथेली पर वह, सरसों सदा जमाता है।
करने से षट् मास साधना घर वश में हो जाता है॥
सारे ही झगड़ों-टंटों से, मिल जाती है मुक्ति महान।
श्रद्धामय है सत्य साधना, मन्त्र न होते तर्क-प्रधान॥

☐ लड़की का हर्ष

मन मानी सुन बात पिता से, सुता हर्ष से उछल पड़ी।
दौड़ गई शुभ लहर खुशी की, रोम-रोम में उसी घड़ी॥
बोली—'ऐसा ही सिखलादें, मन्त्र पिता जी! आप अभी।
घर वालों से अगला-पिछला, लूंगी वैर निकाल सभी॥

बोले पिता—'साधना उसकी, लेकिन भारी दुष्कर है।
भूल-चूक हो जाने से तो, हो जाता गुड़-गोबर है॥'

तत्क्षण ही बोली तब लड़की, करिये फ़िकर न आप पिता।
फ़र्क नहीं कुछ आने दूंगी, पूर्ण करूंगी जाप पिता!
मन्त्र बताना लेकिन ऐसा, मिट जाए संताप पिता!
लगा नहीं रह जाए पीछे, फिर तो कोई पाप पिता!
कृपा कीजिये बना दीजिये, जीवन-पथ अब साफ़ पिता!
घर भर में से मेरे कोई, बोलें भी न खिलाफ़ पिता!

षट् मासों की बात कौन सो, पूरा जाप निभाऊंगी।
जैसा बतलायेंगे वैसा, विधि-विधान अपनाऊंगी॥

□ मन्त्र और विधि

देख सुदृढ़ता बेटी की यों, पिता बहुत हरषाया है।
रोम-रोम ही उसके तन का, फूला नहीं समाया है॥
"ॐ नमः श्री शान्ति" मन्त्र का, पाठ शुद्ध बतलाया है।
छः मासों में कैसे रहना, वह भी सब समझाया है॥
देना नहीं किसी को गाली, शान्त भाव से रहना है।
कड़वी-मीठी बात सभी की, हर्षित मन से सहना है॥
चित्त न कभी चुराना होगा, बेटी! घर के कामों से।
बुलवाना होगा सब को हीं, सम्मानित शुभ नामों से॥
गाली भी दे कोई तुम को, गाली नहीं सुनाना तुम।
मौन सहित शुभ मन्त्राक्षर ये, मन से जपते जाना तुम॥
विनय बड़ों का करना, करना- स्नेह सभी घरवालों से।
नहीं खयाल टकरने देना, अपने उठे खयालों से॥

कोई बोलाए तो कहना, हां जी! आई अभी-अभी।
वस्तु मंगाये तो कहना यों, हां जी! लाई अभी-अभी॥

अभी नहीं कल कर दूंगी यह, अपना भाव न देना थोप।
थोपा जाए अगर आप पर, उस पर करना कभी न कोप ॥

रहना स्वच्छ स्वच्छ रखना घर, स्वच्छ बनाये रखना मन।
भौंहें चढ़तीं नाक सिकुड़ता, नहीं सुहाता गंदापन ॥
मान और मन रखना 'चन्दन', सरल नहीं है औरों का।
आत्म-समर्पण द्वारा कलियां, चित्त लुभातीं भौरों का ॥
बड़ी कठिन है बात यही बस, और नहीं है कठिनाई।
अगर निभालेगी इतना तो, सिद्धि मन्त्र की भी पाई ॥

▭ सब कर लूंगी

हर्षित होकर बोली बाला, बहुत सुरीली वाणी से।
सब विधियों का पालन बिल्कुल, कर लूंगी आसानी से ॥
दुःख सहूँगी शान्त रहूंगी, नहीं कहूंगी कठिन वचन।
सुन्दर सेवा भाव गहूंगी, अर्पण कर दूंगी जीवन ॥

पा सन्तोष-जनक प्रत्युत्तर, पिता प्रफुल्लित हो बोला।
सफल कामनाएं हों तेरी, वचनामृत ऐसा घोला ॥

☐ कर्त्तव्य विमुखता

पीहर में रहते-रहते यों, बीत गए लगभग छः मास।
श्वसुरालय से समाचार भी, आये कभी न इनके पास॥
कब भेजोगे? कब आयें हम? पुत्रवधू को लेने जी!
श्वसुरालय वालों को ऐसे, समाचार थे देने जी!
चाहे जैसी है वह लेकिन, पुत्रवधू तो है उनकी।
कभी न उनने सुध-बुध ली है, पुत्र-वधू की वह जिनकी॥
यही चाहते थे वे सारे, बहू नहीं आये तो ठीक।
ठीक यही है झगड़ालू के, रहना नहीं कभी नजदीक॥
बिगड़ा पान पान की चोली, क्या देता है नहीं बिगाड़?
झगड़ालू नर फेंका करता, जड़ें शान्ति की सदा उखाड़॥

☐ कर्त्तव्योन्मुखता

सोच रहा है पिता सुता का, उचित नहीं है पीहर-वास।
शक्तिमान मुनियों का जैसे, अनुचित बतलाया स्थिरवास॥
बेटी वाले ही झुकते हैं, बेटे वाले कम झुकते।
नीचे हाथ आ गया जिनका, वे झुकने से क्यों रुकते॥
अगर नहीं वे लेने आते, मैं जाऊंगा पहुंचाने।
मानहानि मैं नहीं मानता, सहलूंगा मैं सब ताने॥

क्यों न आत्मजा के खातिर हम, सह सकते अपमान नहीं ?
जिस में हो अपवाद नहीं कुछ, ऐसा कहीं विधान नहीं ॥
स्थितियां ही देती आई हैं, परम्पराओं को नव मोड़ ।
झोड़ नहीं, कुछ छोड़ दीजिये, और लीजिये कुछ नव जोड़ ॥
क्या था, क्या है, क्या होना है, नहीं किसी के हाथ रहा ।
देती आई देती जाती, दुनिया युग का साथ यहां ॥
भला नहीं कुछ, बुरा नहीं कुछ, भला-बुरा है अपना मन ।
जोड़ लीजिये 'चन्दन' चेतन, नवचिन्तन से अपनापन ॥

आखिर लेकर साथ सुता को, बाप आप पहुंचाता है ।
कुछ भी बोले बिना लौटकर, अपने घर आ जाता है ॥

□ पुरानी आदतें

बिना बुलाये क्यों आई, क्या- श्वसुरालय में तेरा काम ?
है आराम पसन्द तुम्हें तो, लगता घर का काम हराम ॥
उस दिन गाली दी थी तूने, याद नहीं तो करले याद ।
तुझे चखाना ही होगा अब, गाली देने का क्या स्वाद ॥
क्यों न रखी पीहर वालों ने, दे न सके क्या वह रोटी ?
पहुँचाने को आये सीधे, अकल हो गई क्या मोटी ?

देखो कैसे बैठी है चुप, जैसे चुप होती बिल्ली।
क्या चूहों पर ताक रही हो? उड़ा रहे ऐसे खिल्ली॥

□ मन्त्र-साधना

ध्यान नहीं देती है बिल्कुल, पुत्रवधू इन बातों पर।
किये जा रही मन्त्र-साधना, शान्ति और समता रख कर॥
सब से पहले उठती, करती- आवश्यक गृहकार्य सकल।
भला घरेलू कामों में क्या, की जाती है कहीं नकल?
मैं क्यों करूं अकेली सारा, कब करती है जेठानी।
नहीं हिलाती हाथ बोलती- सास यहीं ला दो पानी॥
साफ़ सफ़ाई करूं भरूं फिर, कूएं पर जाकर पानी।
इतने पर भी सहूं सभी की, व्यंगमयी मैं कटु वाणी॥
खाना नहीं पकाता कोई, बर्तन जूठे मैं मलती।
फिर भी ननदें जेठानी जी, बता रहीं मेरी गलती॥
लेकिन मुझ को मौन साधना, सह लेने हैं सारे कष्ट।
सह लेने से ही होते हैं, सभी तरह के कष्ट प्रनष्ट॥

जी हां कहकर उत्तर देती, आलस का कुछ काम नहीं।
काम पड़ा हो जब तक बाकी, तब तक कुछ आराम नहीं॥

भूल गई सब पिछली बातें, भूल गई देना गाली।
धीर बनी गम्भीर बनी अब, चमक चली मुख पर लाली।।
क्रोध नहीं प्रतिशोध नहीं मन, बोध हो गया जीवन का।
पूर्ण मोद-आमोद मानती, भार नहीं अनुशासन का।।

अगर कभी कुछ कहता कोई, सब कुछ सहती जाती है।
शान्त स्वभाव बनाकर अपना, मन पर कभी न लाती है।।
मन ही मन में साध्य मन्त्र को, हरदम कहती जाती है।
नहीं दबाव किसी का, जीवन- सरिता बहती जाती है।।

□ बहू बदल गई

आश्चर्यान्वित थे घर वाले, बहू गई क्या कहीं बदल!
हम गाली देते हैं पर यह, क्रोध नहीं करती बिल्कुल।।
बोलाने पर जी हां–जी हां, कहकर उठकर आती है।
जो भी वस्तु मंगाओ बस वह, उसी समय ही लाती है।।
करती सारा काम अकेली, नहीं ंटाता कोई हाथ।
साथ बैठ कर घर वाला क्या, करता इससे कोई बात?
पता नहीं पीहर वालों ने, क्या कुछ इसे पिलाया घोल!
अंकन क्या हम कर पाये हैं, पुत्रव मोल।।

कितनी शान्त-दान्त है कितनी, कितनी कान्त तथा एकान्त।
भ्रान्त हो रही चित्त-वृत्तियाँ, यह सारा क्या है वृत्तान्त !!

मन से स्थान पालिया इसने, यही प्राथमिक सिद्धि मिली।
गुणन-क्रिया जितनी होती, उतनी अंक-प्रवृद्धि मिली ॥

▭ प्रत्यक्ष फल

जब जेठानी ननद एक दिन, देने लगीं उसे दुत्कार।
पुत्रवधू का पक्ष लेलिया, वृद्ध सास ने सभी प्रकार ॥

नहीं किसी से कुछ भी कहती, करती है यह अपना काम।
ख़बरदार ! जो पुत्रवधू का, कभी लेलिया तुमने नाम ॥
करने देती नहीं इसे भी, नहीं आप भी करती काम।
काम यही क्या हिस्से आया, करना अगले को बदनाम ॥
सहा नहीं जायेगा मुझसे, पुत्रवधू का यह अपमान।
जाओ चुप होकरके बैठो, कल से रखना पूरा ध्यान ?
मेरी बहू सयानी सुन्दर, परम सुशीला है विदुषी।
इसे देखकर मुझे हो रही, जीने की भी परम खुशी ॥

जब जेठानी ननद एक दिन, देने लगीं उसे दुत्कार।

□ पुत्रवधू पर प्रभाव

पुत्रवधू ने सोचा–'यह क्या ! सास ले रही मेरा पक्ष ।
मन्त्र प्रभावशील है इतना, यह देखा है अब प्रत्यक्ष ॥
बड़ी बहू का बेटी का भी, नहीं सास ने पक्ष लिया ।
दोनों को ही आड़े हाथों, मेरे अरे ! समक्ष लिया ॥
मेरे गुण गाती दिखलाती, मेरे पर कितना है स्नेह !
वर्षा ऋतु के बिना कहां से, आज भला यह बरसा मेह !!
प्रथम बार ही जीवन में यह, अद्भुत अवसर आया है ।
सचमुच शान्ति-मन्त्र की सारी, यह सुन्दरतम माया है ॥
पूज्य पिता हैं धन्य ! जिन्होंने, महामन्त्र बतलाया है ।
जिसने मेरे जीवन की यों, पलट दिखादी काया है !!

□ भण्डार सम्भालो

बीत गया सप्ताह शान्ति से, गाली कोई न देता अब ।
गाली क्या देगा, सारा घर, पक्ष इसी का लेता अब ॥
भार रसोईघर का सारा, लगी सौंपने सास इसे ।
कोठारों की चाबी देकर, देती है विश्वास इसे ॥
कब मंगवाना क्या मंगवाना, क्या खाना करना तैयार ।
सारी ज़िम्मेवारी ले लो, मैं न उठा सकती अब भार ॥

जेठानी को नहीं सौंपती, उसका नहीं मुझे विश्वास।
अगर सौंपदूं तो कर देगी, सारे घर का सत्यानाश॥

जिसे चाहिये भोजन इससे, मांगा करो सभी आकर।
पुत्रवधू जो कुछ भी देदे, उठो शान्ति से पी-खाकर॥
बच्चों को क्या देना, देना- बूढ़ों बीमारों को क्या।
कठिन नहीं होता निपटाना, सुख पूर्वक सारों को क्या?
स्वास्थ्य-ज्ञान होने से बनता, घर पर भोजन ऋतु अनुकूल।
रोगों को आमन्त्रण देती, अपने ही हाथों की भूल॥
बेला और कु-बेला का भी, आवश्यक है ज्ञान महान।
औषधि देते समय वैद्य भी, रखते अनुपानों का ध्यान?
औषधि सब से बड़ी अन्न है, मात्रा रखिये भोजन की।
'चन्दन' होगी नहीं शिकायत, कभी आपको तन-मन की॥

इतने सूत्र ध्यान में रख कर, सौंपा इसको कार्य महान।
अच्छी तरह निभा लेगी यह, दृढ़ता पूर्वक गृह-संस्थान॥

☐ सारी चाबियां

बीता एक महीना अब तो, बहू सभी के मन भाती।
जेठानी भी सास ननद भी, गीत उसी के हैं गाती॥

अपने घर की लक्ष्मो है यह, ऐसे सव वे वतलातीं।
कभी डाकिनी थी जो अव वह, लक्ष्मी रूप नज़र आती ।।

वोली सास--'वहू ! सम्भालो, वस्त्रों का भण्डार विशाल।
जिसको जैसी आवश्यकता, देना उसको वही निकाल ।।
ये गहनों की भरी पेटियां, इनकी सूची करो तैयार।
गुच्छा पड़ा चावियों वाला, खोलो करदो जीर्णोद्धार ।।
रुपये-पैसे वा नक़दी का, रखो तुम्हीं अव पूर्ण हिसाव।
चाहे तुझ से कोई भी नर, नहीं पूछना कभी जवाव ।।
वड़ी मालकिन तू है घर को, तेरे में है वड़ा विवेक।
एक महीने में ही हमने, अच्छी तरह लिया यह देख ।।

यथास्थान सव वस्तु सजाकर, रखती अपने हाथों से।
गृह-संस्थान सम्भाला जाता, कैसे केवल वातों से ।।
सुश्रूषा का भाव चाहिये, जिससे जीता जाये मन।
नहीं कभी भी होने दे वह, 'चन्दन' आपस में अनवन ।।

▭ वहू का विनय

रखो चावियां आप, आपकी- आज्ञा सदा वजाऊंगी।
जैसा आप मुझे दे देंगी, मैं वैसा ही खाऊंगी ।।

मैं छोटी हूँ आप बड़े हो, मैं तो इतनी योग्य नहीं।
योग्य आप हो इसीलिये बस, कहते मुझे अयोग्य नहीं॥
सास ससुर की सेवा करना, पुत्रवधू का नैतिक धर्म।
मैं छोटी हूं सब की सेवा, समझ रही मैं अपना कर्म॥

□ यही आज्ञा है

बोली सास— 'यही है आज्ञा, मिल कर सारे काम करो।
काम करो ऐसे जिससे इस- घर का उज्ज्वल नाम करो॥

बीते तीन महीने अब तो, बढ़ता जाता प्यार-दुलार।
पूछी जानें लगी सलाहें, पुत्रवधू का कर सत्कार॥
यह सौदा लें बेचें अथवा, क्या हम करें अमुक व्यापार?
पुत्रवधू की वाणी को ही, प्रमुख मानते सब आधार॥
जो यह कहती वह सच होता, इसीलिये विश्वास बढ़ा।
चाहे इसने ज्योतिष का तो, कभी वर्ण नहिं एक पढ़ा॥

□ प्यार का विस्तार

छोटे-बड़े सभी घर वाले, देने लगें बड़ा सम्मान।
जाति-बन्धुओं में भी इसका, माना जाता ऊंचा स्थान॥

आस-पास के भी सारे जन पाते हैं अब उससे प्यार।
खुला छोड़दो द्वार प्यार का, जीत-जीत है कहीं न हार।।
घर पर आये हुए अतिथि का, आदर करती तन-मन से।
'चन्दन' ऐसा नहीं मानिये, आदर होता है धन से।।

भूखा-प्यासा आता कोई, उसको भी करती परितृप्त।
दयावान आत्माएं हों जो, कभी नहीं होतीं वे दृप्त।।

□ आप भी करें

चार महीने निकल गये हैं, छोड़ा इसने जाप नहीं।
तोड़ा जाये अगर नियम को, हो जाता क्या पाप नहीं?
पुत्रवधू का नक्शा बदला, क्या यह मन्त्र-प्रताप नहीं?
कितनी शक्ति भरी है इस में, सकता कोई माप नहीं।।
सम्प्रदाय या किसी पन्थ की, लगी मन्त्र पर छाप नहीं।
यह रटती है अगर प्रेम से, रट सकते क्यों आप नहीं?
श्रद्धा पूर्वक जो अपनाएं, छोड़ें क्रिया-कलाप नहीं।
जाप किया जाता हो जब भी, करिये वार्त्तालाप नहीं।।
जप-तप करने वाले नर को, लग सकता है श्राप नहीं।
धर्मी नर को पाप क्रिया का, लग सकता अभिशाप कहीं?

जितना करो सभी थोड़ा है, रखना उसका नाप नहीं।
बिना जाप के परमात्मा से, होता कभी मिलाप नहीं ॥

□ धर्म एक स्वभाव

अवधि समाप्त होगई है अब, बीत गये पूरे षट् मास।
जाप निरन्तर कर लेने से, इसे हो गया सहजाभ्यास ॥
सांस-सांस में मन्त्राक्षर की, सहज-सहज ध्वनि आती है।
उच्चारण के लिये न मानो, रसना कभी हिलाती है ॥
सहज भाव से यथा सांस की, गति चलती है अपने आप।
मन्त्राक्षर का हो जाता है, ऐसे ही स्वाभाविक जाप ॥
जीवन-जाप अलग हो ऐसी, नहीं भावना भी आती।
इसीलिये बतलाया जाता, धर्म अभिन्न खरा साथी ॥
आत्म-स्वभाव रमणता ही तो, परम धर्म बतलाया है।
क्या न रहस्य सकल शास्त्रों का, इस में सही समाया है ?
पाप प्रवेश नहीं पा सकते, नहीं हृदय में खाली स्थान।
लिखे हुए कागज़ पर 'चन्दन', लिखा नहीं करते विद्वान् ॥

संन्यासाश्रम-सी स्थिति होती, क्या न गृहस्थाश्रम में भी।
भव्यात्माएं आ जाती हैं, मुक्तात्मा के क्रम में भी ॥

□ पिता जी आये

हुई पिता जी की अव इच्छा, बेटी को घर लाने की।
अथवा यों कह सकते इच्छा, जागी पता लगाने की।।
मैंने मन्त्र बताया था जो, उसने क्या फल दिखलाया।
पूछ लिया करते हैं शिशु को, जो गुरु ने हो सिखलाया ?

आया, मिले सगे सम्बन्धी, कैसे आये आप अभी ?
क्या लेने को आये ? जल्दी, क्या आते यों आप सभी ?
कल तो आये आप छोड़ने, आज आ गये हैं लेने।
कैसे प्रस्तुत हो सकते हैं, इसे विदाई हम देने।।
क्षमा करें इतनी जल्दी तो, हम भेजेंगे इसे नहीं।
इस घर की लक्ष्मी को श्रीमन्! रखें कृपा कर आप यहीं।।
पुत्रवधू के बिना यहां पर, चल न सकेगा कुछ भी काम।
उसके बिना रात-दिन सूने, सूना प्रातः सूनी शाम।।
माना पुत्री होती है प्रिय, पर अब तो कर दिया विवाह।
अतः उसे अब यहीं छोड़िये, हम सब की है यही सलाह,।।
अब तो बेटी हुई हमारी, यह है उसका हीं परिवार।
अतः भेजना उसका श्रीमन् ! लगता हमको भारी भार।।

▭ ऐसे करिये

कहा सेठ ने—'आप अभी तो, पुत्री को ले जाने दें।
इसकी माता अति उदास है, माता से मिल आने दें॥
आगे आप कहेंगे जैसे, वैसे करते जायेंगे।
बिना आप की इच्छा के हम, लेने भी क्यों आयेंगे?
अब भी जितना आप कहेंगे, उतना ही ठहरायेंगे।
अपनी नहीं, आपकी सब की- मर्जी सदा चलायेंगे॥

▭ विदाई की वेला

कहा सभी ने—'अच्छा अब तो, आप इसे ले जाओ जी!
ठहरायेंगे अधिक नहीं यह, वचन हमें दे जाओ जी!
इसके बिना हमारा बिल्कुल, चित्त न लगने पायेगा।
लेने अतः बहू को बेटा, शीघ्र सेठ जी! आयेगा॥'

कहा—'कहेंगे हमें आप जो, वैसा हुकम बजायेंगे।
सपने में भी कभी आपकी, बात नहीं उलटायेंगे॥

जल्दी आना कहकर सब ने, बड़े प्यार से विदा किया।
आदर देख पिता जी ने भी, परम शान्ति का सांस लिया॥

८ घर का विरह

पुत्रवधू के जाने से घर, लगता है सूना-सूना।
केवल कत्था लगा दिया है, नहीं पान में ज्यों चूना॥
डाले सभी मसाले लेकिन, मात्र शाक में लवण नहीं।
जैसे झुंझलाहट आती है, जब देता हो श्रवण नहीं॥

वस्तु कौन सी रखी कहां पर, पूछें किससे लाए कौन।
घर वालों ने क्या, घर ने भी, मानो साथ ले लिया मौन॥
घर का कोना-कोना सूना, नहीं कहीं होती आवाज।
सारे ही घर पर हैं लेकिन, नहीं बहू है केवल आज॥
खाना भाता नहीं नींद भी- आती है घर वालों को।
बिना बहू के कौन करेगा, पूरा उठे सवालों को॥
बिना एक दीपक के जैसे, निशि में तम है छा जाता।
बिना अन्न के जैसे भूखा, कष्ट यहां पर है पाता॥

विरह-काल का एक-एक पल, एक वर्ष-सा लेते मान।
आयेगी, जल्दी आयेगी, कर लेता है मन अनुमान॥
उसके सिवा नजर कब आता, जिस से मन को लगी लगन।
बिना लगन के सारी दुनिया, लगती सूनी यथा गगन॥

यही बहू है पहले वाली, जिसको देते थे गाली।
"मर जाये तो अच्छा" कहते, आज होगया घर खाली॥
कोई लेने गया नहीं था, दिया नहीं था कोई पत्र।
इसके जाने से ही घर में, आज छागया दुख सर्वत्र॥
कभी नहीं आये तो अच्छा, मनौतियां पहले मानी।
आज चले जाने पर खाना, छोड़ दिया पीना पानी॥
कितना विस्तृत हो जाता है, अपने ही स्वार्थों का क्षेत्र।
केवल पीहर जाने पर यों, भरे आंसुओं द्वारा नेत्र॥
है संयोग-वियोगों की ही, दुनिया में सारी माया।
नहीं अयोगी बन सकते हम, जब तक साथ लगी काया॥

□ पिता का घर

पिता चला पुत्री को लेकर, पहुंच गया है अपने घर।
घर पर पहुच किया करते हैं, बातें खुलकर पुरुष चतुर॥

"मन्त्र तुझे सिखलाया था जो, क्या उसने दिखलाया फल?
हृदय खोलकर कहदो बेटी! अपनी बीती बात सकल॥"

बोला गया नहीं बेटी से, गिरे हर्ष से आंसू दो।
आखिर बोली—'उसी मन्त्र ने, मेरा पाप दिया सब धो॥
दूर रहे षट् मास पिता जी! सात दिनों में पाया फल।
वास्तव में विश्वास कीजिये, मन्त्रों में होता है बल॥
सभी मानते बड़ी मुझे अब, करते मन से पूरा प्यार।
सौंप रखा है सास-ससुर ने, मुझको सारे घर का भार॥
जन्म दिया था पहले, जीवन- दिया मन्त्र सिखला करके।
गुण मानूंगी सदा आपका, हृदय शुद्ध दिखला करके॥

▫ पिता का प्रश्न

बात सुता की सुनकर बोले, पिता हर्ष से भर कर तब।
यह तो मुझे बता दे बेटी! सास ससुर हैं कैसे अब?
दोनों ने ही नहीं किया क्या, कभी अनादर किसी सबब।
पहले की ही भान्ति मुझे तू, खोल कहानी कहदे सब॥

बोली—देवी और देव हैं, मेरे प्यारे सास ससुर।
आदर करते हैं वे मेरा, सदा आप से भी बढ़कर॥

''और जंवाई कैसे मेरे? यह भी साफ़ बता बेटी!
रही-सही इक शंका बाकी, लगते हाथ मिटा बेटी!'

"पति प्यारे परमेश्वर जैसे, पिता ! सत्य मैं कहती हूँ ।
सदा उन्हीं की चरण-शरण में, मैं प्रमुदित-सी रहती हूं ॥
बहुत चाहते हैं वे मुझको, करते हैं सम्मान बहुत ।
सुख दुख का मेरे जोवन का, रखते हैं अब ध्यान बहुत ॥"

सुनकर बात सुता का सच्ची, समझ गया है पिता तुरन्त ।
शान्ति-मन्त्र के द्वारा हो यह, हुआ कलह का मानो अन्त ॥
वे के वे ही हैं घर वाले, बदला इनका मात्र स्वभाव ।
मना दिया है इनके मन को, शान्ति-मन्त्र का सही प्रभाव ॥
बेटी ! सुखी देख कर तुझको, खुश-खुश होता मेरा मन ।
बिना धर्म के बिना शान्ति के, सफल नहीं होता जीवन ॥

□ अपने घर पर

श्वसुरालय से लेने इसको, पति उसका आ जाता है ।
विनय दिखाकर विदा करा कर, फूला नहीं समाता है ॥
घर पर विनय सभी का करती, मीठे वचन सुनाती है ।
सुख पहुंचाती खुद सुख पाती, पलकों पर छा जाती है ॥
घर भर में क्या नगरी भर में, बस यश इसका छाया है ।
शान्तिमयी नारी गृह-लक्ष्मी, शास्त्रों ने बतलाया है ॥

□ सार और समापन

हुई समाप्त कहानी समझो, बाकी क्या बतलाना है।
'चन्दन मुनि' ने श्रव्य सुनाया, क्या अब और सुनाना है ॥
शान्ति बनाये रखने से ही, जीवन होता परम पवित्र।
इसीलिये दिखलाया मैंने, शान्ति-मन्त्र का सच्चा चित्र ॥

मण्डी जो पंजाब प्रान्त की, सु-प्रसिद्ध 'बरनाला' है।
यहीं रचा संगीत सरस यह, सुन्दर शिक्षा वाला है ॥

"दो हज़ार उन्नीस" विक्रमी, होली पर्व सुहाया है।
त्रिशला-नन्दन को कर वन्दन, 'चन्दन'—मन हरपाया है ॥

बरनाला
२०१६ होली

○ ६ ○

इलाची कुमार

□

चढ़ा खेल दिखलाने को पर,
खेल समाप्त किया सारा।
"कुंवर इलाची" बना केवली,
'चन्दन' सद्भावों द्वारा॥

□

० ६ ० इलाची कुमार

मंगलाचरण

मङ्गलमय मुनि मण्डली, के मंगल उपदेश ।
जन-मङ्गल के ही लिये, दें मङ्गल सन्देश ॥

उद्देश्य और प्राक्कथन

कर्मवाद पर कीजिये, अधिक अडिग विश्वास ।
कर्मों द्वारा जीव का, रुकता आत्म-विकास ॥
सूक्ष्म-सूक्ष्म अति सूक्ष्य हैं, कर्मवाद के भाव ।
कर्मों का इस जीव पर, होता बड़ा प्रभाव ॥

कर्म नहीं आते नज़र, पर हैं अति बलवान।
बिना कर्म कुछ भी नहीं, कर सकता इनसान॥
कर्मवाद से जन्मता, अलग वाद एकत्व।
जैनधर्म ने कर्म का, माना बहुत महत्त्व॥

☐ आत्म-कर्तृत्व

अपने आप हुए नहीं, किये गए ये कर्म।
बंधता कर्त्ता आप ही, समझो अन्तर मर्म॥
बुनकर फंसती जाल में, जैसे मकड़ी आप।
कर्म-जाल से ही बने, जग के सब सन्ताप॥
करने से पहले नहीं, सोचा करते लोग।
लोग सोंचते कर्म का, जब पाते फल-भोग॥
सोचो पहले फिर करो, हरो चित्त-सन्ताप।
'चन्दन' भव सागर तरो, डरो न मन में आप॥

चित्त चाहता, पर नहीं, करने देते कर्म।
कर्म उदय से जीव कब, करने पाता धर्म॥
जिस-जिस से इस जीव का, जो होता सम्बन्ध।
होकरके रहता वही, पड़ा हुआ अनुबन्ध॥

किसकी भी चलती नहीं, इसमें कोई चाल ।
कोई अपने कर्म को, क्या सकता है टाल ?
ऐसा कैसे होगया ? बुरा हुआ यह काम ।
हम तो केवल देखते, कर्मों का परिणाम ॥
कर्म दूसरों के किये, भोग न सकता आप ।
निज-निज कृत ही भोगता, पुण्य, धर्म या पाप ॥
किस क्षण में किस कर्म का, कैसे होता अन्त ।
कुंवर 'इलाची' की कथा, सुनो सरस अत्यन्त ॥

▭ 'इलाची' की जन्म भूमि

एक 'इलावर्धनपुर' सुन्दर, भारत मां का तारा था ।
जिसकी शोभा के समक्ष तो, सुरपुर भी बस हारा था ॥
नहीं कहीं था कूड़ा-करकट, कहीं कहीं पर कादा था ।
स्वच्छ, सुरम्य, मनोहर, उत्तम, ज्यादा से भी ज्यादा था ॥
और किसी भी पुर में ऐसी, देखी नहीं सफ़ाई थी ।
नगरपालिका की ही समझो, सारी यह चतुराई थी ॥
जनता के सुख-दुख की जिसको, भारी चिन्ता रहती थी ।
इसीलिये तो अमन-चैन की, सरिता कल-कल बहती थी ॥
जनता थी सब उसको प्यारी, जनता को वह प्यारी थी ।
दोनों के ही दिल में 'चन्दन', प्रीति परस्पर भारी थी ॥

वहां नागरिक सभ्य सरल थे, गुणानुरागी गुणी गुणज्ञ।
सत्य, प्रेम, के परम उपासक, थे उपास्य उनके सर्वज्ञ ॥
सहयोगों द्वारा करते थे, सिद्ध स्वयं जन सह अस्तित्व।
सह अस्तित्व विना क्या 'चन्दन', विकसित हो सकता व्यक्तित्व ?
कितना योगदान है किसका, इसका अलग नहीं खाता।
योगपान लेकर देकर ही, मानव मानव वन पाता ॥
सुनकर और किसी का वनकर, सव कुछ सीखा जाता है।
अपने आप किसी भी नर को, ज्ञान, विवेक न आता है ।
सभी सभ्यताएं देती हैं, योगदान अपना-अपना।
तभी शीघ्र आकार पकड़ता, मानव का सुन्दर सपना ॥
जीवन-स्तर ऊंचा होने से, ऊंची हो जाती भाषा।
भाषा तथा वेश-भूषा से, वहुत वड़ी रहती आशा ॥
मातृ-भूमि से, मातृ-गिरा से, मातृ-वेश से था अति प्यार।
प्यार नहीं जिसको तीनों से, उसके जीवन को धिक्कार ॥

•

घर-घर गौएं पालीं जातीं, थे समृद्ध सारे परिवार।
दूध, दही की नदियां वहतीं, व्यर्थ नहीं कहता संसार ॥
सव श्रम करते श्रम विन कोई, उस पुर में इनसान नहीं।
ऐसा कभी न कोई कहता, श्रम करते धनवान् नहीं ?

सुख पूर्वक जो जीना चाहे, उन्हें चाहिए श्रम करना।
करो सदा श्रम सदा खुशी से, यदि है दुख नद से तरना ॥

शिक्षा-क्षेत्र

सभी कलाए सिखलाने का, किया गया था उचित प्रबन्ध।
नही नारियो के हित पुर में, शिक्षा के दरवाजे बन्द ॥
उच्छृंखलता पनप न पाये, खलता पाये नही प्रवेश।
इतना ध्यान रखा जाये बस, शिक्षा-क्षेत्र पवित्र विशेष ॥
ज्ञान तीसरा नेत्र बताया, ज्ञान-हीन नर है अन्धा।
अन्धा बन्दा देख न सकता, सूरज हो चाहे चन्दा ॥

व्यापार के नियम

कारोबार यहा था ऊचा, लेते उचित मुनाफा लोग।
अनुचित लाभ कमाने वाले, असहयोग के बनते भोग ॥
तोल-माप मे गड़बड़ करना, व्यापारी का काम नही।
दान दिया जाता ? या ग्राहक- देकर जाता दाम नही ?
दिखलाना कुछ फिर देना कुछ, वास्तव मे व्यापार नही।
कचन चाहे मिल जाता हो, पर वंचन में सार नही ॥
लोभ नही रहने देता है, नीति-नियम मन वस्तु विशुद्ध।
समय-समय पर इसीलिये ही, पृथ्वी पर छिड जाते युद्ध ॥

होंगे कोई बुरे कहीं पर, उसका ज़िक्र न करना है।
हमें भलाई दिखला करके, भली भावना भरना है॥
नगर 'इलावर्धन' की महिमा, इसीलिये अति भारी थी।
पूर्ण स्वच्छता गुणवत्ता हीं, उसे प्राण से प्यारी थी॥

▭ सुखी सेठ

सेठ एक 'धनदत्त' वहां पर, नामी था, अति प्यारा था।
सच्चाई से, सदाचार से, जिसने यश विस्तारा था॥
सन्तोषी था, निर्दोषी था, सरल स्वाभावी सुखदायी।
नीतिमान् था, ज्ञानवान् था, दयावान् था, था न्यायी॥
सत्कार्यों में अभिरुचि रखता, तकता नहीं पराया धन।
परदारा पर नज़र डाल कर, कभी न करता मैला मन॥
स्वार्थ त्याग कर कर देता था, भला पराए लोगों का।
अपना कष्ट मिटाते सारे, कौन मिटाए लोगों का॥

नहीं किसी से अड़ना लड़ना, जीवन का सच्चा सिद्धान्त।
लड़ने वाले लोगों को भी, समझाकर कर देना शान्त॥

नहीं लड़ाई बढने देना, खडा बीच में हो जाना।
आग बुझाना, मार्ग सुझाना, 'चन्दन' कार्य कठिन माना॥

कहना सभी मानते सज्जन, सब से भला अगर व्यवहार।
पक्षपात करने वाले का, नही किया जाता सत्कार॥
स्वस्थ, सुडौल, सुवर्ण-वर्ण तन, पाया था उत्तम आरोग्य।
अगर नहीं आरोग्य योग्य हो, तो बन जाते भोग अभोग्य॥
मन हो, तन हो, अगर न धन हो, तो कैसे सुख प्राप्त करे?
निर्धनता ही इति होती है, जो सुख-शान्ति समाप्त करे॥
तन है, धन है, अगर न मन है, देने पीने खाने का।
उसका अर्थ नही रहता फिर, इस दुनिया में आने का॥
सेठ सभी बातों से सुखिया, कहने का इतना सा अर्थ।
केवल अर्थवान को ही हम, कैसे मानें कहो समर्थ?

☐ सेठानी की प्रशंसा

भले सेठ को सेठानी भी, भली मिली सद्भागों से।
महिलाएं सत्कृत होती है, निजी स्वार्थ के त्यागों से॥
सदा भाइयों के हित करती, बहन बड़ा बचपन में त्याग।
परिणीतावस्था में पाती, बिना त्याग कैसे अनुराग॥

माता बनकर सन्तानों के, लिये त्याग करती नारी।
ध्यान नहीं रखती निज सुखका, दुख सहती है बेचारी॥

त्यागमयी ही नारी जग में, शान्ति स्थापना है करती।
अनुराग मयी नारी ही जग में, सुख समृद्धियां है भरती॥
शान्ति मानसिक शान्ति सही है, भजन यही है धर्म यही।
सिवा शान्ति के इस दुनिया में, कहलाता सत्कर्म नहीं॥
शान्त बनो तुम सदा शान्ति हित, भ्रान्ति हटाओ मन से दूर।
शान्ति-सौख्य का इस आत्मा में, भरा ख़ज़ाना है भरपूर॥

सुख से जीते पीते खाते, गाते गीत जिनेश्वर के।
सेठ और सेठानी द्वारा, भाग्य फले थे उस घर के॥
भक्ति नहीं अनुरक्ति नहीं हो, जहां देव की गुरुवर की।
नीकी नहीं लगेगी, फीकी- 'चन्दन' शोभा उस घर की॥
नर हो चाहे हो नारी वह, प्रभु के प्रति हो निष्ठावान।
चाहे सुबह-शाम को ही पर, एक वार तो हो प्रभु-ध्यान॥
पता नहीं किस क्षण में सारा, हो जाए यह खेल समाप्त।
मानव का यह मंहगा चोला, वार-वार कब होता प्राप्त॥
सिवा तुम्हारे प्रभु की कोई, शक्ति उद्दश्य मानलो एक।
एक बात ही मान लीजिये, यदि बनना है 'चन्दन' नेक॥

किसी धर्म में, किसी पन्थ में, किसी सन्त में हो विश्वास।
सच्चरित्र बन जाने की ही, सारे शिक्षा देते ख़ास॥

सेठ और सेठानी दोनों, जीते हैं सात्त्विक जीवन।
सुखी शान्त था इसीलिये ही, पति-पत्नी दोनों का मन॥

○ इच्छा जगी

इच्छा हुई एक दिन जागृत, उत्तम आत्मज पाने की।
उसके बिना ऋद्धि सब सूनी, मानी गई ज़माने की॥
सांसारिक सुख भोगों का क्या, लक्ष्य बनाया जाता है।
बिना प्रयोजन मन्द मनुज भी, पांव न एक उठाता है॥
रानी हो सेठानी चाहे, खुश होती है बन कर मां।
'चन्दन' गौरव पा सकती है, पुत्र-पुत्रियां जन कर मां॥
मातृ भाव नारी के मन से, जिस दिन हो जाएगा लुप्त।
सृष्टि समाप्त उसी दिन होगी, हो जाएगा विश्व प्रसुप्त॥
नारी की गोदी में सारा, पलता आया है संसार।
नारी बिना नहीं हो सकता, जीव-जगत का यह विस्तार॥

○ वे धन्य हैं

लगे सोचने दोनों ऐसे, घर हैं वे क़िस्मत वाले।
जिस में शिशु क्रीड़ाएं करते, मोद भरे कुल-उजियाले ॥
मधुर-मधुर किलकारी उनकी, बढ़ कर केसर-क्यारी से।
शान्त सरल श्रद्धामय जीवन, ऊंचा दुनिया सारी से ॥
हंसने पर भाते हैं मन में, रोने पर भी भाते हैं।
पहने फिरें फिरें या नंगे, सब का चित्त लुभाते हैं ॥
कोमल तन के कोमल मन के, कोमल तुतली वाणी के।
मात-पिता दादा-दादी के, प्यारे नाना-नानी के ॥
अटल उन्हें विश्वास पिता पर, माता पर विश्वास अटल।
दोनों के जोवन की मन-मन, करते जाते पूर्ण नक़ल ॥
एक बार मां मारे फिर भी, गोद उसी की प्यारी है।
इसीलिये बच्चों की मथुरा, तीन लोक से न्यारी है ॥
एक रूपता रखते बालक, मन वाणी में फ़र्क नहीं।
मां की वाणी प्रभु की वाणी, करते किंचित् तर्क नहीं ॥
छल-प्रपंच किसको कहते हैं, पता नहीं होता उनको।
क्षण में प्रमुदित कर देते हैं, रूठे या रोए मन को ॥
काम नहीं है क्रोध नहीं है, नहीं कपट-छल है माया।
बालक के मन पर पड़ती है, परमात्मा की प्रति छाया ॥

नाक-नोक पर ऋषियों के भी, पड़े शाप को देखा है।
बतलावो क्या बालक-मन पर, कभी पाप को देखा है?
नद-प्रवाह पर जमती देखी, कभी किसी ने क्या है धूल।
सद्भावों को सुरभि बांटता, बाल-हृदय का सुन्दर फूल॥

सोया मोहक लगता मन को, जगने पर मोहक लगता।
रूठा भी लगता है मोहक, क्रीड़ाओं से है ठगता॥
जब चलता तब छलता मन को, छिप जाता जा कोने में।
केवल डुस-डुस होती, आसू- एक न होता रोने में॥
तुतलाता कुछ कहता जाता, समझ नहीं पाती माता।
ऊंहूं-ऊंहूं का घर भर में, बडा तमाशा हो जाता॥
नही किसी का दोष देखता, दृष्टि रखा करता पावन।
सूखा नजर नही आएगा, हरा-भरा होता सावन॥
माता के सब संकेतों को, समझा करते शिशु प्यारे।
शिशु सारो को प्यारा लगता, शिशु को प्यारे है सारे॥
'वीर' 'वुद्ध' 'श्रीराम' 'कृष्ण' भो, इनमें से ही आते है।
कह सकता है कौन समय पर, क्या कुछ ये बन जाते है॥

नही बिलोना जहां बोलता, नही बोलता बाल अहो!
उस घर में वन में क्या अन्तर, कुछ तो 'चन्दनलाल' कहो॥

इच्छा का स्वरूप

सौभागी समझा अपने को, अब दुर्भागी कहता मन।
परमात्मा के सिवा पूर्णता, कब पाया करता जीवन ॥
एक बार जो इच्छा जागी, उसे दबाना सरल नहीं।
देह-द्वार से निकले बाहर, इच्छा ऐसी तरल नहीं ॥
इच्छा सुख है, इच्छा दुख है, इच्छा अच्छी और बुरी।
इच्छाओं का पुंज मनुज है, अब तो बात गले उतरी ?
इच्छा-पूर्ति नहीं होने से, यह दुनिया लगती सूनी।
इच्छा-पूर्ति नहीं होने से, इच्छा जग जाती दूनी ॥
इच्छा धैर्य गंवा देती है, कहती लावो अभी-अभी।
औरों की इच्छा मत देखो, कहते ऐसे लोग सभी ॥
नहीं एक-सी इच्छा सब की, सब को कब होती पूरी।
इच्छा और पूर्ति में रहती, लाखों कोसों की दूरी ॥

हारे का सहारा

सेठ और सेठानी लेते, आखिर धर्म-सहारा अब।
इच्छा बिना लगा करता है, सत्य धर्म यह प्यारा कब ॥
सम्यग्दर्शन पर कर आस्था, कर्मों पर विश्वास किया।
इच्छा ही हो क्यों पाने की, ऐसा दृढ़ अभ्यास किया ॥

होगा तो हो जाएगा सुत, भक्ति करे प्रभु की मन से ।
सुत न हुआ करते है 'चन्दन', मात्र पुत्र के चिन्तन से ॥
उगने, लगने, पकने में क्या, फल भी करने देर नही ?
देर भले हो सकती है पर, हो सकता अन्धेर नही ॥

☐ जन्म और नामकरण

मनोकामना फली एक दिन, जन्मा बालक सुन्दर एक ।
जन्मोत्सव पर बांटे उसने, वस्त्र धान्य धन द्रव्य अनेक ॥
गूज उठे शहनाई के स्वर, मधुर-मधुर है गूजे गीत ।
उत्सव ही जीवित रखते है, सबके कुल की रीत पुनीत ॥
दिया 'जैनस्थानक' में अपने, ऊंचे दिल से दान बहुत ।
पौषध, सामायिकव्रत जिसमें, करते है गुणवान बहुत ॥
दीनों तथा अनाथों को भी, नही भुलाया जाता है ।
आता जो भी उसे प्रेम से, दिया-दिलाया जाता है ॥
गुड़ से लेकर मोती तक का, दान आज के दिन होता ।
रोता था दिल अपना, तो अब- रहे नही कोई रोता ॥

किया नही था कभी किसी ने, ऐसा हर्ष अपार किया ।
धूम-धाम से प्यारे सुत का, नामकरण-संस्कार किया ॥

दुख-ज्वाला को जड़ से जिसने, लेकर जन्म मिटाया था।
'कुंवर इलाची' नाम पुत्र का, इसीलिये रखवाया था॥
नाम 'कुमार इलाची' सुनकर, गद्-गद् परिजन सारे थे।
मित्र मुनीश्वर परिजन आशिष, देने आज पधारे थे॥

○ कुमार और बचपन

सूर्य-तेज सम बढ़ता जाता, दिन-दिन कुंवर इलाची था।
वयः सीढ़ियां चढ़ता जाता, दिन-दिन कुंवर इलाची था॥
लीलाएं दिखलाता रहता, बचपन की वह नई-नई।
कभी उछलता कभी कूदता, कभी नाचता थई-थई !!
कभी खींचता मां का आंचल, उसमें फिर छिप जाता वह।
लुकता चांद यथा बादल में, वैसी झलक दिखाता वह।
कभी दौड़ता, गिरता, उठता, हंसता और मचलता है।
पल में रोता, चुप रहता है, कभी कमल सम खिलता है॥
अर्धखिली-सी प्यारी पलकें, जिस भी ओर उठाता था।
अद्भुत और अनोखी दुनिया, अपने सम्मुख पाता था॥

बिस्मित और चकित-सा लखता, छोटी हो या वस्तु बड़ी।
ऊंचे-नीचे इधर-उधर वह, तकता रहता घड़ी-घड़ी॥

तमस भरी रजनी के चमचम, करते देख सितारों को।
प्यार भरा मन उछला करता, पा लेने उन प्यारों को॥
ऐसे ही नज़रों में जब-जब, चन्दा मामा आता था।
उसे पकड़ने को भी अपने, नन्हे कर फैलाता था॥
बर्फ़ी को जब 'बप्फी' कहता, पेड़े को जब 'पेला' वह।
रोटी को भी कहता 'लोती', लगता अति अलबेला वह॥
और तोतली वाणी में जब, गुन-गुन गाता गाना था।
मात-पिता की खुशियों का तब, 'चन्दन' नहीं ठिकाना था॥

शिक्षा और यौवन

बाल-काल कर पूरा अब वह, शिक्षा पाने योग्य हुआ।
बतला देती है सुगन्ध फल, अब मानव के भोग्य हुआ॥
विद्याध्ययन किया करता है, नियमित जाता विद्यालय।
विद्यार्थी ही जाया करते, कब घर आता विद्यालय॥
विद्यार्थी साथी होते हैं, स्पर्धा होती पढ़ने में।
पढ़ने की रुचि का मतलब है, अभिरुचि आगे बढ़ने में॥

जिसे नहीं रुचि हो पढ़ने की, बढ़ने की बस बात नहीं।
साथ नहीं होती जब विद्या, देता कोई साथ नहीं॥

पढ़ा बढ़ा है 'कुंवर इलाची', तीक्ष्ण सूक्ष्म थी बुद्धि बड़ी।
बड़ी बुद्धि ही सिद्धि बड़ी है, ऋद्धि और समृद्धि बड़ी॥
शिक्षित और अशिक्षित नर में, पशु नर जितना होता भेद।
बचपन में जो नहीं पढ़ा हो, उसे बाद में होता खेद॥

जो न कमाता यौवन में धन, वही बुढ़ापे में रोता।
काम समय पर ही होता है, वही बाद में कब होता?
बालक नहीं दुकान पर बैठे, बूढ़े जाते स्कूल नहीं।
युवक न पलना झूला करते, करते ऐसी भूल नहीं॥
बचपन विद्यार्जन करता है, यौवन वित्तार्जन करता।
चित्त शुद्धि कर वृद्ध व्यक्ति भी, शुभ-तम धर्मार्जन करता॥

'कुंवर इलाची' अल्प काल में, निपुण होगया है भारी।
गुणवानों को कभी न लगती, खारी दुनिया भी खारी॥
यौवन के आने पर बचपन, देता उसको अपना स्थान।
छोटे लोग बड़े लोगों का, यथा किया करते सम्मान॥
यौवन में औद्धत्य अगर हो, अनौचित्य हो जाता है।
ऐसा यौवन तो समाज में, सम्मान कभी नहिं पाता है॥
यौवन हो शालीन सुहाना, उज्ज्वल भावी का संकेत।
उत्पाती यौवन समाज हित, बन जाता है भीषण प्रेत॥

सुन्दर और सुडौल सुकोमल, तन का क्या ही कहना था।
यौवन आने पर आभूषण, सहज विनय का पहना था॥
सरल वृत्तियां मीठी वाणी, मोह लिया करती मन को।
हैं आशीष गुणों को देते, दिया नहीं जाता धन को॥

परम रसीली रसना क्या थी, कोयल भी शरमाती थी।
सुनने वाले को खुश करती, हीरे-लाल लुटाती थी॥
पूज्य पिता जी माता जी का, वह तो आज्ञाकारी था।
दया पुजारी पर उपकारी, भारी शुद्धाचारी था॥
बिगड़ा नहीं अगर यौवन में, वह नर नहीं बिगड़ता फिर।
दुनियादारी का कुल बोझा, फिर तो आ पड़ता है सिर॥
धीरे-धीरे फिर धन्धे में, इसने पुण्य प्रवेश किया।
दिखा कुशलता अद्भुत अपनी, सब को चकित विशेष किया॥

▭ पिता के विचार

पिता सोचता—सुत ने सारा, काम संभाल लिया मेरा।
जाल आल जंजाल जगत का, सिर से टाल दिया मेरा॥
हुआ देर से, हुआ एक ही, किन्तु एक भी नेक बड़ा।
बड़ा नहीं है फिर भी रखता, 'चन्दन' विनय-विवेक बड़ा॥

अपने पथ पर आना-जाना, करना अपना काम भला।
काम भला करने वाले तो, क्यों होंगे बदनाम भला॥
नहीं किसी ने आकर की है, कभी शिकायत भी कोई।
नहीं याद है इसको लेकर, इसकी मां भी हो रोई॥
मां भी खुश है, मैं भी खुश हूँ, खुश-खुश है सारा परिवार।
व्यापारी खुश खुश ग्राहक है, खुश-खुश है सारा बाजार॥
रूप-रंग-बल-बुद्धि-भाग्य सब, इसको अच्छे प्राप्त हुए।
मानो इसको मिल जाने पर, सारे वहीं समाप्त हुए॥
भाग्यवान सुत होने से ही, पिता भाग्यशाली होता।
भाग्य-हीन सुत हो जाने से, पिता, पिता खाली होता॥
पुत्र वही सत्पुत्र जगत में, जिससे मात-पिता संतुष्ट।
असंतुष्ट होने से कहते, जन्मा घर में क्यों यह दुष्ट॥

अब इसको परणाने की बस, करनी होगी तैयारी।
मात-पिता पर ही होती है, शादी की जिम्मेवारी॥

▫ एदं युगीन धारा

अब वे उसके लिये लायंगे, सभो तरह से योग्य बहू।
योग्य बहू ही रख सकती है, कुल का गौरव शुद्ध लहू॥

मैं देखूंगा मैं परखूंगा, मैं लाऊंगा अपने आप।
तुम्हें नहीं है इसकी चिन्ता, विनयी सुत क्या कहते आप ?

एकांगी अध्ययन युवक का, चयन नहीं कर पाता ठीक।
हवा ज़माने की लगने पर, सुनता नहीं एक भी सीख ॥
रूप-रंग पर ललचा करके, ले आता है अपने आप।
सोचे जितने सपने सारे, घर आने पर होते साफ़ ॥
रीति-रिवाज बदलते आए, इसीलिये युग बदला है।
बदला-बदली में ही 'चन्दन', बनता जीवन गंदला है ॥

▭ कर्म की गति

सेठ सोचता ब्याह करूंगा, होनहार कुछ सुत की ओर।
सुनो, पढ़ो, सोचो, समझो कुछ, करो शान्ति से उस पर गौर ॥
ऐसे गुणी पुत्र की देखो, होनहार क्या आती है।
जाना नहीं चाहिये लेकिन, होनहार ले जाती है ॥
भले-भले सत्पुरुषों को भी, भुला दिया जाता है पन्थ।
बड़ी विचित्र कर्म की गतियां, कठिन परिस्थितियां अत्यन्त ॥
परले पार पहुंचने में ही, बाधाएं आया करतीं।
कभी डूब जाती नौकाएं, सकुशल पार कभी तरतीं ॥

किसी कार्य वश 'कुंवर इलाची', कहीं जा रहा था इक दिन।
कला कुशल नर्तक मण्डल इक, वहीं आ रहा था उस दिन॥
मंडलियां घूमा करती थीं, दिखलाने को खेल बड़े।
केवल मन बहलाने को ही, किए गए सब खेल खड़े॥

☐ रूप का आकर्षण

नाटक लगा उसे मनमोहक, अतः वहीं पर अटक गया।
अटक गया चाहे यों कहदो, आज पन्थ से भटक गया॥
अन्य नटों के खेलों से कुछ, उसको नहीं प्रयोजन था।
परम सुन्दरी नट-कन्या ही, रुकने का आकर्पण था॥
रूपवती वह परम निपुण थी, अपनी कला दिखाने में।
लगा कुंवर को समता इसकी, कोई नहीं ज़माने में॥
खिला हुआ लावण्य लहकता, यौवन वय के आने से।
चमक उठा था और सहारा, नृत्य कला का पाने से॥

'कुंवर इलाची' आगे को अब, अपना क़दम उठा न सका।
जाल कमाल रूप का देखो, उस से पिंड छुड़ा न सका॥
अपलक रहा देखता उसको, नीचे पलक गिरा न सका।
नट-कन्या के सुन्दर मुख से, अपनी दृष्टि हटा न सका॥

खतम होगया नाटक फिर भी, खड़ा उसी को देख रहा।
मैं हूं कौन, कौन यह कन्या, बिल्कुल नहीं विवेक रहा॥

चले गए नट और कहीं को, नट-कन्या भी चली गई।
'कुंवर इलाची' की निर्मल मति, हन्त! अन्त में छली गई॥
नट-कन्या की आकृति अपने, अन्दर लगा झांकने अब।
रूप-रंग की नृत्य-ढंग की, कीमत लगा आंकने अब॥

▭ 'इलाची' की प्रतिज्ञा

इसी रूप की रानी से ही, मैं शादी करवाऊंगा।
इसी रूप की रानी को ही, अपने घर में लाऊंगा॥
अन्य किसी सुकुमारी को मैं, नहीं स्वप्न में चाहूँगा।
पाऊंगा जब मैं यह सुन्दर, अपना भाग्य सराहूँगा॥

▭ वियोगी की दशा

कठिन प्रतिज्ञा करके ऐसी, 'कुंवर इलाची' आया घर।
अपने हाथों से ही अपना, बहुत बुरा कर लेता नर॥
इसे कमी थी क्या कन्या की, रूप-रंग की कमी नहीं।
पैर कहां पर टिक सकते जब, नीचे हो ही ज़मीं नहीं॥

नट-कन्या के रूप-जाल में, फंसा 'इलाची' का मन-मीन।
उदासीन ऐसे रहता है, मानो हो वह प्राण-विहीन ॥
विरही जन जीता या मरता, रहता यों निष्पंद पड़ा।
जीवित-मृत का अन्तर करना, वैद्यों को भी कठिन बड़ा ॥

कैसे खाना, कैसा पीना, जीना भी जब बनता भार।
भार हृदय पर बढ़ जाने से, स्वयं छूट जाते व्यवहार ॥
आना जाना नहीं सुहाता, नहीं सुहाते बोले बोल।
आया-गया कौन कमरे में, नहीं देखता आंखें खोल ॥
जाता नहीं घूमने को अब, जाता नहीं दुकान कभी।
इतनी सिर्फ़ ग़नीमत समझो, बचे हुए हैं प्राण अभी ॥
बिना रोग के रोगी, भोगी, बिना भोग के विरही जन।
विरही जन की तड़पन कहती, शीघ्र मिलन हो—शीघ्र मिलन ॥
बात-पित्त-कफ़ बोला करते, तीनों अपनी नाड़ी में।
मन की नाड़ी नहीं बनाई, इस काया की बाड़ी में ॥

कुछ आंखों से, कुछ वाणी से, कुछ इंगित-आकारों से।
मन को भी पहचाना जाता, 'चन्दन' विविध प्रकारों से ॥
क्रिया-कलापों आलापों से, मनोवेदना जाती बोल।
बहुत देर से, चतुराई से, खोली जाती मन की पोल ॥

सोओ तो जागो तो वह, नटकन्या आती आगे।
आगे-आगे वह रहती है, मन चाहे जितना भागे॥
नटकन्या की आकृतिमय यह, प्रकृति सारी बनी तुरन्त।
मन-कल्पित प्रारूपों का कब, कहीं और कैसे हो अन्त?

इसके बारे में वह लेकिन, नहीं किसी से कहता था।
मन ही मन के अन्दर रखकर, निश-दिन चुप-चुप रहता था॥
अपने आप किसी भी पथ का, पता लगाता रहता था।
सरल,कठिन हो चाहे जैसा, कदम टिकाता रहता था॥
मातु-पिता के पास बैठना, और बोलना नहीं रहा।
मुक्त हृदय से पहले जैसा, वदन खोलना नहीं रहा॥
खिला-खिला-सा रहने वाला, अब मुरझाया फूल बना।
गौरव युत जग-जीवन उसका, सब कुछ होते धूल बना॥

▫ पिता का प्रश्न

देख दशा दुखदाई सुत की, बाप आप चकराया है।
इधर-उधर से भांपा लेकिन, पता नहीं कुछ पाया है॥
लगे पूछने स्वयं एक दिन, उसने सब बतलाया है।
नट कन्या का नाम श्रवण कर, सेठ बड़ा घबड़ाया है॥

नहीं चाहता मेरा बेटा, ऐसा पथ स्वीकार करे।
कुल-मर्यादा छोड़-छाड़ कर, नटकन्या से प्यार करे॥
मन से आशा रखते, कन्या- सुघड़ कुलीना पा करके।
नाता लूं धनवान सेठ का, भारी मन हरषा करके॥
बेटे की बातें सुन लेकिन, भौंचक्के रह जाते हैं।
प्यार-दुलार दिखाकर अपना, उसको यह समझाते हैं॥

□ पिता द्वारा प्रबोधन

तेरे मुख से ऐसी बातें, शोभा देती कभी नहीं।
कभी नहीं जो सुनी व सुनना, चित्त चाहता अभी नहीं॥
नहीं आज तक तुझे प्यार का, स्फुरा विचार मानता मैं।
नटकन्या से प्यार होगया, बात असत्य जानता मैं॥
जाति भिन्न,कुल भिन्न,भिन्न हैं- सारे ही आचार-विचार।
प्यार करें व्यवहार करें हम, उससे क्या लेकर आधार?
याचक हैं वे, दानी हैं हम, अपना कितना ऊंचा स्थान।
नट-विट-वेश्याओं का बतला, क्या सम्मान तथा अपमान?

केवल रूप न देखा जाता, बातें सब देखी जातीं।
मेरी बातें क्यों न समझता, नहीं समझ में ये आतीं?

आज यहां, कल और कहीं पर, काम नृत्य दिखलाने का।
अपने लिये नहीं है उत्तम, नटकन्या वर लाने का॥
एक नहीं तू बोले उतनी, कन्याएं परणा दूंगा।
सुन्दर कोमल सुकुमाराङ्गी, बालाएं घर ला दूंगा॥
हठ मत तान मानले कहना, नटकन्या का तजदे ध्यान।
ध्यान रखा होता तो दिल में, कभी न देता उसको स्थान॥

'इलाची कुमार'

बेटा बोला–'सुनो पिता जी! प्रेम पवित्र वस्तु है एक।
नहीं जाति देखी जाती है, प्रेम-जगत का यही विवेक॥
मानव हैं नट, मानव हैं हम, जाति एक है दोनों की।
शारीरिक रचना भी देखें, एक सदृश है दोनों की॥
कला दिखा कर पैसा लेते, नहीं भिखारी नट होते।
सरल स्वस्थ सुन्दर होते नट, नहीं चित्त के शठ होते॥
किसी खान से जनमा हो, पर- रत्न ग्राह्य हो जाता है।
कुल लज्जित हो जाए इससे, नहीं समझ में आता है॥'

पिता का उत्तर

बोले पिता–'तर्क के सम्मुख, श्रद्धा का बल होता क्षीण।
नहीं समाज समर्थन देता, रीति-रिवाज यही प्राचीन॥

अगर न बल होता इस में तो, मर्यादाएं जातीं टूट।
व्यक्ति तुम्हारे जैसे मिलकर, डाल कभी भी देते फूट॥
घर की अनुमति नहीं मिलेगी, चेष्टाएं करने पर भी।
प्रेम न देखा जाता, देखा- जाता है अपना घर भी॥

सुत न मानता सीख पिता की, पिता न सुनते सुत की बात।
पिता-पुत्र में पड़ जाता अब, अन्तर अधिक हज़ारों हाथ।
सुत को नट की सुता चाहिये, नहीं चाहिये जाति-प्रथा।
जाति-प्रथा को तोड़ गिराना, बनी पिता के लिये व्यथा।

आखिर कहा पिता जी ने-तू, जाने तेरा काम भला।
मेरा इस में साथ नहीं है, जब नालायक तू निकला।

बोला पुत्र—'ठीक है मैं भी, अब ढूंढूंगा अपना पन्थ।
आप नहीं कुछ कर सकते तब, सम्बन्धों का समझें अन्त।

☐ नट और 'इलाची'

'कुंवर इलाची' ने अब नट को, पास बुलाकर खोली बात।
तेरी कन्या के संग सादर, लेना चाहता फेरे सात॥

सुनकर नट बोला है—'सुनिये, कभी न होगा ऐसा काम।
ऐसा काम अगर हो जाए, होजाएं नट भी बदनाम॥
नट की कन्या नट व्याहेगा, बनिया कैसे व्याहेगा।
रूप-रंग का लोभी मानव, रूप रंग ही चाहेगा॥

सुना प्रलोभन धन का भारी, पर न हटा नट निज हठ से।
सेठ-पुत्र अब लगा सोचने, पाला पड़ा बड़े शठ से॥
ऊंचे को नीची कन्या भी, मिलने में दिक्कत आती।
बनिये को बेटी देने से, इसको भी इज्जत जाती!!
जाति और कुल हैं इसके भी, यह भी धुन का है पक्का।
जाति-पांति का देखो जग में, घूम रहा कैसा चक्का॥

□ प्रेम अमर है

नटकन्या के सिवा किसी से, नहीं विवाह कराऊंगा।
शपथ ग्रहण करली यह मैंने, अच्छी तरह निभाऊंगा॥
नहीं पिता जी देते आज्ञा, उसको घर में लाने को।
उन्हें नहीं चिन्ता है बिल्कुल, निज सुत के मर जाने की॥
मुझे नहीं मरने की चिन्ता, मेरा प्रेम अमर होगा।
जो नर चोरी करता उसके, मन को ही कुछ डर होगा॥

तेरी सम्मति होने से ही, हो सकता है मेरा काम।
काम यही कर देने को बस, बुलवाया है अपने धाम ॥
जैसे मुझे सुता दे सकते, दे दो वैसा सरल सुझाव।
दवा वही अच्छी होती है, जो भर डाले दिल का घाव ॥

▫ नट बनो

बोला नट—'खटपट सब छोड़ो, मैं न लोभ में आऊंगा।
नट-विद्या में निपुण युवक को, मैं बेटी परणाऊंगा ॥
इसके सिवा शर्त कोई भी, मुझे कभी स्वीकार नहीं।
नट विद्या यदि आप सीखलें, होगा फिर इन्कार नहीं ॥
नट-विद्या है मुझको प्यारी, प्यारा होगा मुझको नट।
मेरा वह दामाद नयन का- तारा होगा मुझको नट ॥
नटता हूं नट होकर के भी, और नहीं भी नटता हूं।
समय करूं क्यों नष्ट, स्पष्ट जब- सारी बातें रटता हूं ॥

▫ उथल-पुथल

नट की बात चित्त पर खटकी, अटकी जीभ न बोल सकी।
खटपट लटपट की मैंने पर, नट की मति क्या डोल सकी?

छोड़ा साथ पिता ने मेरा, नट ने पकड़ा हाथ नहीं।
नट बनने के सिवा दूसरी, कहता कोई बात नहीं॥
मार्ग कौनसा अपनाऊं अब, भारी जटिल पहेली है।
करूं विमर्शन किससे बोलो, मेरी जान अकेली है॥
मन कहता है—'नट बनजाऊं', रोक किन्तु व्यवहार रहा।
एक ओर है दिल को दुनिया, एक ओर संसार रहा॥
दिल औ दुनिया दोनों के जो, खुदी बीच में खाई है।
पाट सकूंगा कैसे उसको, बहुत बड़ी गहराई है॥

नट बनना स्वीकार कर लिया, आखिर उसने नट सम्मुख।
होगा भला बुरा या होगा, होगा सुख या होगा दुख॥

□ ऐसा करें

बोल कुंवर—'आपकी शर्तें, हैं सारी स्वीकार सुनो।
मेरी जीवन-रक्षा का है, केवल तुम पर भार सुनो॥
प्रस्तुत प्राण आपके सम्मुख, और कहो क्या कहना है।
सौ बातों की एक बात बस, साथ आपके रहना है॥
नट-विद्या में मेरे नटवर! मुझ को अब निष्णात करें।
अन्त परीक्षा लेकरके फिर, पूरी मेरी बात करें॥

घर की खटपट छोड़ झट, नट का पकड़ा हाथ।
मात-पिता को छोड़ कर, चला उसी क्षण साथ॥

□ संकल्पों का जाल

जाने लगा निकल कर घर से, मां की ममता आई याद।
जाऊं या रुक जाऊं ऐसा, मन ने छेड़ा पुनः विवाद॥
रोएगी तो रो लेगी मां, रुक जाने में सार नहीं।
अगर नहीं मैं जाऊं घर से, पा सकता वह प्यार नहीं॥
एक ओर है मां की ममता, एक ओर है प्रेम पवित्र।
ठुकराऊं अपनाऊं किस को? दोनों स्थितियां बड़ी विचित्र॥
मैं ही हूं बस मेरी दुनिया, दुनिया से कुछ काम नहीं।
काम नहीं जब बुरा कर रहा, होऊंगा बदनाम नहीं॥
बुरा कहेगी जो यह दुनिया, कह करके रह जायेगी।
बुरा-भला कहने से क्या यह, प्रेम-भित्ति ढह जायगी॥

लिया नहीं पैसा भी घर से, लिये नहीं कपड़े-गहने।
निकल रहा वैसे ही जो कुछ, था अपने तन पर पहने॥
हक भी नहीं मुझे लेना है, लेने वाला होता चोर।
खबर न दूंगा घर वालों को, कर लूंगा दिल आज कठोर॥

हां भी कहते नहीं पिता जी, नां भी कहते सकुचाते।
पुत्र सयाना हो जाने पर, सिर्फ़ पिता जी समझाते ।।

□ अपनी क़लम

स्नेह पिता-माता के मन का, हुआ रोकने में असमर्थ।
आज रोकने के सारे ही, यत्न हुए सब मानो व्यर्थ ।।
साथी रोक न पाये नाती, रोक नहीं पाया परिवार।
इज्ज़त रोक न पाई जाते, रोक नहीं पाया व्यापार ।।
जन्म-भूमि भी रोक न पाई, सुन्दर भवन न रोक सका।
दाना-पानी खत्म होगया, 'चन्दन' पवन न रोक सका ।।
सुख-साधन मन लुभा न पाये, नहीं रोकने पाया ज्ञान।
ऐसी बात नहीं कह सकते, था वह नहीं पठित विद्वान ।।
सोच-समझकर जान-बूझ कर, उसने क़दम उठाये हैं।
अथवा ऐसे कह सकते हैं, कर्म उदय में आये हैं ।।

□ नट बनने पर

नट-दल में शामिल होने से, उसने हर्ष अपार किया।
कहा गया जो कुछ भी उसको, नतं मस्तक स्वीकार किया ।।

बात बुरी थी भले भली थी, ज़रा नहीं इन्कार किया।
धन्यवाद है नट-समूह का, उसने वारम्वार किया॥
जीत न पाया दुर्बल मन को, मन ने उसको दिया पटक।
कहा—'नित्य चढ़ बांस-शिखर अब, बच्चू' उलटा खूब लटक॥

यही काम था नट के दल में, और भला क्या काम वहां।
उतरो-चढ़ो बांस पर दिन भर, सुबह वहां औ' शाम वहां॥
मन के सेवक बनने का फल, और कहां क्या होना था।
सुख-सुविधा को, यशः-मान को, इसी तरह ही खोना था॥
घर में चलती आज्ञा जिसकी, सब से सेठ कहाता था।
जाते थे दिन-रात मजे में, बैठा पीता-खाता था॥
मन ने उलटा थप्पड़ मारा, कहने की कुछ बात नहीं।
घर की मौज यहां पर किंचित, दिवस नहीं है रात नहीं॥
गांव-गांव में नगर-नगर में, संग नटों के जाता था।
कला सीखता, कला दिखाता, भारी हर्ष मनाता था॥
सदा सुनहले स्वप्न देखता, भावी जीवन के नाना।
निज भविष्य का बुनता रहता, सुखमय वह ताना-बाना॥

ताने-बाने जाने क्या-क्या, निश-दिन बुनता रहता था।
छिन-छिन में संसार हृदय का, मिटता-बनता रहता था॥

लेता कभी उडारी नभ मे, आ पड़ता पाताल कभी।
और विचरता धरती पर वह, क्षण मे हो बे-हाल कभी॥

▢ 'इलाची' का नैपुण्य

दिवस-दिवस कर मास-मास कर, पूरा हो यों साल गया।
लगा खेलने नाटक अब तो, 'कुवर इलाची' नया-नया॥
सहज चातुरी, मिलन सारिता, उसने दोनों गुण पाए।
जिसने गुण पाए हों उस पर, चित्त लुभाए--चकराए॥
नट जाते नटकन्या जाती, खेल दिखाने जब जाता।
जब भी जाता तब औरों से, ऊंचा नाम कमा आता॥
तारों मे हो चन्दा जैसे, अपनी चमक दिखाता था।
नट को, नट के दल के मन को, 'कुवर इलाची' भाता था॥
लगता नही वणिक-सुत जैसा, नट-दल मे आ जाने से।
लगता था नट-बेटा जैसा, अद्भुत नट के बाने से॥

▢ ख्याति होगई

कला-कुशलता से इस दल की, दूर-दूर थी धूम पड़ी।
जहा-जहां दिखलाता नाटक, पाता शोभा बहुत बड़ी॥

भूपतियों के, श्रीमन्तों के, नये निमन्त्रण आते थे।
स्थान-स्थान से और लोग भी, आदर सहित बुलाते थे ॥
पहुंच-पहुँच कर जहां-जहां भी, अपना खेल दिखाते थे।
भित्ति-चित्र-से, मन्त्र मुग्ध-से, दर्शक जन बन जाते थे ॥

□ 'इलाची' की कला

'कुंवर इलाची' नट-विद्या में, ऐसा कुछ निष्णात हुआ।
नट से भी वह बढ़कर-चढ़कर, दुनिया में विख्यात हुआ ॥
उसका काम सभी ही उसके, एक तरह से हाथ हुआ।
चढ़ते सूरज से वह ढलता- सूरज मानो माता हुआ ॥
'कुंवर इलाची' अधिक सभी से, अपनी कला दिखाता है।
जन्मजात वह कलाकार अब, हतप्रभ होता जाता है ॥
कहां जवानी कहां बुढ़ापा, मेल कहो क्या दोनों का।
आप सोचिये सज सकता था, खेल कहो क्या दोनों का ?

बूढ़े नट से भी यह बिल्कुल, छिपी नहीं सच्चाई थी।
'कुंवर इलाची' की ही उसके, मन में अतः बड़ाई थी ॥
आता कभी निमन्त्रण दल को, नाटक के दिखलाने का।
देता हुकम 'इलाची' को नट, झटपट बाहर जाने का ॥

'कुंवर इलाची' एक वर्ष में, सीख चुका था नृत्य-कला।
अतः वही ले सारे दल को, जाता था हर जगह चला॥
नाटक करता जहा कही वह, मच जाती थी धूम बड़ी।
स्थान नही मिलने से जनता, खेल देखती खड़ी-खड़ी॥
उठते झूम सभी नर-नारी, हाथ बजाते घड़ी-घड़ी।
रुपये, सोनैयों, पैसों की, लग जाती थी एक झड़ी॥
कोयल-से स्वर में जब गाता, झूम-झूम कर गाता था।
दर्शक-दल पर पल भर में ही, जादू-सा छा जाता था॥

▫ विवाह की बात

एक वर्ष के बाद 'इलाची', बोला नट से निज कर जोड।
नृत्य-कला मे निपुण होगया, किया परिश्रम भी जी तोड़॥
अब तो आप विवाह कीजिये, नम्र निवेदन सुन मेरा।
जिसके लिये बना मै नट हू, डाल दीजिये वह फेरा॥

बोला नट—'यह बात सही है, नट-विद्या मे बने कुशल।
नटकन्या को पाने मे कुछ, और लगाना होगा बल॥
स्वय खेल कर, स्वय कमाकर, लावो इतना भारी अर्थ।
भोज बन्धुओं को देने में, हो जाऊ मै परम समर्थ॥

एकत्रित जब होंगे सारे, आज्ञा उनसे लूंगा जी !
वे आज्ञा दे देंगे तब मैं, अपनी कन्या दूंगा जी !
उन्हें कहूंगा वणिक-पुत्र यह, रहता है वर्षों से साथ।
अपनी नट विद्याएं सारी, करलीं इसने अपने हाथ ।।
तुम्हें ज्ञाति में ले करके ही, यह कन्या दी जाएगी।
यह कन्या देकरके मन की, आस-पूर्त्ति की जाएगी ।।

☐ संगठन का महत्त्व

कहीं नहीं हो जाए खटपट, नट-नट हैं हम सारे एक।
किसी कार्य से फूट पड़े यह, समझा जाता नहीं विवेक ।।
व्यक्ति-व्यक्ति के मिल जाने से, जाति दिखाती बल अपना।
अगर बिखर जाएं ये किरणें, भला सूर्य का क्या तपना ।।
बून्द-बून्द मिल जाने से ही, बनते हैं सरिता सागर।
बून्दें अगर अलग हो जाएं, भरी नहीं जाए गागर ।।
तत्त्व किरण है, तत्त्व बून्द है, बिना संगठन कैसा बल।
नट न खेलता आप अकेला, खेल खेलता सारा दल ।

समझ गए ? मन को समझालो, नहीं उतावल है अच्छी।
मुझे आप को ही देनी है, मेरी यह प्यारी बच्ची ।।

मेरी सभी कलाएं जब मैं, तुम्हें दे चुका ध्यान करो।
कन्या भी देदी जाएगी, धैर्यामृत का पान करो।।

□ खेद और आशा

सुनकर हुआ हताश, सोचता- आशा पर क्यों गिरा तुषार।
नट-समूह मिल निर्भय देगा, पा सकता क्या यह उपहार?
हाय! हाय!! मैं फंसा कहां पर, अब तक प्रेम न पाल सका।
भट्ठी जला रखी है केवल, कंचन गाल न ढाल सका।।
लुक-छिप कर जो प्रेम किया तो, प्रेम नहीं वह पाप बड़ा।
प्रेम शान्ति देता है मन को, छिपना देता ताप बड़ा।।
मैंने साहस किया छोड़ घर, नहीं नटी में साहस है।
नर की निस्वत सभी तरह से, नारी भारी परवश है।।
फिर सोचा–अब नहीं सोचना, होता है सो होने दो।
नटकन्या पाने को दिल यह, रोता है तो रोने दो।।
नियति थकेगी काल पकेगा, काम बनेगा अपने आप।
जब तक इसे नहीं पा लेता, तब तक होगा ही परिताप।।

□ नाटक का निमन्त्रण

'वेणातटपुर' के राजा का, आमन्त्रण अब आया है।
'कुंवर इलाची' लगा सोचने, मेरा भाग्य सवाया है!!

बड़े खेल करवाते राजा, देते और इनाम बड़े।
बड़े भाग्य से ही मिलते हैं, कलावान को काम बड़े॥
छोटे-छोटे खेलों से क्या, अर्जित हो सकता है धन।
बड़े नृपति दे सकते हैं धन, यदि प्रसन्न हो जाएं मन॥
संभव है इतना मिल जाये, जिससे शादी हो जाये।
शादी से जीवन-मन-धन की, वह आज़ादी हो जाये॥

▫ नट का आदेश

नट प्रमुख ने इन दोनों को, जाने का आदेश दिया।
और सहायक दल भी बाकी, सारा इनके साथ किया॥
जाओ, ऐसा खेल दिखाओ, लाओ धन मन का चाहा।
मन का चाहा अगर नहीं हो, मर कर हो जाओ स्वाहा॥
नहीं कहीं भी जाता हूं मैं, नहीं यहां भी जाऊंगा।
तुम्हें भेज कर घर पर बैठा, पूर्ण सफलता चाहूंगा॥
मेरे से भी बढ़कर हो तुम, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास।
गुरुवर तो गुड़ ही रह जाते, चेले चीनी बनते खास॥

मैं मर जाऊंगा पर मेरी, कला मरेगी कभी नहीं।
तत्त्व वाद में समझोगे तुम, समझ सकोगे अभी नहीं॥

□ वेणातट' में प्रवेश

कर प्रणाम आशीषें लेकर, 'वेणातटपुर' आया दल।
आया दल कब छिप सकता है, ज्यों नभ में छाया बादल ॥
धूम मची नगरी में ऐसी, इन लोगों के आने की।
सुध-बुध भूल गई है जनता, पीने अथवा खाने की ॥
नृत्य देखने की उत्कण्ठा, महती मन में जगी हुई।
रात पड़े कब, कब हो नाटक, लगन यही थी लगी हुई ॥
गया सजाया रंगमंच था, अद्भुत-अद्भुत यथासमय।
राजा-रानी सभी सभासद्, जनता आई करती जय !!

□ व्यवस्था की प्रशंसा

तिल धरने के लिये वहां पर, नहीं देखलो जगह बची।
छोटे-बड़े सभी आये मिल, ऐसी भारी धूम मची ॥
देखो जिधर उधर ही अद्भुत, सिर-सागर लहराता था।
'चन्दन' गिनने वालों से भी, पार न पाया जाता था ॥

उमड़-घुमड़ कर चाहे दुनिया, बड़े वेग से आई थी।
पूर्ण व्यवस्था होने से ही, नीरवता-सी छाई थी ॥

गठकतरा ठग चोर उचक्का, कोई चुगलीखोर नहीं।
किसी किस्म की कोई गड़बड़, अतः किसी भी ओर नहीं॥
सभ्य सभी नर-नारी हों जब, हो सकता भी शोर नहीं।
चुप रहने के लिये लगाना, पड़ता कोई जोर नहीं॥
अपलक रंगमंच को सारे, बैठे-बैठे निरख रहे।
गीत-गान में मस्त जहां पर, नट थे सारे थिरक रहे॥

☐ कमाल का खेल

ढींग-ढींग ढम ढोलक बोला, पीं-पीं शहनाई बोली।
करतब लगी दिखाने अपना, आई जो नट की टोली॥
चढ़ा 'इलाची' बांस-शिखर पर, अद्भुत खेल दिखाता था।
टिका नाभि को घूम-घूम कर; चक्कर खाता जाता था॥
कभी नाचता, कभी उछलता, कर में तेज़ कटार पकड़।
तरह-तरह के खेल दिखाता; चढ़ा हुआ वह बांस-शिखर॥
रख करके पग बांस-शिखर पर, कभी लटकता नीचे को।
कभी भूल जाता आगे को, और कभी वह पीछे को॥
कभी उछाल कटार गगन में, उसे पकड़ लेता मुख से।
कभी हाथ में पकड़ सैंकड़ों, खेल दिखा देता सुख से॥
पद्मासन के द्वारा अपनी; अटल समाधि लगाता है।
वहीं खड़ा होकरके वापिस, बाहु-युगल फैलाता है॥

कभी तुलासन, चक्रासन की, वृक्षासन की शान कभी।
कभी बद्धपद्मासन करता, तन को तीर-कमान कभी॥
कभी कुक्कुटासन, गरुड़ासन, सिद्धासन, दिखलाता है।
कभी मयूरासन, शीर्षासन, करके चकित बनाता है॥

इसके तन में नहीं हड्डियां, मन को ऐसा था लगता।
अंग-अंग को अजब ढंग से, तोड़-मरोड़ दिखा सकता॥
लेता गेंद बना वह तन की, मोड़-मोड़ कर अंगों को।
जनता का मन नहीं अघाता, देख निराले ढंगों को॥
अपलक लखते नीचे से सब, आकरके सन्नाटे में।
दृश्य बदलते जाते ऊपर, जल्दी एक झपाटे में॥
अभी-अभी जो दृश्य वहां था, पता नहीं वह कहां गया?
क्षण-क्षण में ही आता-जाता, दृश्य नये से और नया॥
नहीं खौफ़ था उसको लेकिन, ऊपर से गिर जाने का।
सदा सजग प्रत्येक भान्ति से, क्रीड़ा-रंग जमाने का॥

रूपवती नट-बाला भी तो, उसका हाथ बंटाती थी।
नृत्य दिखाती, अद्भुत गाती, दृश्यों को चमकाती थी॥
सोना और सुगन्ध साथ में उक्ति सरस जो कहलाती।
उस में औ' नटकन्या में वह, पूर्णतया पाई जाती॥

▭ प्रशंसा के स्वर

करतल ध्वनि के द्वारा करते, लोग प्रशंसा खेलों की।
फल अच्छे होने से होती, स्वयं प्रशंसा बेलों की॥
कलाकार का और कला का, कलावान करते सम्मान।
कला-विज्ञ को ही होती है, कलावन्त की शुभ पहचान।
अज्ञ स्वयं को नहीं जानते, औरों को क्या जानेंगे।
जानेंगे तो भी वे अपनी, जिद्द और हठ ठानेंगे॥
सारी सभा प्रशंसा करती, वाह! वाह! की ध्वनि छाई।
कहीं नहीं जो देखा ऐसा, खेल यहां देखा भाई॥

▭ राजा का मौन

लेकिन नरपति एक शब्द भी, नहीं प्रशंसात्मक बोला।
जिसने बोला उसको भी वह, लगा समझने शिशु भोला॥
सुना नहीं संगीत वाद्य भी, देखा नहीं निराला नृत्य।
नहीं इन्द्रियां जाना करतीं, अन्तर मन जो करता कृत्य॥
नटकन्या के रूप-रंग पर, राजा का मन ललचाया।
मैंने सब कुछ पाया पर यह, रूप नहीं कैसे पाया।
नटबाला यह एक फूल है, फूल फूल के स्थानों में।
केश-पाश में फूल गुंथे हैं, कर्णफूल हैं कानों में॥

मुख भी फूल, फूल हैं आंखें, दोनों अधर गुलाबी फूल।
फूल बोल है, फूल तोल है, फूल खिले मन के अनुकूल ॥
फूल चूम लू, फूल सूघ लू, फूल सजालू जीवन में।
कैसे-फूल मुझे मिल सकता, लगा हुआ नृप इस धुन में ॥

▭ मर जाए तो ?

कौन रोकने वाला मुझको, जब राजा कहलाऊं मैं।
घर बैठे ही हीरा आया, क्यों अब इसे गंवाऊं मैं ॥
रमणी नही रत्न-मणि है यह, अपना वक्ष सजाऊं मैं।
इस चन्दा की चमक-दमक से, अन्तःपुर चमकाऊं मै ॥
लेकिन दुनिया की निन्दा से, मन ही मन सकुचाऊं मैं।
पाऊं सही, किन्तु पाने को, मार्ग कैसे पाऊं मै ॥
बास चढा नट जीवित जब तक, तब तक कैसे आए हाथ।
हाथ लगाना दूर रहा पर, कर भी नही सकूंगा बात ॥
यही युवक है भारी बाधा, बल यौवन से भरा हुआ।
पल-पल मोहित करता मन को, बास-शिखर पर चढा हुआ ॥
एक हाथ मे ढाल दूसरे- कर में तेज कटार अरे !
बास-नोक पर नाभि टिका कर, घूमा चक्राकार अरे !
हाथ साथ में नाच रहे है, नही खेल का आता अन्त।
मन मेरा यह भीम समझता, भय विभ्रान्त बना अत्यन्त ॥

टूटे बांस हाथ या छूटे, गिरकर फूटे इसका सिर।
मनोकामना पल में पूरी, हो सकती है मेरी फिर॥

□ अपनी ओर से

देखो पाठक ! राजा होकर, कैसा पाप कमाता है।
उसकी मौत मनाता जो नट, मन इसका बहलाता है॥
नरपति पिता तुल्य होते हैं, बेटा-बेटी लोग सभी।
नीति-न्याय में, धर्म-कर्म में, देते नृप सहयोग सभी॥
रक्षा करना सदा देश की, रिपुओं, चोर-चकारों से।
दुराचारियों बदमाशों से, गठकतरों-मक्कारों से॥
पक्षपात करते न कभी जो, अपना हो बेगाना हो।
वास्तव में नृप होता है वह, जिसका दास ज़माना हो॥
था क्या कहो भूप वह ऐसा, कहते हैं हम भूप जिसे।
समझा करती जनता मन में, श्री रघुपति का रूप जिसे॥

गगन-धरा में जितना अन्तर, अन्तर इतना उस में था।
या फिर राई और हिमालय- पर्वत जितना उसमें था॥
भूल गया था, मन के ऐसे- भाव नरक दिखलाते हैं।
पाप कमाने वाले मानव, अमन-चैन कब पाते हैं?

निकल नरक से बनते रोगी, बदसूरत बन जाते हैं।
घृणा उपजती जिन्हें देखकर, नाक-भौंह बल खाते हैं॥

▭ नीचे आगया

बड़ा दक्ष था 'कुवर इलाची', कैसे फिर गिर सकता वह।
कला-निपुण जो कलाकार हो, कैसे गिर मर सकता वह॥
आया नीचे उतर बास से, खेल दिखाकर वह अपना।
पुरस्कार पाने का सुन्दर, लगा देखने वह सपना॥
सोच रहा था—'मैंने अपना, सारा ज़ोर लगाया है।
खेल निराला खतरे वाला, इतनी देर दिखाया है॥
किसी किस्म की कोर-कसर कुछ, छोड़ी नही दिखाने में।
देरी कैसे हो सकती है, पुरस्कार अब पाने मे॥
नरपति के सम्मुख जाकरके, सादर शीश झुकाया है।
प्रथम पारितोषिक पाने को, अपना कर फैलाया है॥

☐ दुबारा खेलो

कठिन-कुटिल दिल वाला राजा, देता पर सम्मान नहीं।
बोला—'खेल दुबारा खेलो, तब था मेरा ध्यान नही॥

भली भांति से देख न पाया, नाटक अय नटराज! सुनो।
राज-काज की चिन्ता में मन, उलझ रहा था आज सुनो॥
बांस-शिखर पर चढ़कर फिर से, खेल अगर दिखलावोगे।
प्रथम पारितोषिक मेरे से, तुम मुंह मांगा पावोगे॥
थके हुए हो फिर भी तुम से, रखता हूं मैं आशा तो।
ननुनच किये बिना दिखलादो, सारा खेल-तमाशा वो॥

▭ सरलता का क्षेत्र

भोला-भाला 'कुंवर इलाची', उत्तर सुनकर दंग हुआ।
लगा सोचने—'पुनः खेल का, आज निराला ढंग हुआ!!
राज-काज की चिन्ताओं में, राजा कैसा तंग हुआ।
लगने पाया नहीं खेल में, ध्यान पूर्णतः भंग हुआ॥
दुविधाओं से नृप के दिल का, बड़ा अनोखा जंग हुआ।
बैठा यहां वहां पर पहुंचा, राजा नहीं पतंग हुआ॥

कुछ भी कपट नहीं वह समझा, जो राजा के अन्दर था।
कस कर कमर चढ़ा वह ऊपर, लगा लगाने चक्कर था॥
पुनः खेल दिखलाता घण्टों, नहीं जरा भी घबराया।
उतर दुबारा नृप के आगे, पुरस्कार पाने आया॥

▭ तीसरी बार

राजा जी की आशाओ पर, अब भी वज्राघात हुआ ।
जो भी चाल चली थी उसमें, नट के द्वारा मात हुआ ॥
हार रहा वह जीत रहा मै, ऐसा कुछ-कुछ ज्ञात हुआ ।
हाय! हाय! किस्मत है उलटी, यह क्या मेरे साथ हुआ !!
मार्ग दूसरा इतने मे ही, नृप ने खोज निकाला है ।
बोला—'युवक! कहूं क्या मुख से, तेरा खेल निराला है ॥
परम मुग्ध है सारी जनता, देख तुम्हारी अजब कला ।
लेकिन मेरा ध्यान नही था, और कही पर गया चला ॥
मन अस्थिर होने से पूरा, नाटक देख नही पाया ।
पुन तमाशा करने को भी, कहते यह दिल सकुचाया ॥
नही निराशा, आशा है फिर, देख तमाशा पाऊंगा ।
अब जो होगा खेल उसी में, अपना ध्यान लगाऊंगा ॥

▭ और ज़ोर से

नृप की ऐसी बातो मे मन, थोड़ा-थोडा खिन्न हुआ ।
लेकिन तन का-मन का साहस, नही अभी तक छिन्न हुआ ॥
तजकर खटपट झटपट नटवर, बांस-शिखर पर चढ जाता ।
पहले से भी अधिक जोश से, सकल कलाए दिखलाता ॥

नृपति करेंगे हमें पुरस्कृत, उदित हुआ उत्साह बड़ा।
बार तीसरी रंगमंच पर, नट दल सारा कूद पड़ा॥
गीत-वाद्य का अजब-गजब बस, समां सभी ने बांध दिया।
जनता की स्वर-लहरी ने कुछ, टूटा दिल भी सांध दिया॥
तीन पहर से भी कुछ ऊपर, बीत गए थे रजनी के।
दूर-दूर तक गूंज मधुर वे, गीत गए नट-सजनी के॥

उठकर गई नहीं सोई है, जनता सारी जमी रही।
नट नीचे आ बोला—'राजन्! अब भी क्या कुछ कमी रही?

▫ लाओ इनाम

इतना जोर कहीं पर पहले, मैंने नहीं लगाया है।
एक रात में एक बार ही, अपना खेल दिखाया है॥
आज विशेषाग्रह नरवर का मैं, नहीं ज़रा भी टाला है।
खेल दिखा कर तीन बार वह, प्रेम आपका पाला है॥
कृपा करो अय राजन्! अब तो, हम पर खुश हो जाओ जी!
पूर्ण पारितोषिक वितरण कर, श्रम को सफल बनाओ जी!!
बीत रही है रजनी अब तो, सूरज नहीं चढ़ावो जी!
जाकरके विश्राम करें हम, श्रीमुख से फ़रमावो जी!

▭ चौथी बार

जीवित देख सामने नट को, भारी कष्ट मनाता मन।
संजोई आशाओं पर क्यों, पड़ता जाता सघन तुहिन ।।
नृपति चाहता नट का जीवन, नट-मन चाह रहा है धन।
दोनों खेल खेलते अपना, कितना स्वार्थ यहां 'चन्दन' !!

धृष्टमना होकर नृप बोला, पुरस्कार तब पाओगे।
चौथी बार बांस पर चढ़कर, खेल अगर दिखलावोगे ।।
नहीं हुआ सन्तुष्ट अभी जो, और उसे बहलावोगे।
नाच-नाच कर मेरे प्यारे, मन को खूब नचावोगे ।।
पता नहीं क्यों यह मेरा मन, खेल तुम्हारा चाह रहा।
चाहा जिसे तिबारा उसको, फिर चौबारा चाह रहा ।।

▭ भ्रम होगया

नृप का सुन आदेश अनोखा, जनता चौंकी है सारी।
भर जाता है क्षण भर में ही, ग्लानि-भाव से मन भारी ।।
सभासदों ने रानी ने भी, मन से बुरा मनाया है।
और कुमार इलाची भी अब, अन्तर में घबड़ाया है ।।

लगा सोचने–'नरपति के क्या, मन में आज समाया है।
तीन वार के खेलों से भी, नृप-मन क्यों न अघाया है?
नस-नस चस-चस करे दर्द से, दिल अब बस-बस कहता है।
टस से मस न हुआ यह नरपति, इसीलिये दिल दहता है॥

नट हूं मैं नट जावूं कैसे? कैसे खेल किया जाये?
छोड़ दिया जाये या अपना, पैसा पूर्ण लिया जाये?
थका हुआ दल खेल न सकता, नहीं लोह का है इनसान।
तीन वार कर क्रीड़ा-कौतुक, मान रही है देह थकान॥
कहने का सम्मान रखा था, रखा नहीं अब जायेगा।
इतना ही है अपने श्रम का, पैसा सब दब जायेगा॥
नहीं नृपति देगा तो क्या हम, नहीं कमा खा सकते हैं?
हम हैं श्रमिक भरोसा श्रम का, क्यों नरपति मुख तकते हैं॥

नृपति चाहता मुझे मारना, बांस-शिखर पर चढ़ा-चढ़ा।
इसकी कुटिल मुखाकृति कहती, इसने है षड्यन्त्र घड़ा॥
खेल नहीं प्रेयसि का निश्चित, इसको रूप लगा प्यारा।
इसे उपाय यही सूझा है, और न चल सकता चारा॥
खेलूं खेल अगर गिर जाऊं, धन आएगा किसके काम।
नटकन्या नृप ले जायेगा, नट-विद्या होगी बदनाम॥

खेल खेलता है जब राजा, खेल नहीं सकता मैं खेल।
खेल तीन खेले हैं जिससे, निकल चुका है मेरा तेल ॥
धन न चाहिये मुझे चाहिये, मेरी नट प्रेयसि प्यारी।
समझ गया है अब मेरा दिल, इस राजा की मक्कारी ॥

○ नटी की प्रेरणा

देख 'इलाचीपुत्र' को, किंकर्त्तव्य — विमूढ़।
नटकन्या ने समझली, मनोभावना गूढ़ ॥
मुझे हड़पने के लिये, करता नृपति विचार।
पाप-विचार नहीं कभी, हो सकते साकार ॥
'कुंवर इलाची' खेलता, मेरे खातिर खेल।
वर्षों से यह जगत के, कष्ट रहा है झेल ॥
टूट नहीं जाये कहीं, इसके मन की आस।
प्यार न बन जाए कहीं, इस जग का उपहास ॥
'मानव साहस का धनी', बोली ऐसे बोल।
जिससे खुल पाए नहीं, पृथ्वीपति की पोल ॥

बैठे-बैठे सोच रहे क्यों, हिम्मत मन में धारो तुम।
चढ़ो बांस पर खेल दिखाओ, कुछ मत और विचारो तुम ॥

अब समीप ही सूर्योदय है, फैली लाली प्राची में।
सहस्रांशु की स्वर्णिम किरणें, आने वाली प्राची में॥
लज्जित होगा नृपति-नीच मन, भारी नीचा देखेगा।
बुरा चाहने वाला ही नर, अपनी ख्वारी देखेगा॥
मन में जिसके कपट-कटारी, तेग दुधारी देखेगा।
शूल चुभाने वाला सुन्दर, क्या फुलवारी देखेगा?
खोदेगा जो खात[1] अन्य को, कूप—पात वह देखेगा।
देखेगा जो ओर हमारी, नरक सात वह देखेगा॥
जायेगा क्यों व्यर्थ परिश्रम, पावन कला हमारी है।
विजय सुनिश्चित उसकी 'चन्दन', जो भी सत्य पुजारी है॥
कष्ट साध्य हो चाहे कितनी, मीठा फल दिखलायेगी।
कला करेगी भला हमारा, रिपु का दिल दहलायेगी॥
शत्रु-संघ पर विजय-वाहिनी, सेना जैसे छायेगी।
नाम मिटा देगी अरिगण का, अपना चांद चढ़ायेगी॥
चौथी बार दिखाना नाटक, बस सानन्द पसन्द करें।
तन-मन जीवन में भर साहस, दुश्मन का मुख बन्द करें॥

○ अन्तिम खेल

'कुंवर इलाची' का अन्तर-मन, गुस्सा नृप पर लाता है।
किन्तु सामयिक मधुर प्रेरणा, नटवाला से पाता है॥

---

१ खड्डा

जैसे बस खिसियाना कोई, सिंह जोश मे आता है।
'कुवर इलाची' एक पलक मे, बास-शिखर पर जाता है॥
वास-शिखर पर रखी सुपारी, उस पर नाभि टिकाई है।
देह संतुलन कर लेने से, जनता विस्मित पाई है॥
एक हाथ मे ढाल उठाली, एक हाथ मे ली तलवार।
गरण-गरण चकरी चढ़ जाता, खाता चक्कर एक हजार॥
इतने चक्कर खाने पर भी, नही सुपारी खिसकी है।
ऐसा खेल दिखादे, ऐसी- कला-कुशलता किसकी है॥

▭ नृपति की मनोभावना

सिंहासन पर बैठा राजा, सोच रहा था मन ही मन।
देखो तो इस बुद्धू को अब, देता हूँ मैं कैसा धन?
मैने तीर चलाया ऐसा, कभी न खाली जायेगा।
यह नीचे क्या आयेगा अब, प्यारी जान गवायेगा॥
यही नही है विस्मय कुछ कम, कैसे बचा तिबारा है।
लगता है इसकी किस्मत का, डूबा आज सितारा है॥

यह खोयेगा प्राण, हृदय मम, अब नट कन्या पाता है।
मेरा काम अधूरा, पूरा- अभी हुआ बस जाता है॥

रूप-जाल में फंसा भूप-मन, रूप-विरूप बनाता है।
छाया है या धूप ? नेत्र के- विना नज़र कब आता है ॥

□ रूप का जाल

सारी-सारी रात न सोता, रूप-पुजारी विहग चकोर।
प्राण गंवाता शलभ लपक कर, 'चन्दन' दीप-शिखा की ओर ॥
शब्द-रूप-रस-गंध-स्पर्श का, जाल विछा इतना भारी।
सारी ही दुनिया मरती है, केवल विषयों की मारी ॥
रूप देखना हो तो देखो, कहीं घाव जब हो तन में।
अगर रूप के प्रति आकर्षण, 'चन्दन' उठता है मन में ॥
तन में भरी अशुचियां सारी, चर्मावृत लगता सुन्दर।
गम्भीर दृष्टि से सोचो तन के, भरा हुआ क्या-क्या अन्दर ॥
रचना हुई रूप की जिससे, अथवा जो कुछ भरा पड़ा।
और नहीं कुछ रक्त पीप है, हाड-मांस सब गला सड़ा ॥
अन्दर वाहर दोनों देखो, तव समझोगे इसका रूप ?
शारीरिक सौन्दर्य ऊपरी, अन्दर से यह रूप कुरूप ?
ऐसा चिन्तन करने पर ही, रूप-जाल कट जाता है।
रूप-जगत पर होने वाला, आकर्षण छंट जाता है ॥
मोह घटाने से घटता है, बढ़ता मोह बढ़ाने से।
मोह-नशा चढ़ जाया करता, वारम्वार चढ़ाने से ॥

☐ नया खेल

चक्कर खाता स्थिर बन जाता, ध्यान लगाता आंखें मूंद ।
नहीं टपक जाए आंखों से, विस्मय और हर्ष की बूंद ।।
गिरने देता नहीं ढाल को, गिर जाए तलवार नहीं ।
केवल बल साहस का, प्रभु का, और वहां आधार नहीं ।।

उतरो खेल समाप्त होगया, लोग बजाते हैं ताली ।
इतने ही में फूट गई है, पूर्व दिशा में भी लाली ।।
पहली किरण 'इलाची' पर ही, पड़ कर देती पूर्ण प्रकाश ।
बिना प्रकाश कहां से मिलता, आप्त दृष्टि का पूर्णाभास ।।
लगा देखने 'कुंवर इलाची', बांस चढ़ा ही खेल नया ।
नया खेल होने से इससे, नीचे उतरा नहीं गया ।।

☐ मुनि और श्राविका

एक जैन मुनि जल लेने को, आए किसी सेठ के घर ।
बांस-शिखर ऊंचा होने से, आता उसको साफ़ नज़र ।।
रूपवती युवती मुनिवर के, दर्शन कर हरषाती है ।
धोवन पानी शुद्ध भाव से, भक्ति सहित बहराती है ।।

मुनि थे युवा और अति सुन्दर, फिर भी ऊंची नहीं नज़र।
नज़र-नज़र में अन्तर होता, होता अमृत तथा ज़हर ॥
सेठानी के नयनों में भी, भरी भक्ति कीं शक्ति बड़ी।
नहीं व्यक्ति के प्रति बढ़ पाई, गुण के प्रति अनुरक्ति बढ़ी ॥
चले गए मुनि जल-भिक्षा ले, 'कुंवर इलाची' ने देखा।
लगा मिलाने मुनि-जीवन से, अपने जीवन का लेखा ॥

□ तुलनात्मक दृष्टि

मैं हूं एक एक हैं ये मुनि, कितना दोनों में अन्तर।
एक बड़ा वैमानिक सुर है, एक देवता है व्यन्तर ॥
तन भी स्वस्थ मस्त है यौवन, रूप-रंग भी आला है।
खड़ी सामने सेठानी को, कैसे देखा भाला है !!
नयन,वयन,तन, मन स्थिर सारे, कंपन का भी काम नहीं।
उसी समय चल दिये वहां से, रुकने का भी नाम नहीं ॥
मुझको देखो एक नटी के, पीछे पागल होकरके।
दर-दर फिरता खाक छानता, कुल-मर्यादा खोकरके ॥
मांग रहा हूं एक तरह से, भीख भूप से रोकरके।
कनक-कामिनी के पीछे हा ! पड़ा हाय मैं घो करके ॥
सुख-सुविधा से भरा हुआ वह, रहा कहां वह मेरा घर।
कहां दुलार पिता-माता का, और कहां हैं वे चाकर ॥

अपनाया मैंने कुमार्ग यह, प्यार नटी का पाने को।
बना हुआ मैं आज भिखारी, आता नजर जमाने को ॥
जिसे चाहता हूं मैं उसको, नृपति हड़पना चाह रहा।
मेरी प्राण-प्रिया पर राजा, विकृत डाल निगाह रहा ॥

एक समय था—मेरे दर पर, याचक चल कर आते थे।
होकर पूर्ण-मनोरथ-भिक्षुक, खुशियां खूब मनाते थे ॥
आत्म-पतन कर डाला कितना, याचक मैं हूं आप बना!
अन्य किसी का दोष नहीं है, दुश्मन मेरा पाप बना ॥
करता हूँ मैं प्यार जिसे हो- जाना जिसका चाह रहा।
दूर अभी तक वह है मुझ से, मैं- काम-सिन्धु अवगाह रहा ॥
कितने कष्ट असह्य सहे हैं, कितना आपा मारा है!
कितना गिरा, स्वयं निज दिल पर, मारा काम-दुधारा है ॥

□ अन्तर-दृष्टि

नट-कन्या क्या मेरी है यह ? क्या मैं हूं नट-बाला का ?
क्या यह सारा खेल नहीं है, मोह-कर्म की ज्वाला का ?
नाम दूसरा प्रेम मोह का, नाम मोह का है संसार।
मोह-जाल में उलझ-उलझ कर, करता हूं मैं भ्रष्टाचार ॥

मैं स्वाधीन सदानन्दा था, कितना था घर में आमोद ।
कला-प्रेम का ढोंग रचा कर, किया नष्ट घर भर का मोद ॥
तन भी नहीं, नही जीवन भी, सब अस्थायी है संसार।
कैसे स्थिर फिर रह सकता है, नट-कन्या का अस्थिर प्यार ॥
जोड लिया यदि नाता इससे, क्या वह स्थिर रह पाएगा ?
ओस-बूद-सा अस्थिर वह भी, धरा यही रह जाएगा ॥

यौवन-रूप-रंग है कच्चे, ढलते लगती वार नहीं ।
वृद्धावस्था आजाने को, क्या रहती तैयार नहीं ?
मौत खडी रहती है सिर पर, पता नहीं कब आजाये ।
नही बुढापा आने पाये, पहले ही वह खा जाये ॥
आत्मा भिन्न भिन्न है काया, काया के ही होते रूप ।
रूप नही कोई आत्मा का, सत चित वह आनन्द स्वरूप ॥
दर्शन ज्ञान रूप आत्मा है, चिन्मय रूप अनन्त अखण्ड ।
मोह-जाल मे फस करके ही, भोगा करती कायिक-दण्ड ॥
नही शब्द मै, नही रूप मै, नही गंध-रस स्पर्श नही ।
काम-जाल में उलझ मरूं मै, यह मेरा आदर्श नही ॥

○ कैवल्य-प्राप्ति

नही बोलता नही डोलता, आत्म-रमण में लीन हुआ ।
उसकी आत्मा पर छाया सब, मोह-कर्म अब क्षीण हुआ ॥

कायिक वाचिक और मानसिक, स्पंदन बन्धन का कारण।
निस्पंदन बन जाना 'चन्दन', बात नहीं है साधारण॥
चिन्तन से स्थिर चित्त होगया, पहले से ही था तन स्थिर।
स्थिर रहने वाला नर कैसे, ऊपर से सकता है गिर?

गुणस्थान पहले से हटकर, एक-एक कर पार किये।
आत्मा के थे जितने दुश्मन, मन के द्वारा मार दिये॥
कर्म-आवरण हट जाने से, पाया 'केवलज्ञान' वहीं।
'केवलज्ञान' उसे कहते हैं, जिसमें हो व्यवधान नहीं॥
मोह-नाश हो जाने पर हीं, होता 'केवलज्ञान' भला।
ज्ञान भला होनें से हो तो, हो पाता है ध्यान भला॥
काल अतीत, अनागत, सारे- वर्तमान का होता ज्ञान।
'चन्दन मुनि' वे कहलाते हैं, केवलज्ञानी श्री भगवान॥

धर्म-देशना

बांस-शिखर से उतरा नीचे, खतम होगया सारा खेल।
ज्ञानी सत्पुरुषों का 'चन्दन', क्या होता खेलों से मेल॥
प्राणि-मात्र का हित करता है, होने लगा वहीं उपदेश।
सुन करके उपदेश ज्ञानमय, जनता विस्मित हुई विशेष॥

नाट्यसभा सारी की सारी, धर्म-सभा मे है बदली।
ज्ञान-वायु से शीघ्र हटी है, माया-ममता की बदली ॥

केवलज्ञानी 'कुवर इलाची', करते है अब उद्बोधन।
भव्यो! सावधान होजाओ, करो भूल का सशोधन।
खेल देखने क्या आये हो, खेल खेलते है खुद आप।
जन्म-काल से मृत्यु-काल तक, खेल कराते रहते पाप ॥
सुनो कहानी एक सुनाऊं, जो है मेरी पूर्व कथा।
यथा घटित हुई जीवन मे, बढ प्रस्तुत करता आज तथा ॥

▭ पूर्व जन्म

एक 'बसन्तनागपुर' पुर था, राजा 'रूपीराय' भला।
शासन करने की भी होती, नही सभी मे पूर्ण कला ॥
चढता यौवन राज्य ऋद्धि धन, बढता यश बढता उल्लास।
जब उल्लास भरा हो मन में, नही उदासी आती पास ॥
बैठा हुआ झरोखे में से, झाक रहा था पथ की ओर।
योग्य व्यक्ति को चुनती आखे, पाकर ज्ञान-किरण की कोर ॥
एक सेठ के लडके पर जा, नज़र गिरी है नरवर की।
बाते करने उसे बुलाया, घर की, पर की दिलभर की ॥

सेठ-पुत्र वह था अति सुन्दर, और बड़ा ही था सुकुमार।
सब कहते थे मानो वह है, कामदेव का ही अवतार॥

□ राजमहलों में

राजा बोला—'तुम्हें देखकर, जग आया अन्तर अनुराग।
संस्कारों के बिना न जगता, राग, द्वेष अथवा वैराग॥
लगते हो अपने ही मुझको, होता जागृत ऐसा स्नेह।
क्यों न समा जाएं आपस में, चित्त एक हो हों दो देह॥

श्रेष्टितनय ने कहा—"समझिये, मेरा यह सौभाग्य भला।
अपनापन स्थापित करने की, होती सब से श्रेष्ठ कला॥"

राजा बोला—'तुम्हें यहां पर, बुलवाया बातें करने।
बातें करके अपने मन की, सभी व्यथाओं को हरने॥
बहुत दिनों से मेरे मन पर, छाई रहती बड़ी व्यथा।
सुनने वाले मिलें नहीं तो, कौन कहेगा दुःख-कथा॥
कुछ बातें ऐसी भी होतीं, जिन्हें छिपाकर रखता नर।
हर नर कहने योग्य न होता, इसीलिये लगता है डर॥
योग्य व्यक्ति के सम्मुख ही वे, दिल की बातें की जातीं।
बातें सीमित यहीं रहेंगी, प्रथम प्रतिज्ञा ली जाती॥

□ सेठ का लड़का

सोच रहा है श्रेष्ठि-तनय मन, क्या बाते होगी ऐसी ?
व्यक्ति अपरिचित मेरे जैसा, समझ नही सकता वैसी ।।
प्रथम मिलन मे ही राजा क्यो, लगा खोलने गुप्त रहस्य !
कैसी भी हो चाहे बातें, सुनना देकर ध्यान अवश्य ।।

"बात-योग्य समझे यदि मुझको, कहिए मन की बात नरेश ।
स्पष्ट स्पष्ट सब बाते कहदे, मन मे रखे न कपटावेश ।।"

राजा बोला—'आप आज से, मेरे साथी बने अभिन्न ।
अभिन्न मित्र मिल जाने पर ही, सब दुख होते है विच्छिन्न ।।

□ राजा की बात

है वर्षों से जिन बातों को, रखा गया अब तक प्रच्छन्न ।
वे सब बाते आज कह रहा, सुन कर मत होना अवसन्न ।।
मै था मातृ-गर्भ मे तब ही, हुआ पिता जी का देहान्त ।
राजकुमार नही था पीछे, इसीलिये स्थिति बनी अशान्त ।।
मुख्य सचिव ने काम संभाला, बोला—होगा राजकुमार ।
आशा ही मानव-जीवन के, चला रही सारे व्यवहार ।।

जन्म-हुआ जब मेरा मन पर, हुआ सभी पर वज्र-निपात।
राजकुमारी जन्मी सुन कर, मन पर हुआ बड़ा आघात ॥
फिर भी मुख्य सचिव कहता है, जन्मा सुन्दर राजकुमार।
योग्य अवस्था होजाने पर, संभालेगा शासन-भार ॥
मुख्य सचिव को, मेरी मां को, या मेरे को पता सकल।
और किसी ने पता न पाया, गोपनीयता हुई सफल ॥
लालन, पालन, शिक्षण सुख से, उसी तरह प्रच्छन्न हुए।
हुआ राज्य-अभिषेक एक दिन, सभी अतीव प्रसन्न हुए ॥

८ आप स्वीकारो

किन्तु वास्तविकता पर पर्दा, डाला जाये कितने दिन ?
अंगों से नारीत्व झलकता, आते हो सुन्दर यौवन ॥
राजसभा में कम जाती हूं, महलों में प्रायः रहती।
कोई जान नहीं ले मुझको,- मनोवेदनाएं सहती ॥
मन्त्री भी चिन्तित है लेकिन, कोई भी पथ नहीं मिला।
किसी विषय की चिन्ता हो वह, देती चित्त अवश्य हिला ॥
आज तुम्हें जाते देखा जब, समाधान पाया मैंने।
रंग-रूप-लावण्य और वय, सब समान पाया मैंने ॥
सहज-सहज अनुराग होगया, बुला लिया इससे ऊपर।
आत्म-समर्पण मैं करती हूं, स्वीकृत करलो हे प्रियवर !

आप मुझे स्वीकार करे तो, टल जाये आपत्ति महान।
भावी उज्ज्वल है- दोनों की, ऐसा है मेरा अनुमान ॥

▭ मन को उलझन

सुनकर श्रेष्ठि-तनुज ने सोचा, भारी उलझन हुई खडी।
क्या उत्तर दू नृप को, आई- घड़ी विकट यह बहुत बडी ॥
अभी विवाह हुआ है मेरा, उसका कैसे त्याग करू ?
करूं विवाह दूसरा कैसे, क्यो मै नव अनुराग करू ॥
पूर्ण सदाचारी सतोषी- मन ने पत्नीव्रत धारा।
हे भगवान ! यहा से कैसे, पा सकता हूं छुटकारा ॥
यह शासक है 'ना' कहने से, मुझे नही जाने देगा।
हा कहने से मेरी आत्मा, शान्ति मुझे न पाने देगा ॥

☐ नृप का स्पष्टीकरण

वह बोली फिर—'नही आज तक, रखा कही पर यह प्रस्ताव।
सच्ची बाते कहने का ही, मानो मेरा बना स्वभाव ॥
जितना करना उतना कहना, कहना प्रेम सहित सारा।
क्योंकि सभी को होता ही है, अपना-अपना हित प्यारा ॥

मैंने मेरा हित सोचा है, सोचो आप हिताहित भी।
भोजन वही शक्ति देता है, जो हो पथ्य तथा मित भी॥

□ एक उपाय

श्रेष्ठि-पुत्र ने नृपति से, कहा विनय युत साफ़।
मुझे सोचने के लिये, समय दीजिये आप॥
बड़ी समस्या है विकट, सूझ न पड़े उपाय।
प्रभो ! आपइस ही समय, मेरी करें सहाय॥

देह-शुद्धि की अनुमति लेकर, सत्वर भागा श्रेष्ठि-तनय।
भय न उपस्थित होने पर भी, मान लिया जाता है भय॥
राजभवन की सीमाओं से, क्षण में बाहर निकला भाग।
इस घटना से श्रेष्ठि-तनय के, मन में जागा पूर्ण विराग॥
सिवा भोग के, सिवा विषय के, क्या कुछ बाकी नहीं बचा ?
विषय प्राप्त करने में केवल, मानव रहता रचा-पचा॥
विषय-त्याग की बात न करता, सुनता नहीं त्याग की बात।
करता-सुनता बात एक ही, विषयों की बन जाय बरात॥
प्राप्त भोग कब प्यारे लगते, प्यारे लगते जो अप्राप्त।
विषय-प्राप्ति की बात कहीं क्या, हो सकती है भी समाप्त ?

□ साधु बन गया

घर भी गया नही वह वापिस, जा पहुचा श्रमणो के पास ।
अपनी सभी समस्याओ पर, उसने डाला पूर्ण प्रकाश ।।
फिर से घर जाने पर वह तो, बुलवाएगी अपने पास ।
उसके सम्मुख जाने पर तो, निश्चित उपजेगा सत्रास ।।
दीक्षा लेने पर तो रानी, बुला न सकेगी निज आवास ।
इसीलिये दीक्षा दे भगवन् ! सुन करके मेरी अरदास ।।

गुरु ने पाच महाव्रत देकर, शिष्य बनाया है अपना ।
देवानुप्रिय ! जगत-जाल यह, है केवल सुन्दर सपना ।।

□ राजा बनाम रानी की सूचना

देह-शुद्धि के लिये गया था, लौट न आया वणिक कुमार ।
अपनी आशाओ पर मैने, किया स्वय ही वज्र-प्रहार ।।
गुप्तचरो के द्वारा सारा, पता लगाया रानी ने ।
जाना उसको सन्त बनाया, किसी श्रमणवर ध्यानी ने ।।
गुरु की चरण-शरण में अब वह, जा बैठा है सब कुछ त्याग ।
मोह-ममत्व से पा छुटकारा, तोड दिए सब जीवन-राग ।।

□ मुनि जी के पास

'रूपीराय' महल से उतरी, पहुंची वह मुनिगण के पास।
भक्ति,शक्ति,अनुरक्ति दिखाकर, करती अब वह नये प्रयास॥
मर्यादा से विचलित होना, नव मुनि को था नामंजूर:
रानी रहना नहीं चाहती, अपने इस अभीष्ट से दूर॥
मुनि ने ज्ञान-विराग युक्त कुछ, रानी को उपदेश दिया।
तुम भी दीक्षा लेलो यह अब, भाव अन्त में पेश किया॥

□ रूपीराय का रंग

तथाकथित राजा ने सोचा, यह कुमार है श्रमण हुआ।
मेरी अभिलाषा पर मानो, एक बड़ा आक्रमण हुआ॥
मैंने प्रेम किया था इससे, बना साधु मेरे डर से।
डरके मारे भागा करते, प्रायः शिशु अपने घर से॥
इसने एक नवोढा छोड़ी, छोड़ा मेरा प्रेम अपार।
मैं भी छोड़ नहीं क्या सकता, माया रूपी यह संसार?
यदि होती मैं पुरुष आज तो, क्यों आती ऐसी बाधा।
बाधा उसे उठानी पड़ती, जिसने धर्म न आराधा॥
दीक्षा लेने से ही होगा, अब तो मेरा जन्म सफल।
और उपाय नहीं है कोई, टूट गया है सारा बल॥

दीक्षा लेने से प्रतिदिन मैं, मुनि-दर्शन कर पाऊंगी।
रह गृहस्थ में मोह-पाश-बद्ध, तड़प-तड़प मर जाऊंगी॥
कुछ विराग कुछ राग साथ में, छिपा हुआ यों भावों में।
नारी बहुत शीघ्र आजाती, 'चन्दन' नये प्रभावों में॥

'रूपीराय' बनी है साध्वी, सद्गुरु की ले चरण-शरण।
साधुत्व-मार्ग की पथिक साध्वियां, कर लेती हैं मुक्ति-वरण॥

८ द्वन्द्व की लड़ाई

राग विराग प्रकाश अन्धेरा, रात और दिन जड़ चेतन।
इन द्वन्द्वों में उलझा रहता, प्राणिमात्र का अवचेतन॥
रागी कभी विरागी बनते, कभी विरागी भी रागी।
त्यागी भोगी बन जाते हैं, भोगी बन जाते त्यागी॥
मार्ग-साधना का अपनाकर, चलते हैं सारे ही सन्त।
सन्तत्व लक्ष्य पर सारे पहुंचें, सरल नहीं है साधक-पन्थ॥

०. साध्वी का अनुराग

"रूपीराय" बनी साध्वी जो, राग-भावना फिर जागी।
राग-द्वेष के बिना नहीं गिर, सकता है कोई त्यागी॥

जिस दिन नहीं देखती मुनिको, दुखित-व्यथित हो उठता मन।
प्रतिदिन उसी साधु से करती, शास्त्रों का अध्ययन-मनन ॥
साधु अभी तक उसे पढ़ाता, शुद्ध भावनाओं के साथ।
साध्वी अपनी चेष्टाओं से, कह देती थी सारी बात ॥
मुनि-मन पर भी धीरे-धीरे, छाया साध्वी का अनुराग।
रागी दोषी लोभी नर का, कब टिक सकता कहो विराग॥
दोनों की आंखें जब मिलतीं, करतीं स्पष्ट बात ही एक।
स्पष्ट बात है, बुरी बात से- हो जाता है नष्ट विवेक ॥

▫ पूछताछ हुई

साथी सन्तों ने जब जाना, पूछा—बोलो क्या है बात ?
चक्षु-असंयम सेवन करना, रहना और संघ के साथ ॥
चक्षु-कुशील अधर्म बड़ा है, करो साधना-संयम की।
समझाना कर्तव्य हमारा, नहीं दिया सकते धमकी ॥

शब्दों का आवरण डाल कर, दोनों बच निकले तत्काल।
स्वीकृति बिना दण्ड दें किसको, हुआ उपस्थित विकट सवाल ॥
मुनियों और साध्वियों ने भी, समझाया तुम मत झांको।
अपना और संघ का श्रेयस, आंक सको तो कुछ आंको ॥

व्रतधारी मुनि की दृष्टि में, सभी नारियां बहन समान।
साधु साध्वी होकर कैसे, बना रहे हो विकृत ध्यान?

साधु सतीर्थ्य सहोदर जैसा, साध्वी हो तुम ज्ञान करो।
नेत्र-बाण के द्वारा संयम- जीवन के मत प्राण हरो।।
राजा रहे हुए हो पहले, पूर्ण नीति-वेत्ता है आप।
यहां नही, परभव मे भी यह, छूट नही पायेगा पाप।
फिसल गए हो तो फिर सभलो, रखो सावधानी स्वयमेव।
इधर ताकना-उधर ताकना, कहलाती यह टेव कुटेव।

□ विराधक बने

नही सुधार हुआ दोनों मे, बढ़ी और आसक्ति घनी।
निर्धन-निर्धन होता जाता, होता जाता धनी-धनी।।
कष्ट साधु-जीवन के सहते, रख न सके साधुत्व प्रबुद्ध।
दोनों ही वे बने विराधक, अपना संयम किया अशुद्ध।।

□ 'इलाची' और 'नट-कन्या'

श्रेष्ठि-तनय मै बना 'इलाची', रूपी राजा नट-वाला।
जन्म-जन्म तक राग-द्वेष की, ऐसे जलती है ज्वाला।।

इस पर जब अनुराग हुआ तो, सारा घर मैं आया छोड़।
अभी-अभी मुनि-दर्शन पाकर, बन्धन सारे पाया तोड़॥
मुनि-दर्शन पाने से मेरी, राग-भावना हुई समाप्त।
राग-द्वेष मिट जाने से ही, 'केवलज्ञान' होगया प्राप्त॥

▭ नट-बाला को ज्ञान

नट-बाला ने सोचा—मैंने कैसा पाया सुन्दर रूप।
जिसे देखकर 'कुंवर इलाची', देखो बिगड़ा, बिगड़ा भूप॥
था अनुराग 'इलाचीं' पर वह- हुआ उसी पर आज विराग।
सूर्योदय होने से जैसे, जाता है अन्धेरा भाग॥
काया नहीं, विचार पलटते, हट जाते आवरण सभी।
मिट जाते हैं जन्म और फिर, मिट जाते हैं मरण सभी॥
नट-कन्या ने भी पाई अब, केवलज्ञान-किरण की कोर।
कर्म-पाश से मुक्त हुई वह, जन्म-मरण की टूटी डोर॥

▭ राजा को भी ज्ञान

राजा लगा सोचने—'मेरे, जैसा कोई अधम नहीं।
अभी उठाया मैंने, जैसा- अन्य उठाता क़दम नहीं॥
नट कुमार को मरणेच्छा से, बांस चढ़ाया कितनी बार।
विकृत आंखों से देखा है, नट-कन्या को बारम्बार॥

धिक-धिक मेरा जीवन, धिक धिक- मोह कर्म का है बन्धन ।
वन्दनीय है बना "इलाची", करिये इसका अभिनन्दन ॥

शुभ चिन्तन से अशुभ कर्म की, स्थितिया सारी हुई समाप्त ।
राजा को भी 'केवलदर्शन', 'केवलज्ञान' होगया प्राप्त ॥

□ रानी को भी ज्ञान

रानी बोली—'नारी-जोवन, नर के मन का है बन्धन ।
आत्मा एक समान सभी मे, शास्त्र सुनाते 'मुनि चन्दन ॥'
आत्म-भाव मे स्थिर होने से, लैगिक भेद नही रहते ।
'एगे आया' पाठ सुना कर, सन्त सर्वदा यह कहते ॥
जीव अजीव तत्त्व है दो ही, नही तीसरा कोई तत्त्व ।
क्यों निर्जीव वस्तुओ को मन, देता इतना अधिक महत्त्व !!
चेतन-चेतन को हो चाहे, सब से उत्तम पन्थ यही ।
अलग अचेतन से हो जाना, सन्त सुझाते पंथ सही ॥"

'केवलज्ञान' प्राप्त कर रानी, मोहकर्म से मुक्त हुई ।
पाने को सिद्धत्व शीघ्र ही, मानो वह उपयुक्त हुई ॥

समापन और सार

सारी जनता अब गई, अपने-अपने स्थान।
आखिर चारों केवली, बने सिद्ध भगवान ॥
बांस-शिखर पर पालिया, उत्तम 'केवलज्ञान।'
'कुंवर इलाची' ने किया, यह आश्चर्य महान ॥

'भरत' चक्रवर्ती ने पाया, आरीसा महलों में ज्ञान।
'मरुदेवी' माता ने पाया, हाथी पर हो सिद्धि-स्थान ॥
'मुनि आषाढ' केवली बनते, नाटक करते समय यहीं।
जो कुछ है सो इस आत्मा में, बाहर ढूंढो कहीं नहीं ।
पूर्व कर्म क्षय करने को ही, करने पड़ते काम अनेक।
बंध,, मोक्ष परिणामों में ही, 'चन्दन' करिये आप विवेक ॥

पूर्ति काल

'दो हज़ार उन्नीस' विक्रमी, माघ महीना बीत रहा।
होकर हर्ष मगन मन 'चन्दन', रचता यह संगीत रहा ॥
केवलज्ञानी ने जो देखा- जाना वही हो रहा भाव।
'केवलज्ञान' मुझे भी पाना, मन रखता है यह प्रस्ताव ॥
जय हो 'केवलज्ञान', 'केवली'- भगवानों की जय हो जय।
अष्ट कर्म क्षय करने से ही, 'चन्दन' मिलता सुख अक्षय ॥

७

एक दिन का राजा

राज्य एक दिन का पाकरके,
भला-बुरा कर सकता नर।
जल में यथा डूब सकता है,
चाहे तो सकता है तर॥

० ७ ० एक दिन का राजा

मानव-धर्म

मानव कहलाने वाले ! तू, मानवता से दूर न हो।
मानव-धर्म यही कहता है, औरों के प्रति क्रूर न हो ॥
मानव-धर्म निभाने वाला, धर्मी कहलाता है नर।
धर्म-रहित नर में पशु में क्या, समझा जा सकता अन्तर ?
अन्तर अगर टटोला जाये, आजायेगा स्वतः खयाल।
मानव होकर क्यों चलता तू, पशुओं से भी बदतर चाल ॥
हुई समाप्त सहानुभूति जब, धर्म होगया स्वतः समाप्त।
स्वार्थी मानव सोच रहा है, मात्र मुझे हो हो सुख प्राप्त ॥

सुखी देख करके औरों को, जलता मानव मन ही मन।
मुझे नहीं मिल पाया जब कि, इसे मिला है क्यों यह धन॥
असहयोग के साथ बढ़ी है, ईर्ष्या जन-जन के मन में।
सुख के दर्शन हो सकते क्या, 'चन्दन' ऐसे जीवन में?

नहीं किसी ने सरजा, सरजा- मानव ने दुख हाथों से।
शान्ति नहीं हो सकती स्थापित, केवल मौखिक बातों से॥
मानवता की मिले प्रेरणा, एक कथानक कहता हूँ।
कथा रचयिता के नाते मैं, उपदेश भाव में बहता हूँ॥

□ तीन मित्र

राजकुंवर औ वणिक-पुत्र दो, तीनों ही थे मीत बड़े।
क्या न लिखे जा सकते 'चन्दन', सत्य-प्रीत पर गीत बड़े?
जब भी देखो तब ही तीनों, एक स्थान पर मिल जाते।
मिल जाते जब दिल आपस में, फूलों जैसे खिल जाते॥
अगर एक को जाना होता, जाते ये तीनों मिल कर।
अगर एक को खाना होता, खाते ये तीनों मिल कर॥
प्रतिदिन मिलने का प्रण पूरा, करते तीनों मित्र प्रवर।
ऐसा नहीं सोचते मन से, हम बनिये यह राजकुंवर॥

जाति-पांति से रहित मित्रता, पावनता सिखलाती है।
विचित्रता है सही बात क्यों, नहीं समझ में आती है॥
साथ खेलते साथ कूदते, साथ किया करते थे सैर।
जैसे हाथ-हाथ में 'चन्दन', नहीं कभी हो सकता बैर॥

बुरे स्वभावों से तीनों ही, बहुत दूर नित रहते थे।
रहते ये तीनों ही वैसे, अभिभावक ज्यों कहते थे॥
यह के साथ विवेक-विनय भी, बढ़ते जाते तीनों के।
नहीं एक के गुण गाते जन, गुण भी गाते तीनों के॥
नहीं निरंकुशता पनपी थी, तीनों ऐसे थे सुविनीत।
प्रीत मीत के लिये न चलिये, नीति, धर्म, कुल, के विपरीत॥
बचपन बीत गया है सुख से तीनों ने पाया यौवन।
भेद अवस्था करती लेकिन, भेद विभेद न करता मन॥

□ दोनों की बात

एक दिवस वे राजपुत्र मिल, वणिक-पुत्र बतलाते हैं।
थोड़े दिन के हो हम प्यारे ! मीत नज़र अब आते हैं॥
राजा बनकर राज-काज में, उलझ बड़े तुम जाओगे।
जैसे मिलते अभी, नहीं फिर, हम से मिलो-मिलाओगे॥

स्मृतियां मधुर-मधुर बचपन की, नहीं आपको आयेंगी ।
लगता है यह रीति-प्रीति की, शीघ्र खतम हो जायेगी ॥

□ राजकुमार की बात

मित्रों की सुन बात अनोखी, राजपुत्र यों बोला है।
खोला है दिल उसने ऐसा, चाहे समझो भोला है ॥
ऐसा कभी न हो पाएगा, मित्रों ! यह विश्वास करो।
प्रेम टूट जायेगा कहकर, मन को नहीं उदास करो ॥
यह तो बात निकालो मन से, मैं जाऊंगा मैत्री भूल ।
सदा सुगन्ध दिया करते हैं, 'चन्दन' हमे सुगन्धित फूल ॥

□ ऐसे नहीं ऐसे

दोनों बोले—बात सही है, अभी नहीं है कोई भेद ।
यदि सिंहासन पाकर बदले, तब तो निश्चित होगा खेद ?
हम होंगे व्यापारी केवल, सत्ताधारी होंगे आप।
राजाओं का होता ही है, 'चन्दन' भारी तेज-प्रताप ॥
मिलना मुश्किल हो जायेगा, साथ बैठना दूर रहा।
समकुल वाले स्नेही होते, नीतिज्ञों ने सत्य कहा ॥

धनपतियों से ही धनियों की, दोस्ती निभ जाया करती।
पृथ्वीपतियों से बनियों की, दोस्ती बेचारी डरती॥

□ राजपुत्र

मित्रों की सुन मीठी बातें, सस्मित बोला राजकुमार।
झूठ-मूठ ही रूठ रहे हो, नहीं टूट सकता है प्यार॥
मित्र अभिन्न बने हम तीनों, प्रेम छिन्न होगा कैसे?
चिन्ह नहीं कोई भी ऐसा, चित्त खिन्न होगा कैसे?
जैसे आज प्रेम है वैसा, सदा निभाया जायेगा।
राजपुत्र अपने मित्रों को, मन से नहीं भुलायेगा॥

○ वणिक-पुत्र

बोले बणिक-पुत्र फिर ऐसे, सही आपकी बात अभी।
राजा बनने पर क्या ऐसे, रह सकते हम साथ कभी?
स्थितियां सभी बदल जायेंगी, कर में सत्ता आने से।
सकुचाओगे मन ही मन तुम, मित्र हमें बतलाने से॥
मिलते और बोलते हम से, अनुभव होगा ओछापन।
अहं-भावना पैदा करते, प्रभुसत्ता-युत यौवन-धन॥

विश्वास-पात्र

राजपुत्र ने कहा—'न करिये, मुझ से ये बातें कच्ची।
सच्ची-सच्ची प्रीत[1] हमेशा, पालूंगा अच्छी-अच्छी ॥
अविश्वास क्यों तुम्हें हो रहा, पता नहीं मैंने पाया।
ऐसे बोल रहे हो जैसे, पान नशे का हो खाया ॥
कोई कठिन प्रतिज्ञा मुझसे, मित्रो! करवा सकते हो।
चाहो तो विश्वास-पत्र भी, मुझसे लिखवा सकते हो ॥

बोलो, क्या दोगे ?

"अच्छा, आप बनोगे जब नृप, बोलो हम को क्या दोगे ?
जो कुछ दोगे उसी वस्तु का, नाम अभी क्या खोलोगे ?"

"जो मांगोगे वह ही दूंगा, हो सकता इन्कार नहीं;
जब इन्कार किया जाता है, समझो सच्चा प्यार नहीं ॥
मैं क्या बोलूं ? बोलो दोनों, जैसी इच्छा हो मन की।
नहीं मित्रता जा सकती है, अपनी यह बालापन की ॥"

---

१ 'पलटू' ऐसी प्रीत कर, ज्यों मंजीठ को रंग।
टूक-टूक कपड़ा उड़ै, रंग न छोड़े संग ॥

□ एक दिन का राजा

मांग रखे क्या अपने मन की, क्या होगी मंजूर तुम्हे ?
मनवाने के लिये नही हम, कर सकते मजबूर तुम्हें ॥
एक-एक दिन का दोनो को, देना होगा अपना राज ।
राज-मुकुट कर घारण समझे, राज्य-भोग के हम सब राज ॥

□ हस्ताक्षर करो

इतनी सी इच्छा है क्या बस? मित्रो !" दूगा राज तुम्हे ।
पहना दूगा बड़े प्रेम से ! अपने सर का ताज तुम्हे ॥"

बनिये बोले–"लिखो पत्र पर, नीचे करदो हस्ताक्षर ।
जिससे तुमको याद दिलाएं, ना जाओ तुम कभी मुकर ॥'

राजपुत्र ने कहा–"मित्रवर ! इस मे लिखने की क्या बात ।
जब चाहो तब करो परीक्षा, चाहे दिन हो चाहे रात ॥"

"दोगे राज्य भरोसा पूरा, लेकिन लिख कर देदो पत्र ।
लिखा हुआ ही पत्र सर्वदा, प्रामाणिक होता सर्वत्र ॥

मुंह की बात बात है केवल, लिखने पर होता विश्वास।
लिख देने पर हम को होगा, सत्य वक्तृता का आभास?"

□ वणिकों का चातुर्य

राजपुत्र ने दिया पत्र लिख, मित्रों के मन छाया हर्ष।
'चन्दन' राज-पुत्र ने रक्खा, प्रेम-भावना का आदर्श॥
वणिक जाति की चातुरता का, परिचय मिलता है प्रत्यक्ष।
क्या न गतायु शतायु बनाकर, वणिक बचा यमराज समक्ष?
सभी स्थान पर खाता बनिया, चाहे हो कोई खाता।
खाए बिना भला बनिये से, कैसे कभी रहा जाता॥

दोनों ने ले पत्र प्रेम से, रखे सुरक्षित निज घर पर।
राजपुत्र के शुद्ध प्रेम की, की सराहना है मन भर॥
तीनों मिलते रहते प्रतिदिन, कभी न होता है व्यवधान।
प्रण का और प्रेम का करते, पूर्णतया 'चन्दन' सम्मान॥
उदय-अस्त का पता न चलता, व्यस्त मस्त रहता जीवन।
स्वस्थ और अभ्यस्त व्यक्ति का, सदा प्रफुल्लित रहता मन॥

राजपुत्र के शुद्ध प्रेम की, सराहना करते मन भर।

▭ नृप का निधन

आख़िर समय आगया वह भी, जिसकी उन्हें प्रतीक्षा थी ।
हो करके अब भिन्न उन्हें जब, देनी प्रेम-परीक्षा थी ।।
नियम प्रकृति का अटल देखिये, तोड़ नहीं सकता कोई ।
जो होना है निश्चित होता, जो होनी थी वह होई ।।
राजकुंवर के पिता वृद्ध थे, निर्बल बड़ा शरीर हुआ ।
प्रतिदिन दुर्बल होते लखकर, सब का हृदय अधीर हुआ ।।
नुस्खे बहुत चलाये लेकिन, नहीं एक अक्सीर हुआ ।
होना था जो कुछ भी इक दिन, 'चन्दन' वह आखीर हुआ ।।

वियोग-व्यथा का पीड़ा-दायक, पार हृदय के तीर हुआ ।
राजकुंवर क्या अन्तःपुर क्या, सब का विचलित धीर हुआ ।।
चोट नहीं सह पाया कोई, निर्बल हर बलवीर हुआ ।
खोदा गया नहीं नयनों को, फिर भी उन में नीर हुआ ।।
रहा वही भगवान भरोसे, जो भी वहां फ़कीर हुआ ।
बिना नृपति के शासन का बस, रक्षक मात्र वज़ीर हुआ ।।

बीत गए जब कुछ दिन तो दिल, सब का ही बे-पीर हुआ ।
व्यस्त काम में अपने-अपने, अन्त ग़रीब-अमीर हुआ ।।

राजकुंवर से राजा

इसी बीच मे राजकुंवर को, राजमुकुट पहनाया है।
इतने बड़े राज्य का स्वामी, सबने उसे बनाया है ।।
नीति-परायण धर्म-परायण, नृपति बना वह राजकुवर।
लगा चलाने राज-काज को, राज मुकुट को शीश सवर ।।
खुश थी प्रजा नृपति को पाकर, और प्रजा से खुश था भूप।
नित्य देखने को मिलता था, न्याय-धर्म का सत्य स्वरूप ।।
रिश्वत का कुछ काम नही था, जाम नही था पेश कही।
होती थी सुनवाई सब को, स्वार्थ नही था द्वेष नही ।।
न्यायी को सुखदाई था फिर, दुष्टो को दुखदाई था।
दीन, गरीब, दुखी लोगो का, मानो परम सहाई था ।।
नृप का, नृप के मात-पिता का, धन्यवाद सब करते थे।
नही गुणो को कभी भूलते, सदा याद सब करते थे ।।
बीत रहा था समय शान्ति से, सुखी प्रजाजन थे सारे।
उन सब को था प्यारा राजा, राजा को वे थे प्यारे ।।

वणिक पुत्र

दोनो वणिक पुत्र भी अपना, अपना काम चलाते थे।
स्थान पिता के बैठ हाट मे, दौलत खूब कमाते थे ।।

जुटे काम में तीनों ऐसे, नहीं ज़रा अवकाश रहा।
समय परस्पर मिलने को अब, नहीं किसी के पास रहा॥

▫ यथार्थता का चित्र

भूल गए तीनों ही ऐसे, मानो कभी नहीं थे मित्र।
सिर पर बोझा आजाने से, स्थिति हो जाती बड़ी विचित्र॥
नमक-तेल-लकड़ी की चिन्ता, नहीं निकलने देती है।
समय अमूल्य देखलो 'चन्दन', ये चीजें ले लेती हैं॥
विद्यालय के साथी सारे, जाते अपने-अपने स्थान।
बहुत असम्भव हो जाती है, कभी-कभी उनकी पहचान॥
किनसे मिलने जाया जाये, डाले जायें किनको पत्र।
अत्र तत्र सब बिखर गए जब, कैसे पहुंचेंगे सर्वत्र॥
पत्नी-पुत्र तथा पैसे की, त्यागी जाती याद नहीं।
इनकी याद नहीं करने से, घर होता आबाद नहीं॥
जहां कमाना रहना होता, वहीं मित्रता कर लेते।
काम-काम कर थकते दिन भर, शाम पड़े फिर घर लेते॥

मित्रों में खो जाने से तो, चौपट हो जाये व्यापार।
भार उठाने वाले ही तो, निभा रहे अपना संसार॥

□ मौका मिला

इक दिन एक बणिक का बेटा, घाटे में कुछ आया था।
देख रहा था कागजात वह, पत्र पुराना पाया था॥
सोचा–सहसा कुंजी यह तो, अच्छी मेरे हाथ लगी।
घाटे की क्या चिन्ता अब तो, क़िस्मत मेरे साथ जगी॥
बहुत पुराना पत्र पड़ा है, शायद ही हो नृप को याद।
फिर भी मिलना मुझे मुनासिब, नृप से इतने दिन के बाद॥
ध्यान नहीं भी होगा तब भी, पत्र ध्यान दिलवाएगा।
लिखा हुआ अपने हाथों से, पहचाना ही जायेगा॥
कर प्रयत्न देखूं मैं अपना, बिगड़ा काम बनाने का।
सम्भव है परिणाम मधुर ही, निकले मेरे जाने का॥

□ जाने की तैयारी

किया स्नान भोजन-सुख पूर्वक, पहनी है अच्छी पोशाक।
पोशाकें ही धर्म जाति की, पूर्णतया भरती हैं साख॥
राजसभा में जाना है तो, जाना बड़ी शान के साथ।
महाराज से मुलाकात कर, याद दिलाऊं सारी बात॥

राजमहल में कब होता है, नृपादेश के विना प्रवेश।
मांगे जाते अपरिचितों से, परिचय-पत्र यही है क्लेश॥

द्वारपाल से कहा—'कहो जा, मित्र आपका आया एक।
मिलने की अभिलाषा लेकर, लेकर पूर्व प्रेम-उद्रेक॥

▭ भूल गये

द्वारपाल नृप-आज्ञा लेकर, इसे लेगया उस के पास।
जय हो-जय हो पृथ्वीपति की, बोला वणिकपुत्र सोल्लास॥
आसन दिया बिठाया उसको, नृप ने किया बड़ा सम्मान।
कैसे आये हो बोलो अब, कृपया दें अपनी पहचान॥

भूल गये क्या आप मुझे भी, नही रहे कैसे पहचान?
मैं हूं मित्र पवित्र आपका, नृप बोला—'है मुझे न ध्यान॥'
अच्छा मेरे मित्र आप हो, क्या है मुझ से काम भला?
बिना काम के मिलने से तो, अपने घर आराम भला॥
नाम बताया, पत्र दिखाया, की बातें कुछ बचपन की।
नृप ने अब पहचान लिया है, विकसी कलियां तन-मन की॥

▭ मैं भूला या तू ?

नृप बोला—'इतने दिन से तू, मिलने को आया है मित्र !
मैं भूला या तू भूला यह, प्रश्न सामने रखा विचित्र ॥
पत्र न होता यदि यह प्रियवर! मैं सकता पहचान नहीं।
बहुत पुरानी बातों का तो, रह सकता है ध्यान नहीं ॥
राज्य एक दिन का लेने को, आया है तू मेरे पास ?
इच्छा पूर्ण करूंगा तेरी, रखना यह मन में विश्वास ॥
मेरे ही है हस्ताक्षर ये, करता हूं मैं यह स्वीकार।
राज्य एक दिन का मैं दूगा, नहीं करूगा मै इन्कार ॥
जब भी चाहो एक दिवस-हित, मुकुट शीश पर धर लेना।
मुझको, मेरे अन्तःपुर को, छोड़ हकूमत कर लेना ॥

▭ कल ही सही

वणिकपुत्र ने कहा—'बहुत ही, हर्ष हुआ है आज मुझे।
देना है जब कल ही दे दो, तख्त ताज यह राज मुझे ॥
आठ पहर तक मैं भी खुद के, सर पर ताज टिकालूगा।
छिपे हुए अरमान हृदय के, मेरे मित्र ! निकालूगा ॥

८ घोषणा का प्रभाव

हुई घोषणा अगले दिन के, राजा हैं ये बणिक कुमार।
आज्ञा इनकी पालें सब जन, करें प्रकट सब स्नेहाचार॥
चिंतित हुए प्रजाजन सुनकर, यह क्या होने वाला है!
ऐसा काम आज तक हमने, सुना न देखा-भाला है॥
राजनीति के विज्ञ नृपति ने, क्या आदेश निकाला है!
राजकीय व्यवहारों में तो, यह व्यवहार निराला है॥
होता ज्ञात अमात्य-बुद्धि पर, लगा हुआ ही ताला है।
उसने भी कर्तव्य सचिव का, क्यों न आज सम्भाला है।
भूल-भरा यह कदम कभी भी, नहीं उठाने देना था।
एक दिवस के लिये किसी को, नृप न बनाने देना था॥
राज्य कर गए श्री रघुपति या, 'चण्द्रगुप्त' जो जैनी भूप।
समझ न सकते कभी सभी जन, राजनीति का सत्य स्वरूप॥
व्यापारी वनिये का बेटा, राजनीति क्या पहचाने।
नाम-दाम-आराम-भक्त यह, तख्त ताज को क्या जाने॥
इस आज्ञा का अच्छा फल तो, नहीं निकलने पायेगा।
सरल हृदय का नृपति अन्त में, निश्चित ही पछतायेगा॥
मन ही मन यों जनता प्यारी, भारी चिन्तित सारी है।
बात किसी ने कोई मुख से, लेकिन नहीं उचारी है॥

था विश्वास बड़ा राजा पर, नहीं प्रेम भी था कुछ कम।
सभी मानते थे राजा को, अपने पूज्य पिता के सम ॥
राजा को भी जनता सारी, प्राणाधिक हो प्यारी थी।
अतः सभी ने निज राजा पर, प्रेम-सम्पदा वारी थी ॥

□ सचिव का चिन्तन

सचिव सोचता—'एक दिवस में, कुछ का कुछ हो सकता है।
बणिकपुत्र यह राजा बनकर, कांटे भी बो सकता है ॥
शूल हमारे पावों को यें, घायल सदा बनायेंगे।
बन्धु बान्धवों सहित नृपति भी, जीवन भर पछतायेंगे ॥
राज्य नहीं हो जाये चौपट, ऐसा यत्न बनाऊंगा।
यदि परीक्षा-समय आगया करके कुछ दिखलाऊंगा ॥

सचिव सयाना सोच-समझ कर, सावधान हो जाता है।
बणिकपुत्र के आते ही वह, भृत्यों को फ़रमाता है ॥

○ प्रतने आदेश

स्वागत करो हृदय से अपने- प्यारे भूप पधारे हैं।
बोलो सारे जय-जयकारे, नृप यह नये हमारे हैं ॥

सर्व प्रथम अपने नरपति के, तन पर तेल लगाओ तुम।
सलिल सुगन्धित लेकर पीछे, प्रेम सहित नहलाओ तुम॥

खाना बने बहुत ही उत्तम, कसर न रखना राई भी।
हो नमकीन नवीन साथ में, रबड़ी दूध मलाई भी॥
वर अचार चटनियां चाटें, चटपट सब तैयार करो।
लौंग-इलाची पान-सुपारी, हाजर विविध प्रकार करो॥

भोजन-गृह को भली भान्ति से, अभी सजाओ जाकरके।
कमी सजावट में मत रखना, सुनलो कान लगा करके॥
इत्र गुलाब केवड़ा आदिक, पर्दों पर छिड़कोगे तुम।
अमरपुरी की शोभा को इस, शोभा से झिड़कोगे तुम॥
सभी पदार्थों में से देखो, आये आज निराला रस।
याद रखेगा जीवन भर तक, खाना खाने वाला बस॥
बुद्धि मिली है तुम्हें तीव्रतम, नव नव साज सजाने को।
इसीलिये क्या आवश्यकता, कहने की—समझाने की॥

भोजन के पश्चात करेंगे, नरवर हलका-सा विश्राम।
नाच गान के आयोजन सब, होवें सुन्दतम अभिराम॥

□ भान भूल गया

सिंहासन पर बैठ बणिक-सुत, फूला नही समाता है।
सोच रहा है बड़े भाग्य से, नृप-जीवन मिल पाता है।।
भोगूंगा मै बड़े ठाठ से, नृप-जीवन के सुख सारे।
स्वर्णिम अवसर मिल जाने पर, भला चतुर नर क्यो हारे?

लगा पूछने सचिव विनय से, जो आज्ञा हो बतलाए।
जो इच्छा हो देव! आपको, साज वही हम सजवाएं।।

बोला नृप—सब रचो कार्यक्रम, इसीलिये तो राज मिला।
सत्य स्नेह से मित्र नृपति का, मेरे को यह ताज मिला।।

राग-रग में भूल गया मन, जो कुछ करने आया था।
बणिकपुत्र को मुख्य सचिव ने, भली भान्ति भरमाया था।।
जैसे-तैसे मन्त्री जी को, सारा समय बिताना था।
समझ नही पाया वह बनिया, बना आज दीवाना था।।
बनकर राजा राजभवन में, मन भरकर आनन्द किया।
बीता दिन का पहर तीसरा, राग-रग तब बन्द किया।।

एक और आफ़त

राजसभा में मन्त्री उनको, आदर से तब लाता है।
ख़ास-ख़ास लोगों से उनका, परिचय अब करवाता है॥
कितना धन है राज कोष में? नये भूमिपति बोले हैं।
सुनकर सारे सभासदों के, चित्त एकदम डोले हैं॥
समझदार मन्त्री ने ऐसी, युक्ति सोच निकाली है।
बोला क्षमा करें हे राजन्! कोष सर्वथा खाली है॥

कहा सचिव से नये नृपति ने, कर कुछ और बढ़ाओ जी!
नये करों की नई घोषणा, अभी-अभी करवाओ जी!
बड़े-बड़े जो सेठ नगर के, कहदो उनसे आने को।
लेकर उनसे रक़म व्याज पर, भरदो आज ख़ज़ाने को॥

मन्त्री बोला—'किन्तु रकम वह, किसके नाम लिखाऊं जी?
जैसे भी हो आज्ञा राजन्, वैसा कदम उठाऊं जी!

कहा भूप ने—'सारी चिन्ता, दिल से दूर हटाओ तुम।
रक़म बड़ी हो चाहे छोटी, मेरे नाम लिखाओ तुम॥

सचिव न समय लगाता है अब, आज्ञा-पालन करता है।
सेठों से ले रक़म व्याज पर, राज-ख़ज़ाना भरता है॥

○ रंगीनी शाम

सायंकाल हुआ तो फिर से, नाच-गान की सभा सजी।
बजी बांसुरी तबला ढोलक, वीणा और सितार बजी॥
नृत्य-सुन्दरी थिरक-थिरक कर, ऐसा नृत्य दिखाती थी।
पायल की झंकार हृदय को, घायल करती जाती थी॥
अर्धनिशा बीती है ऐसे, आधी बीती सोने मे।
निकला दिन तब बैठा जाकर, अपने घर के कोने मे॥
वही चुभे आ पग में कांटे, लगा जिन्हे था बोने में।
कुछ पाजाता यदि लग जाता, चित्तवृत्ति सजोने मे॥
राग-रग मे या खाने मे, रहता नही बिछौने में।
सारा समय लगाता अपना, राज-सम्पदा ढोने मे॥
नही बैठना पड़ता इसको, ऐसे रोने-धोने मे।
देर नही लग सकती थी फिर, सुखमय जीवन होने मे॥

○ वातावरण बिगड़ा

उधर देश मे कर बढ़ने की, बात फैल जब जाती है।
जोश-रोष मे भरकर जनता, खोटी-खरी सुनाती है॥

आया है यह कैसा राजा, अच्छा इसने राज किया।
चौपट कारोबार किया सब, अच्छा इसने ताज लिया॥
बढ़े अगर कर ऐसे सर पर, बस सकते फिर नहीं यहां।
जाकर वहीं बसेंगे सारे, शान्ति मिलेगी हमें जहां॥

लेकर एक जलूस द्वार पर, आकर सारे हुए खड़े।
तेरे द्वारा ही हम सारे, इतने पीड़ित हुए बड़े॥
कल के राजा! आओ बाहर, निपटो हम लोगों से अब।
हम से रक़म व्याज पर लो जो, बोलो वापिस दोगे कब?
अपना नाम लिखाकर तूने, हम लोगों को किया ख़राब।
सत्ता पर आया था क्या तू, घर से पीकर कहीं शराब?

नहीं बोलता, दरवाज़े भी, नहीं खोलता है घर के।
छिपकर भीतर पड़ा हुआ है, बेचारा मारे डर के॥
कैसे कर्ज़ चुकाए इतना, क्या दे उत्तर लोगों को।
चित्त अशान्त रो रहा केवल, प्राप्त हुए संयोगों को॥
उसी रात में घर तज करके, लेकरके परिवार सकल।
जान बचाकर जैसे-तैसे, पुर से बाहर गया निकल॥
गांव अजाने में जा करके, जीवन शेष किया अपना।
ऐसे व्यक्ति देख क्या सकते, सुख से जीवन का सपना?

○ पुरानी स्मृति

उधर दूसरे बणिकपुत्र को, पत्र मित्र का आया याद।
उसने राज्य लिया तो मैं फिर, क्यों न राज्य का लूं आल्हाद ॥
भूल गया मैं इतने दिन तक, कितनी भारी की है भूल।
भूल सुधारी जा लकती है, आये समय अगर अनुकूल ॥
मुझे नहीं ता स्वयं लिखा यह, पहचानेंगे निश्चित पत्र।
है विश्वास मुझे वे देंगे, निश्चित अपना राज्य सछत्र ॥
एक दिवस का राज्य प्राप्त कर, सुखी करूं मैं जन-जीवन।
ऋतु बसन्त किया करतो है, यथा प्रफुल्लित वन-जीवन ॥
स्वच्छ वेश धारण कर, करता- इच्छा नृप से मिलने की।
तैयारी करता है मानो, कमल तुल्य वह खिलने की ॥

○ राजभवन में

आकर बोला द्वारपाल से, नृप से मिलने जाना है।
मैत्री का सम्बन्ध हमारा, उनसे बहुत पुराना है ॥

द्वारपाल ने कहा नृपति से, मिलने को आया है मित्र।
जैसी प्रभु की आज्ञा होगी, होगा वैसा कार्य पवित्र ॥

बोला नृपति उसे—ले आओ, महलों में करके सम्मान।
आदर उसे अवश्य दीजिए, बन कर आया जो मेहमान ॥
स-सम्मान बिठलाया नृप ने, बोलो मेरे लायक कार्य।
जो होते व्यवहार्य कार्य ही, बतलाया करते वे आर्य ॥

"मैं हूँ मित्र आपका राजन्! याद करो कुछ पहचानो।
अपने बचपन का ही साथी, सहपाठी मुझको जानो ॥"

सुन करके राजा ने अपना, बहुत लगाया गहरा ध्यान।
नहीं नाम से, नहीं शक्ल से, सका मित्र को वह पहचान ॥

☐ पत्र देखकर

वणिकपुत्र ने पत्र दिखाया, बोला यह तो है पहचान?
लिखा हुआ यह स्वयं आपका, स्वयं इसे पढ़लें श्रीमान् ॥

पत्र देखकर, हर्षित होकर, नरवर बोला—प्यारे मित्र!
बहुत समय से मिलने आया, कैसा है तू मित्र विचित्र !!
तुझे देखने को मन मेरा, बहुत वार था ललचाया।
बता मुझे तू हाल-चाल अब; देरी से कैसे आया?

धन्य!समय है मित्र! आजका, बिछड़ा स्नेही मुझे मिला।
बड़ा कठोर है हृदय तेरा, क्यों न तुझे दूं आज गिला ॥

□ एक दिन का राज्य

राज्य एक दिन का लेना है? "हां जी हां" बनिया बोला।
भोला हो फिर भी बनिये का, बेटा कब होता भोला ॥
"कब लेना है?" "कल ही दे दो, देरी का कुछ काम नहीं।
शुभ कामों में देरी का शुभ, होता है परिणाम नहीं ॥"

स्नेह सहित सिर ताज मित्र के, तभी टिकाया राजा ने।
करी घोषणा—एक दिवस का, भूप बनाया राजा ने ॥
साठ घड़ी तक सभासदों! हम, राज-मित्र कहलायेंगे।
नये नृपति यह नीति-रीति से, कल तक राज चलायेंगे ॥
इनकी आज्ञा मान्य रहेगी, यह ही भूप तुम्हारे हैं।
आठ पहर तक सिंहासन से, अब हम होते न्यारे हैं ॥

आप गए उठ अन्तःपुर में, देरी नहीं लगाई है।
प्रेम भरी बातों में होती, बिल्कुल नहीं ठगाई है ॥

▭ सचिव की चिन्ता

सचिव सोचता मन से–'कितने, ऐसे राजा आयेंगे ?
एक-एक दिन राज-ताज ले, क्या कुछ ये कर जायेंगे !!
राज्य-व्यवस्था ऐसे कब तक, ठीक-ठीक टिक पायेगी ?
ऐसी प्रथा राज्य-शासन को, धक्का बड़ा लगायेगी ॥

▭ पहले वाली चाल

मन से सारी सोच व्यवस्था, लगा उसे टरकाने को।
बोला—'तेल लगाकर पहले, चलिये आप नहाने को ॥
स्वच्छ सुवासित जल के द्वारा, सुस्ती दूर भगाओ जी !
राज-काज के योग्य स्वयं को, पहले आप बनाओ जी !
नृप लायक वस्त्राभूषण से, सज्जित करिये अपना तन।
तत्पश्चात आपका होगा, राजकीय उत्तम भोजन ॥
नाच-गान की एक सभा भी, तत्क्षण फिर सजवायेंगे।
झूम उठेंगे आप देखकर, फूले नहीं समायेंगे ॥
गूंज उठेगी मधुर बांसुरी, ढोलक और दुतारा भी।
इससे पहले कभी आपने, होगा नहीं निहारा भी ॥
स्वीकृत कर आयोजन उपकृत, करिये हम सब भृत्यों को।
भली भान्ति निपटा देंगें हम, इन सारे ही कृत्यों को ॥

□ बड़ा चतुर था

बुद्धिमान था बणिक-पुत्र वह, माना हुआ जमानें का।
करता काम भला फिर कैसे, फंदे में फंस जाने का ।।
बोला—'तैल लगाकर घर से, अभी नहाकर आया हूं।
खाना नहीं चाहिये मुझको, मैं खा-पीकर आया हूँ ।।
नाच-गान में समय गंवाना, मेरे मन को नहीं पसन्द।
कार्यक्रमों के सूचिपत्र को, मंजूषा में करिए बन्द ।।
मुझे कार्य जो कुछ करना है, करो वही सब तज उत्पात।
देना उत्तर सही-सही सब, जो भी पूछी जाये बात ।।

□ खजाना खोलो

चलो, खज़ाना खोलो पहले, मुझसे नहीं छिपा लेना।
याद रखो छलिया-कपटी को, दण्ड मुझे आता देना ।।

मन्त्रीश्वर डरता क्या करता, चली चाल से मात हुआ।
हो लाचार मार कर मन को, नये नृपति के साथ हुआ ।।
चालू कोष देख वह बोला, खोलो बड़े कोष के द्वार।
"हां-हां" अभी खोलता हूं जी! मैं कर सकता क्यों इन्कार ।।

स्वर्णराशि थी बड़ी वहां पर, हीरे पन्ने रत्न अपार।
मरकत मणि वैडूर्य लाल हैं, था समृद्ध वह धन-भण्डार॥
पट्टराज्ञियों राजाओं के, आभूषण हैं घड़े पड़े।
घड़ेघड़ाये रखते इससे, आया अवसर नहीं अड़े॥
राजकुमारों कन्याओं के, लिये अलग हैं ये गहने।
जिसकी जैसी इच्छा हो जब, इन्हें निकाले वा पहने॥

समय-समय पर देने लायक, वस्त्राभूषण अलग पड़े।
लेने वाले बोलो कब तक, भला द्वार पर रहें खड़े॥
दास-दासियों के हित कपड़े, गहनों का भण्डार पड़ा।
सेवा करने वालों का भी, होता है सम्मान बड़ा॥
जन-कल्याण कोष में भी यह, पड़ा हुआ धन अपरमार।
दुखी प्रजा जन को मिलते हैं, सदा इसी से ही उपहार॥

स्वर्ण रजत की पड़ी शिलायें, कहतीं राज्य रहो अविचल।
आवश्यकता पड़ने पर ही, हम सकती हैं बहिर्निकल॥
जितना अर्थ निकाला जाता, डाला जाता उतना फिर।
अवसर मिलता नहीं राज्य को, ऋण लेने का अपने सिर॥
अलग-अलग पोशाकों से ही, भरा खज़ाना दिखलाया।
बड़ा संग्रहालय शस्त्रों का, विनय सहित है बतलाया॥

कुल-परम्परा से ही चलते, ऐसे भरे ख़ज़ाने ये।
कब तक चलते जायेंगे ये, हम कैसे पहचानें ये॥
नहीं कमी है किसी बात की, पूर्ण सभी विध है भण्डार।
इसे सुरक्षित रखते हैं नृप, बन कर इसके पहरेदार॥

□ और हैं ?

"इतना ही है या कुछ इससे, अलग ख़जाना पड़ा कहीं ?
सच बतलादो, सचिव सयाने! अगर भूमि में गड़ा कहीं॥"

"नहीं-नहीं, अब और नहीं है, इतना ही मुझको ज्ञात।
खोल-खोल दिखलाया सारा, तात! समझिए सच्ची बात॥"

"खुले रखो ये सभी ख़ज़ाने, चलो सभा में आओ जी!
सेठों साहूकारों को बस, फ़ौरन अभी बुलाओ जी!"

आये राजसभा में सारे, बुलवाये हैं साहूकार।
नृप ने 'पूछा—कहो आपका, कैसा चलता है व्यापार ?'
रोते-रोते बोले सारे, ठंडा ही है कारोबार।
बिना बड़ी पूंजी के राजन्! कैसे हो सकता व्यापार॥

"पूंजी की क्या कमी आपको, आप करो व्यापार बड़ा।
व्यापारों के बिना राष्ट्र पर, आपड़ता है भार बड़ा।।
ब्यांज दीजिये रक़म लीजिये, रखिये नीति धर्म नित शुद्ध।
शुद्ध हृदय होने से हमको, कभी न लडना पड़ता युद्ध।।
सह-अस्तित्व-नीति में रखते, जब हम सारे ही विश्वास।
मैत्रि-भावना के द्वारा ही, साधा जाता राष्ट्र-विकास।।"

□ व्यापारी बोले

दश दो मुझे, तीस दो मुझको, मुझको दो पच्चास हज़ार।
मुझे लाख, दो लाख चाहिये, मेरा है विस्तृत व्यापार।।
अल्प ब्याज पर बड़ी रक़म पा, पाते हैं व्यापारी हर्ष।
धन्य! धन्य! हो ऐसे राजा! सुख से जिओ सहस्रों वर्ष।।
मेरे नाम जमा कर पूंजी, जाओ सब आराम करो।
कहा सचिव से नये नृपति ने, एक और अब कांम करो।।

○ किसानों की सभा

सभी किसानों को बुलवाओ, वे ही हैं आधार बड़े।
बिना अन्न के प्रजा-राज्य का, सौदा कैसे पार पड़े।।

आये कृषक नृपति ने पूछा, 'बोलो खुश तो हो सारे ?'
सारे बोले हम मरते हैं, दुगुने कृषि-कर के मारे ॥
ऐसा राजा एक बना था, उसने हमको मार दिया ।
नहीं उठा सकते हैं इतना, सिर पर कर का भार दिया ॥

नृप बोला—'कर माफ़ आज से, जो कि लगाया गया नया ।
पहले कर था उससे आधा- देना, आतो मुझे दया ॥

"सुनकर सरस घोषणा ऐसी, खुश-खुश सारे हुए किसान ।
कहने लगे किसान—खेत में, उपजेगा अब दुगुना धान ॥
राजा की नीयत हो जैसी, वैसा ही होता है फल ।
बुढ़िया-बादशाह का किस्सा, देता 'चन्दन' नई अक़ल ॥
जियें हज़ारों साल, आप हो- दिल के दानी बड़े दयाल ।
किया हमें खुशहाल स्वयं फिर, होवोगे ही मालामाल ॥'

जाओ, जियो शान्ति से जीवन, वहन करो उत्तरदायित्व ।
सदा सेवकों से संरक्षित, होता है नृप का स्वामित्व ॥
नहीं प्रजाजन सुखी जहां पर, कैसे नृप हो वहां सुखी ।
सुखी प्रजा तो भूप सुखी है, दुखी प्रजा से भूप दुखी ॥

☐ एक आम सभा

दिन के दो ही बजे अभी तो, कैसे होगा दिवस समाप्त।
बड़े सचिव के मन में 'चन्दन', होतीं ऐसे चिन्ता व्याप्त॥
यह तो बनिया अजब-गज़ब का, नहीं पिया है अब तक जल।
जन-कल्याण-भावना द्वारा, होता शासन पूर्ण सफल॥
बोला सचिव—'कीजिये भोजन, और पीजिये शीतल जल।
भोजन से जल से ही हमको, मिलता है जीने का बल॥

"सुनो सचिव! खाने-पीने की, क्यों चिन्ता करते हैं आप।
मुझे आज सुख से धोने दे, जन-जीवन का सारा पाप॥
आम सभा का हो आयोजन, संध्या होने से पहले।
वह क्या राजा? जो आज्ञा का, उल्लंघन सुख से सहले॥

☐ नगर सेठ का पद

सभा बुलाई गई शीघ्र ही, हुए उपस्थित सारे जन।
सभा बीच में गया लगाया, नये नृपति का सिंहासन॥
बोला—'प्यारे प्रजाजनों! तुम, सुख से जीते हो जीवन?
तुम्हीं राष्ट्र हो अतः राष्ट्र के, हित में ही होता चिन्तन?

बोले सारे—बड़े सुखी हैं, किया आपने जब कर माफ़।
जन-जन के मन का इससे ही, मैल होगया सारा साफ़ ॥
अपने सुत को किया खड़ा अब, नृप ने परिचय करवाया।
"नगरसेठ का पद इसको दें", सब ने हां में हां गाया ॥
इसकी सात पीढ़ियां सारी, नगरसेठ कहलायेंगी।
सत्य-व्यवस्था देता हूं मैं, शाश्वत चलती जायेंगी ॥
ताम्रपत्र पर लेख खुदा कर, छाप लगादो शासन की।
'चन्दन' कैसी महिमा होती, नरपति के सिंहासन की ॥
"इतने हाथी इतने घोड़े, ये इतने सेवक वक्सीस।
ये गहने लो, ये कपड़े लो, पद के लायक बनो रईस ॥
नगर सेठ की माता जी को, पहनाया हीरों का हार।
हार और श्रृंगारों से भी, बढ़कर होता है सत्कार ॥
नगरसेठ को गजहौदे पर, बिठला कर घर पहुँचाते।
झूल पकड़ कर चलते पैदल, साथ नृपति भी हैं जाते ॥
गाये जाते गीत, बजाये- जाते सारे वाद्य मधुर।
नगरसेठ के दरवाजे तक, पहुंचाने को पहुंचा पुर ॥
जैसे मैंने पहुँचाया है, वैसे सब पहुंचायेंगे।
नगरसेठ की इज्जत ऐसे, भावी नृपति बढ़ायेंगे ॥"
कर यह काम आगये वापिस, अब तक दिन के चार बजे।
खाया नहीं नहीं पीया है; नहीं साज-श्रृंगार सजे ॥

▢ कर्मचारी गण

"कर्मचारियों को बुलवाओ, होगी उनकी एक सभा।
यही राष्ट्र के कर्णधार है, यही राष्ट्र की दिव्य विभा॥"
एक सिपाही से लेकरके, मुख्य सचिव तक आये हैं।
बड़े प्रेम से नये नृपति ने, शब्द सरल फरमाये हैं॥
"सभी सुखी हो बोलो सारे? सकुचाने का काम नहीं।
मनोभावना प्रकट कीजिये, पूछ रहा मैं नाम नहीं॥"
"काम अधिक वेतन कम पाते, और नहीं है कोई कष्ट।
स्पष्ट-स्पष्ट बतलाने से ही, हो सकता है कष्ट विनष्ट॥"
"जो जितना वेतन पाता है, उससे दुगुना है कल से।
वफ़ादार बन आप राष्ट्र का, काम करो दुगुने बल से॥"
कर्मचारियों की करतल ध्वनि, सुनने देती शब्द नहीं।
अभी मिली जो हैं सुविधाएं, मिल सकती वे कभी नहीं॥
जय हो-जय हो नये नृपति की, जियो हजारों-लाखों वर्ष।
जैसा आज यहां छाया है, वैसा कभी न छाया हर्ष॥

▢ सचिव की सराहना

भरी सभा में मुख्य सचिव की, बड़ी प्रशंसा करते हैं।
"बड़े कुशल हैं राजनीति में, अपयश से नित डरते हैं॥

बिना सचिव के राज्य न टिकता, बिना भित्ति के यथा भवन।
अगर राष्ट्र-जीवन हैं हम सब, सचिव हमारे प्राण-पवन॥
वेतन बढ़ा, बढ़ा यश दुगुना, खुश-खुश सचिव हुआ मन से।
हर्षित कृषक हुआ करता है, ज्यों दुगुने उत्पादन से॥

□ अधिकार लो

"सुखी कर्मचारी कर सारे, सुखी किये हैं व्यापारी।
कृषक सुखी कर आप सुखी बन, सुखी किये हैं परिवारी॥
सचिव महोदय से नृप बोले, लावो अब लें शीतल जल।
घर जाकर खायेंगे खाना, यही भावना हुई प्रबल॥
रात-रात बाकी है उसका, आप लीजिये यह अधिकार।
नींद नहीं आती है सुख से, सर पर चढ़ा रहे जो भार॥"
बोला सचिव—'अभी क्यों जाते, महलों में आराम करें।
समय अभी बाकी है आधा, अभी और कुछ काम करें॥
काम किया है सारे ही दिन, यहीं रात भर लें विश्राम।
वाक्य नहीं पूरा बन सकता, अगर न दें जन पूर्ण विराम॥

नृप ने कहा—'अभी जाऊंगा- तो जाओगे पहुंचाने।
सुबह अकेले जाना होगा, अतः अभी ही दें जाने॥
सभी कर्मचारीगण आये, आयें सचिव महोदय भी।
नये नृपति घर पहुंच गये हैं, बोली जाती जय-जय भी॥

रात-रात का राज्य सचिव ने, सुख पूर्वक सम्भाला है।
बनिये के बेटे का 'चन्दन', देखा ! काम निराला है ॥

□ उपनय

सुनो एक ही दिन के दोनों, बनकर भूप सिधाए हैं।
हुआ एक का अपयश, इक के- यश के बादल छाए हैं ॥
बना दुखी इक उसी राज से, एक सुखी बन जाता है।
नर-जीवन भी एक दिवस का, वैसे राज कहाता है ॥
उसे प्राप्त कर जा सकता है, अगला जन्म सुधारा भी।
उसे प्राप्त कर जा सकता है, अगला जन्म बिगाड़ा भी ॥
देंगे ध्यान ज़रा जो इस पर, बुद्धिमान कहलायेंगे।
सफल बनाकर अपना जीवन, शान्ति सौख्य अपनायेंगे ॥

□ रचना काल

दोहज़ार उन्नीस विक्रमी, जेठ महीना आया है।
'रायकोट' में यह रचना कर, 'चन्दन मुनि' हर्षाया है ॥
रायकोट की जनता अपना, धार्मिक प्रेम दिखाती है।
सन्तों की वाणी सुनने को, दौड़ी-दौड़ी आती है ॥
'चन्दन' सन्तों की वाणी से, जो कोई भी लेगा सार।
वही बड़ी आसानी से बस, पहुँच जायगा जग के पार ॥

० ८ ०

राजा शूरपाल

o

दयाधर्म पर शीलधर्म पर।
"शूरपाल" का सरस चरित्र॥
"चन्दन" श्रवण पठन अनुशीलन।
द्वारा जीवन करें पवित्र॥

o

० ८ ० राजा शूरपाल

□ मङ्गलाचरण

दान, दान-अनुमोदना, फल देती अनिवार्य ।
महिमा दान-सुपात्र की, रही सतत स्वीकार्य ॥
दान दिया जाता तभी, मिल जाए जो पात्र[1] ।
दिया दान क्या काम का, है अपात्र यदि पात्र ॥
वस्तु बिना दाता कभी, कर पाता क्या दान ?
देने लायक वस्तु का, हमें चाहिये ज्ञान ॥
शुद्ध भावना से दिया, फल दिखलाता दान ।
इन तीनों का दान में, "चन्दन" है सम स्थान ॥

---

१ लेने वाला ।

देने की दी प्रेरणा, दिया उसी ने दान।
दिलवाना भी दान का, माना दान समान॥
की जिसने अनुमोदना, दिया उसीने दान।
अनुमोदन भी दान का, माना दान समान॥
फल देते रहते सदा, त्रिकरण और त्रियोग।
निष्फल कोई फल नहीं, कहते ज्ञानी लोग॥
अपने-अपने भाग का, लेते तीनों भाग।
इसीलिये 'चन्दन' करो, सदा दान-अनुराग॥

"शूरपाल" और "शीलवती"

"शूरपाल" नृप ने दिया, पूर्व जन्म में दान।
फल स्वरूप उसने यहां, पाया राज्य महान॥
अनुमोदन का फल मिला, "शीलवती" को साथ।
"चन्दन" इस संगीत में, इन दोनों की बात॥

सब कुछ मिला

मिली शील की भावना, मिले विचार महान।
सब कुछ मिल जाता भला, फल देता जब दान॥

आर्य-क्षेत्र कुल जाति का, गौरव मिला महान ।
सब कुछ मिल जाता भला, फल देता जब दान ॥
मिले अंग सम्पूर्ण सब, मिला श्रेष्ठ संस्थान ।
सब कुछ मिल जाता भला, फल देता जब दान ॥

रूप वर्ण लावण्य का, मानो मिला निधान ।
सब कुछ मिल जाता भला, फल देता जब दान ॥
स्नेह और वात्सल्य से, मिला पूर्णतम स्थान ।
सब कुछ मिल जाता भला, फल देता जब दान ॥
पतिव्रता पत्नी मिली, मिला पूर्ण सम्मान ।
सब कुछ मिल जाता भला, फल देता जब दान ॥
मिलो कलाएं सकल हैं, मिलना ही था ज्ञान ।
सब कुछ मिल जाता भला, फल देता जब दान ॥
मिला न अवगुण एक भी, मिली सुगुण पहचान ।
सब कुछ मिल जाता भला, फल देता जब दान ॥

मिले देव, गुरुदेव भी, करने को कल्याण ।
सब कुछ मिल जाता भला, फल देता जब दान ॥
मिला धर्म भी श्रेष्ठतम, "चन्दन" दया-प्रधान ।
सब कुछ मिल जाता भला, फल देता जब दान ॥

जितने उत्तम फल यहां, सब दे देता दान।
इसीलिये ही दान को, कहा पुण्य बलवान ।।

संगीत देगा

दान-धर्म की प्रेरणा, देगा यह संगीत।
समझायेगा साथ में, स्वाभिमान की रीत ।।
वर्जनीय माना गया, पर-पुरुषों का स्पर्श।
पतिव्रताओं के लिये, देगा यह आदर्श ।।
पता चलेगा पठन से, कैसा है संगीत।
सुधी रखा करते नहीं, अभिप्राय विपरीत ।।

"शूरपाल" की जन्म-भूमि

"भरतक्षेत्र"को पुण्य भूमि पर, "कंचनपुर" था एक नगर।
इसी नगर पर से निकली थी, अब्धि-सुता की महर लहर ।।
ज्यों-ज्यों नगर पुराना होता, त्यों-त्यों वह होता धनवान।
योगदान देते हैं उस में, अपने युग के व्यक्ति प्रधान ।।
ज्ञान किसी का कला किसी की, अर्थ किसी का मिल जाता।
श्रम से और समय से सुन्दर, रूप नगर का खिल जाता ।।

सभी वीथियां सरल बनी थीं, नहीं मोड़ थे नहीं घुमाव।
सरल वृत्तियां यथा चित्त की, उठने देतीं नहीं कुभाव।।
जमे हुए थे सभी राजपथ, अथ से इति तक एक समान।
पथ की टूट-फूट से होता, नगर-वासियों का अपमान।।

आवश्यकता नहीं प्रश्न की, पथ पर नाम लिखा जाता।
जिधर आपको जाना हो वह, पढ़कर स्वयं चला जाता।।
चलते समय देख कर चलिये, रुको देखना जो आकाश।
गिर जाने पर पथिक जनों से, पाते पथिक सदा उपहास।।
टकराओगे अगर किसी से, तो अन्धे कहलाओगे।
सभ्य नागरिक बनने को क्या, अन्य कहीं पर जाओगे?
नगर दिया करता पथिकों को, चलने का सद्ज्ञान-विवेक।
क्योंकि नगर में आते रहते, नित्य पथिक जन अन्य अनेक।।
नगरों में कुछ नहीं निपजता, रह सकते ये नहीं खड़े।
प्रतिनिधित्व करते गांवों को- लक्ष्मी का ये नगर बड़े।।

उद्यान और श्मशान

"कंचनपुर" के बहिर्भाग में, था उद्यान मनोहारी।
पुर से उपवन, उपवन से पुर, यश पाने के अधिकारी।।

मानव की प्रतिभा से—श्रम से, उपवन होते हैं तैयार।
बिना चतुर माली के उसको, रखपाता है कौन संवार ?

□ कुसुम बनो

बड़े प्रेम से खिले कुसुम हैं, सीमा में ही खड़े हुए।
नहीं दृष्टिगत हो सकते वे, मुरझा करके पड़े हुए॥
मुरझाने की नहीं जरूरत, हंसते-हंसते आते काम।
जिसे काम आना हो उसके, लिये सुबह जैसी है शाम॥
जीते जी सौरभ लुटवाते, जन्म-भूमि के चरणों में।
हम जैसा ही जीवन जीओ, लिखवाते अवतरणों में॥
नीरस ही परवश बनता है, सरस सदा होता स्वाधीन।
इस परिपाटी ने पुष्पों को, होने दिया नहीं प्राचीन॥

□ वृक्षों का हृदय

वृक्ष-पंक्तियां कहतीं—'आओ, फल लेने के लिये यहां।
परवश हैं हम फल देने को, आ सकती हैं नहीं वहां॥
हम क्या दें ? लें आप, आपके- लिये हमारे फल पकते।
थक जाओगे लेने वालो ! देने वाले कब थकते॥

लता—मण्डपों की छाया में, लेटो-बैठो लो विश्राम।
इच्छा जभी आपकी हो तब, लेना घर जाने का नाम॥

□ अस्फुट स्वर

उपवन का कण-कण कहता था, जन-जन से यह सत्य महान।
अस्फुट स्वर सुन पाते कोई, सन्त, दार्शनिक या विद्वान॥
तन हलका मन हलका होगा, चिन्तन जब होगा हलका।
भार चित्त पर पड़ जाता है, चिन्तन उठते ही कल का॥
आ सकती है कल आंधी भी, आ भी सकता है तूफ़ान।
उसके लिये आज ही हम क्यों, केन्द्रित करें हमारा ध्यान ?
भय आने पर निर्भयता से, खड़े सामने हो जाओ।
मर जाओ, पर मरजाने के, भय से कभी न घबराओ॥
जीएंगे हम हंस-हंस करके, हंस-हंस कर मर जाना है।
सत्पुरुषों ने यही किया था, हमें यही कर जाना है॥

□ "कंचनपुर" की नदी

"कंचनपुर" के बाहर बहती, सरिता जल से भरी हुई।
मानो शीघ्र-शीघ्र चलती हो, अबला कोई डरी हुई॥

कोई न्हाए, कोई धोए, कोई पीए शीतल जल।
फिर भी बन्द नहीं करती है, वह अपनी मीठी कल-कल ॥
मैं मेरे पथ पर ही वहती, कहती कुछ भी नहीं कभी।
कोई तुम्हें नहीं छेड़ेगा, भली बनो जो आप सभी।
मुझे नहीं, मेरे तट दोनों, मत होने देना अपवित्र।
मेरी पावनता में होता, प्रतिविम्बित जनता का चित्र ॥

▭ "कंचनपुर" के तालाव

जन हिताय: सुरक्षित रहता, तालाबों में जल-भण्डार।
जल के बिना पलक में सारे, रुक जाते जीवन-व्यवहार ॥
वर्षा पर आधारित रहते, छोटे-बड़े सभी सरवर।
यथा सांस पर जीवन जीते, नर, नरवर, सुरवर, किन्नर ॥

▭ 'कंचनपुर' के कोट और द्वार

चारों ओर बनी दीवारें, रखतीं ध्यान सुरक्षा का।
घर का ध्यान सदा ही रखना, धर्म न नारी दक्षा का ?
दरवाजों पर प्रतिहारों की, रहती टोली की टोली।
दरवाजों से छिपी न रहती, साहूकारों की बोली ॥

खुलने और बन्द होने का, दरवाज़ों को रहता ध्यान।
सदा असावधान का होता, यदि होता है तो नुक़सान ॥
खोले वही जिसे होता है, हमें खोलने का अधिकार।
अधिकारी की अनुपस्थिति में, कौन खोल सकता पुर-द्वार?

□ "कंचनपुर" के राजा-रानी

नृपति "जितारि" किया करता था, "कंचनपुर" का अधिशासन।
शासनपति का आसन ही तो, गिना न्याय का सिंहासन ॥
नहो क्रूर हो किन्तु शूर हो, तेजस्वी हो, हो न्यायी।
न्यायालय क्या सम्भालेगा, जो भूपति, अतिशय-शायी ॥
आलोचना न करता कोई, सु-लोचना ऐसी रानी।
राजा-रानी दोनों प्रानी, थे धर्मी, प्रेमी, ज्ञानी ॥
मन मिलने का अवसर देती, समानता नारी-नर की।
निभने और निभाने की है, शपथें वे उच्चस्तर की ॥

□ "कंचनपुर" के व्यापारी

"कंचनपुर" के व्यापारी थे, नीति-धर्म में आस्थावान।
अनुचित लाभ उठाने वाले, माने जाते बेईमान ॥

अन्यायोपार्जित पैसा ही, रोग, अशान्ति, कलह लाता।
दुरुपयोग ही होता उसका, भले किसी के घर जाता॥
उचित समय पर उचित मूल्य पर, उचित वस्तुएं दी जातीं।
नहीं पसन्द अगर आए तो, बदली जातीं लौ जातीं॥
ग्राहक का विश्वास न टूटे, उठे तुलाकर अपना माल।
पूर्णतया रखते व्यापारी, सभी ग्राहकों की सम्भाल॥

पैसे का लो, लो रुपये का, नहीं भाव में रखते फ़र्क।
की जाती है कब ग्राहक से, शास्त्री जैसी तर्क-वितर्क॥
एक समान रखा करते थे, लेने-देने वाले बाट।
पीने और नहाने का तो, होता सदा एक ही घाट॥
नहीं वस्तु का रंग बदलते, जो दिखलाते वह देते।
ऐसी है यह अभी देखलो, "चन्दन" पहले कह देते॥

ऐसा नहीं कहा था ऐसा, दिया आपने ध्यान नहीं।
हम क्या इस में घुसे हुए थे, हम कोई भगवान नहीं॥
बेचा हुआ माल हम वापिस, लेने को तैयार नहीं।
अच्छा-बुरा देखकर लेते, अब हम जिम्मेवार नहीं॥
पैसे नहीं मिलेंगे चाहे, रख जाओ यह थैला आप।
"कंचनपुर" के व्यापारी यों, किया नहीं करते इनसाफ़॥

▫ "कंचनपुर" का जन-जीवन

सप्त व्यसन ससेवी नर का, होता वहां नही निर्वाह।
व्यसनी जन से सदा दूर हो, रहने को रखते सब चाह ॥
व्यसनी नर के पास बैठने, और बोलने मे उत्पात।
व्यसनो को प्रोत्साहन देना- करता है जीवन का घात ॥
व्यसन नही बढ़ने का कारण, श्रम-सेवा पर था विश्वास।
श्रम-सेवा पर जीने वाला, कर पाता है आत्म-विकास ॥
नारी का सम्मान सुरक्षित, रखना था पुरुषों का धर्म।
नारी नर की जन्म दात्रि है, सभी जानते थे यह मर्म ॥
जड़े काट डाली कटुता को, पटुता ने पाया विस्तार।
जाना है सब को इस जग से, क्यो न प्रेममय हो व्यवहार?

▫ "कंचनपुर" का सर्वधर्म सद्भाव

क्या लाये? क्या ले जाओगे, रह जायेगा नाम भला।
"चन्दन" करो स्वेच्छया स्वीकृत, करना कोई काम भला ॥

देते अधिक महत्त्व न धन को, गुणियो का करते सम्मान।
इसीलिये धनवानों से भी, बहुत सुखी होते विद्वान ॥

संस्कृतियां फल-फूल रही थीं, सर्व-धर्म-समभाव लिये।
आक्षेपों के तीर चलाकर, नहीं किसी ने घाव किए !!
जैसे धर्म स्वतन्त्र आपका, अन्य धर्म भी पूर्ण स्वतन्त्र।
छींटाकशी करो मत कोई, सीखो समभावों का मन्त्र ॥
सुनो सभी को निरखो-परखो, श्रेष्ठ लगे वह लो स्वीकार।
वर्तमान ने यही व्यक्ति का, माना मानवीय अधिकार ॥

□ "कंचनपुर" की वर्ण-व्यवस्था

ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य,शूद्र सब, भद्रप्रकृति के रहते लोग।
भले लोग लेते-देते हैं, "चन्दन"आपस में सहयोग ॥
ब्राह्मण ज्ञान दिया करते थे, क्षत्रिय रक्षा करते थे।
करते थे व्यापार वैश्य जन, धर्म कर्म अनुसरते थे ॥
शूद्र किया करते सुश्रूषा, सम्मानित थे चारों वर्ण।
"चन्दन" वर्ण वर्णमाला के, माने जाते सभी सु-वर्ण ॥

काम अकार किया करता जो, कर सकता है नहीं हकार।
किन्तु वर्ण-माला में इनको, एक समान प्राप्त अधिकार ॥
छोटे-वड़े वनाती मात्रा, यद्यपि वर्ण नहीं असमान।
प्रतिभा की मात्रा से मानव, बन जाता लघु और महान ॥

मानवता के नाते चारों- वर्ण समान गिने जाते।
सहयोगी बन सदा परस्पर, थे समाज को विकसाते ॥[1]

□ "कंचनपुर" का शान्ति-उपाय

इतने पर भी कहीं नगर में, होता वातावरण अशान्त।
बुद्धिमान नर आगे आकर, शीघ्र बना देते थे शान्त ॥
लड़ने और झगड़ने से ही, हानि धर्म की हो जाती।
मिटती नहीं लड़ाई, मिटकर- बीज विषैले बो जाती ॥
बात-चीत के द्वारा सारा, समाधान वे करते थे।
प्रेम और सद्भाव रत्न वह, हृदय कोष में भरते थे ॥
भूल एक की या दोनों को, दोनों ही मिल करते माफ़।
इसीलिए जन-जन के मन थे, दर्पण से भी सुन्दर साफ़ ॥
ये बोलेंगे, वे बोलेंगे, बंट जाएंगे दल-दल में।
"चन्दन" सत्य सुना जाता क्या, दुनिया के कोलाहल में ?

मत बढ़ने दो उठी आग को, डालो लाकरके पानी।
वाणी बन्द करो दोनों ही, यों समझा देते ज्ञानी ॥

---

१ चारों ओर की व्यवस्था।

□ "कंचनपुर" का जीवन-स्तर

क्रोध अहं का, माया छल का, वल न लोभ का था चलता।
"कंचनपुर" के जीवन स्तर पर, देवलोक भी था जलता॥
कोई दानी कोई ज्ञानी, वड़ा स्वाभिमानी कोई।
कोई सज्जन, लेकिन दुर्जन- मिला नहीं प्रानी कोई॥

कोई लेखक, कोई वक्ता, कोई श्रोता स्वाध्यायी।
कोई स्वल्पाहारी साधक, कोई केवल पय-पायी॥
कोई योगासन आराधक, वाधक नहीं बना आश्रम।
इन्द्रिय जेता कोई नेता, देता अधिक ग्रहण कर कम॥

अतिभोगी को, अतिरोगी को, जीने का अधिकार नहीं।
इसीलिये तो यहां किसी को, रोग-भोग स्वीकार नहीं॥
दुश्चिन्तन वाले नर पर ही, रोग आक्रमण करते हैं।
नहीं रोग से, दुश्चिन्तन से- दुनिया वाले मरते हैं॥
जीवित कहलाते हैं केवल, मरे हुए जो हैं मन से।
मन से छोटे वन जाते हैं, चाहे वड़े वनें धन से॥
सात्त्विक जीवन जीने वाले, वीमारी क्यों पाएंगे।
संयम-मय जीवन के वन में, स्वास्थ्य-पुष्प खिल जाएंगे॥

□ महिपाल और खेती

इस "कंचनपुर" में रहता था, क्षत्रिय एक सुखी 'महिपाल।'
खेती-बाड़ी के धन्धे से, लेता अपना खर्च निकाल ॥
कहा किसी ने कृषि को मध्यम, लेकिन अब तो वह उत्तम।
छल-प्रपंच कृषि में कम होते, भले अधिक शारीरिक श्रम ॥
खेतों में ही चुगते पंछी, पथिकों को भी मिलते फल।
उन्हें उड़ाकर उन्हें रोक कर, दुर्बल पड़ जाता है बल ॥
वर्षा पर ही निर्भर रहता, पूरा वर्ष किसानों का।
वर्षा ऋतु में वर्षा करता, पूरा हर्ष किसानों का ॥
मोती के दानों से बढ़कर, शक्ति भरी इन दानों में।
दानों को उपजाने की मति, विकसित हुई किसानों में ॥

कृषकों का आधार भूमि है, दुनिया का आधार किसान।
बिना किसान अन्न क्या मिलता? बिना अन्न क्या बचते प्रान?

बैल; बैलगाड़ी होने से, हो सकती खेती-बाड़ी।
खेती-बाड़ी से ही चलती, सब के जीवन की गाड़ी ॥
अपने बल-बूते पर खेती करने वाला पाता फल।
अन्य भरोसे रहने वाला, हानि उठा लेता केवल ॥

जाओ-जाओ कहाने वला, मार खा गया खेतों में।
चलो-चलो कहने वाले ने, काम लिया संकेतों से ॥

□ "महिपाल" और पत्नी

पत्नी उसकी नाम "धारिणी", जिसका उत्तम शील स्वभाव।
शील स्वभाव विना इस मन पर, अस्थायी हैं अन्य प्रभाव ॥
पति पत्नी से, पत्नी पति से, पूर्णतया जव हों सन्तुष्ट।
सुख सम्पत्ति वहां से वोलो, जा सकती क्यों होकर रुष्ट ॥
रूठी पत्नी प्रियतम रूठा, वसा नहीं पाते संसार।
पति-पत्नी को मिला वरावर, यहां वैठने का अधिकार ॥

□ चार पुत्र

इसकी गोद नहीं थी सूनी, एक नहीं सुत जनमें चार।
सुत ही तो सम्भाला करते, वृद्धावस्था में सव भार ॥
पहला पुत्र नाम–"धरणीधर", पुत्र "कीर्त्तिधर" अपर भला।
"पृथ्वीपाल" तीसरा नन्दन, चौथे सुत की श्रेष्ठ कला ॥
"शूरपाल" था सव से छोटा, वहुत लाड़ला प्यारा लाल।
पूर्व जन्म के सज्जन सुत वन, "चन्दन" करते यहां निहाल ॥

□ घर ही पाठशाला

प्रारंभिक शिक्षण चारों ने, साधारण सा था पाया ।
व्यवहारिक शिक्षण से जीवन, संस्कारित बनता आया ।।
खेती का शिक्षण मिल जाता, जाते सदा खेत पर साथ ।
पूज्य पिता जी के कामों में, अपने पुत्र बंटाते हाथ ?
चलना और बोलना उठना, तथा बैठना सीख लिया ।
करने पर घर वाले कहदें, बेटे ! बिल्कुल ठीक किया ।।
मिलो-जुलो दुनिया वालों से, करना नहीं घमण्ड कभी ।
विनय बड़ों का करना सीखो, बनना मत उद्दण्ड कभी ।।
घर में पड़ी हुई चीजों को, नहीं उठाओ अपने आप ।
आज्ञा लेकर लेने से ही, सच्चाई की पड़ती छाप ।।
छोटे-बड़े सभी भाई हो, रहो प्रेम से साथ सभी ।
साथ-साथ रहने वालों की, अलग न होती बात कभी ।।
घर ही शिक्षणशाला समझो, बाहर मिलता ज्ञान नहीं ।
जैसा शिक्षण घर में मिलता, क्या मिल सकता अन्य कहीं ।।

□ चारों का विवाह

कुशल होगए व्यवहारों में, चारों ही अब हुए जवान ।
पाणिग्रहण करना चारों का, दिया पिता-माता ने ध्यान ।।

रूप रंग से पहले देखे, जाति और कुल,शील,स्वभाव।
सहा न जाता परम्परा में, जाति और कुल, शील-अभाव।।
परम्परागत संस्कारों में, चारों का ही हुआ विवाह।
परम्परा से वंधे हुए ही, वनते वादशाह या शाह।।
'चन्द्रमती'थी, 'कीर्तिमती'थी, 'शान्तिमती'थी, 'शीलवती।'
क्रमशः चारों नाम गिनाए, "चन्दन"फिर करलो गिनती।।
सभी पारिवारिक लोगों ने, वरसाए खुशियों के फूल।
वातावरण हर्ष का मनको, सदा लगा करता अनुकूल।।

□ घुलमिल गई

चारों वहुओं ने सम्भाला, भली भान्ति से घर का काम।
काम सभी का होता है, क्यों- किसी एक का लेना नाम।।

मैं क्यों करूं, करेगी वह ही, ऐसा कहना भूल वड़ी।
मैं भी करूं, करेगी वह भी, हम दोनों अनुकूल वड़ी।।
यह छोटा, यह वड़ा काम है, ऐसा क्यों सोचा जाए।
निपटाया जाए वस उठकर, काम सामने जो आए।।
मैं सासू हूं, मैं जेठानी, वहू करे जी ! देरानी।
वड़े पिलाया करते हैं क्या, उठकर छोटों को पानी ?

मिलकर रहने वालों में यह, भेदभावना क्यों आए ?
क्या न समान बनाए जाते, खटिया के चारों पाए ?
इधर लगादो उधर लगादो, अन्तर क्या आ सकता है ?
थकते हैं तो सारे थकते, नहीं अकेला थकता है ।।
करके काम 'अहं' करने से, किये हुए पर फिरतो धूल ।
"चन्दन" सज्जन कब करते हैं, कभी 'अहं' करने की भूल ।।
यथा सुताओं को मिलता है, माता का वात्सल्य महान ।
वधुओं को भी माना जाता, सास-दृष्टि में सुता-समान ।।

□ संसार का स्वरूप

चारों भाई चारो बहुएं, माता-पिता सुखी सारे ।
लगते सभी परस्पर प्यारे, प्रेम बिना लगते खारे ।।
प्यार भरा संसार मधुर है, खार भरा संसार जहर ।
कभी सुधा की, कभी जहर की, आती रहती यहां लहर ।।
केवल सुखमय केवल दुखमय, जीवन नीरस होता है ।
कोई ऐसा पुरुष नहीं जो, सदाकाल ही सोता है ।।

सुख आते हैं दुख आते हैं, ज्ञान हमें दे जाते हैं ।
जाते-जाते कभी ज्ञान भी, साथ उठा ले जाते हैं ।।

साधारण-सी घटना देती, इस जीवन में मोड़ नया।
"शूरपाल" को पृथ्वीपति के, पद तक पहुंचा दिया गया॥

▭ वर्षा और किसान

वर्षा ऋतु आने पर वर्षा, उमड़-घुमड़ कर बरस पड़ी।
कहीं बरसने का ही अवसर, देख रही थी खड़ी-खड़ी।
नहीं रोकने पर भी रुकता, क्रोध उबल जाने पर ज्यों।
नहीं गरजने से भी रुकता, मेघ सलिल पाने पर त्यों॥

भरे सरोवर ऊपर तक सब, सरिताओं में सलिल बढ़ा।
मेघ बरसता मनुज बरसता, जो होता आकाश चढ़ा॥
कसी कुदाले बैल और हल, लिये किसान चला घर से।
क्योंकि किसान चाहता रहता, हे भगवान ! जलद बरसे॥
जल पीने के योग्य खेत को, पहले से ही किया गया।
क्योंकि विनीत शिष्य पर गुरु की, बरसा करती दया-मया॥
कोमलता के बिना खेत में, बीज डालता नहीं किसान।
कोमलता के बिना शिष्य को, क्या गुरु भी देते हैं ज्ञान ?
बिना समय के बीज न पकता, भले उतावल की जाए।
धैर्य बना रखने की शिक्षा, क्यों न इसी से ली जाए ?

□ काम लग गये

पौफूटी चारों ही जागे, होते ही वे भोर चले।
खेत जोतने, बीज डालने- अब खेतो की ओर चले।।
ध्यान रखा जाता है, डाला- बीज सौगुना अधिक फले।
ध्यान किसान नही रखता है, कपड़े मैले या उजले।।
कितनी घड़ियों तक श्रम करना, रखता ध्यान किसान नही।
अपना श्रम है अपनी खेती, अपने पर अहसान नही।।
पीछे से चारों ही बहुएं, लाती खाने का सामान।
उत्तर साधक का रहता है, मन्त्र साधना मे ज्यों स्थान।।
देर-सवेर कभी हो जाती, करते फिर भी क्रोध नही।
क्रोध वही करता है जिसको, गति मति का है बोध नही।।
उठने-करने-चलने मे भी, हो सकता है कभी विलंब।
सह्य विलम्ब नही होता वह, जिसके साथ जुड़ा हो दंभ।।

□ वट-वृक्ष

पथ पर श्री वट वृक्ष एक था, खड़ा कभी का लेकर मौन।
नही बताता कभी किसी को, आया गया यहां पर कौन।।
गड़ा लिया सिर कभी धरा मे, मानो उसको आई लाज।
पाप रोकने वाला कोई, निकला अब तक नही इलाज।।

छाया देता फल देता था, देता रहने को आवास।
विहंग गणों का विश्रामालय, बना द्वीप का स्तंभ प्रकाश॥
इसी वृक्ष के नीचे चारों, रुकती थीं आती-जाती।
भर करके ले जाती माथा, आतीं खाली ले आती॥

□ श्वसुर की जिज्ञासा

आज श्वसुर ने सोचा--पहले- पहुंच छिपूं या विटप चढ़ूं।
बातें भी करती होंगी ये, बहुओं को क्यों नहीं पढ़ूं॥
मेरे प्रति, मेरे घर के प्रति, रखतीं कैसा श्रद्धा-भाव?
क्योंकि सामने कब आता है, जो होता है छिपा स्वभाव॥
नहीं पूछने पर भी कोई, दिखला देता अन्तर मन।
अन्तर मन सुनने की इच्छा, कर बैठे हैं आज श्रवन॥

नहीं सयानी नारी कहती, सह लेती है गृह-सन्ताप।
क्योंकि बोलने वाली के तो, वचन समझते सभी प्रलाप॥

चारों से ही पहले उठकर, चला-रुका-बैठा छिपकर।
जिस वट के नीचे बहुएं आ, बातें करती थीं रुक कर॥

चारों बहुएं चली नगर से, लेकर खाने का सामान।
दिया दिखाई बहुत दूर से, उनको नित रुकने का स्थान॥
पास वृक्ष के पहुंची जैसे, वैसे ही उमड़े बादल।
नहीं बरसते समय देखते, बादल इष्ट घड़ी या पल॥
बादल गरजे विद्युत् चमकी, पानी पड़ा मूसलाधार।
प्रलय काल के बिना प्रलय हो, करने का-सा लगा विचार॥
इतनी वर्षा में अब आगे, चलना था आसान नहीं।
वस्त्र, देह, सामान न भीगे यह आया है ध्यान वहीं?
सोच-समझ कर चारों बहुएं, रुकीं वृक्ष के नीचे आ।
तीव्र वृष्टि के कारण मुख से, सहसा निकल रहा है—हा!
बरस रहा था पानी अविरल, अन्धकार था चारों ओर।
उमड़-घुमड़ कर काले बादल, गर्जन करते थे अति घोर॥
लगी कांपने देह, मेह के- साथ प्रभंजन तेज़ चला।
चम-चम कर जब चपला चमकी, क्यों न कांपती देह भला?

अपने ही में लगीं सिमटने, शीतलता जब हुई विशेष।
कहीं प्रवेश पा सकें ऐसा, पास नहीं था अन्य प्रदेश॥
इतनी देर अलग थीं चारों, मिलकर एकाकार बनीं।
बून्दों के मिल जाने पर ही, देखो जल की धार बनी॥

दांत बोलने लगे कड़ाकड़, मानो ठण्डा हुआ घमण्ड।
किसके किये हुए कर्मों का, दान्तों को मिलता यह दण्ड?

चारों की चिन्ता

कब पहुंचेंगी आज खेत में, कब खाना खिलवाएंगी?
कब लौटेंगी, पड़ा हुआ सब, काम-धाम कर पाएंगी?
कितनी देर होगई, कितनी- देर और बरसेगा जल?
कल क्या फिर बरसेगा अब ही, लगा रहा जब पूरा बल॥
अपने खेतों में भी पानी- पानी हो भर जाएगा।
पता नहीं इतने पानी का, अन्तिम फल क्या आएगा?
खेतों में बैठे वे चारों, भूख सहेंगे हा! कैसे?
वहां नहीं कुछ खाना मिलता, भले पास में हों पैसे॥
आटा भी यदि होता तो वे, रोट पकाकर खा लेते।
जैसे-तैसे जठर-अग्नि को, बैठे वहीं बुझा लेते॥
समय काटने का भी साधन, कुछ भी नहीं वहां पर है।
घर के सिवा किसी को बाहर, मिला विराम कहां पर है॥

"चन्द्रमती" का स्वर

"चन्द्रमती" ने कहा—सुनो हम, अपने मन की बात करें।
है एकान्त स्थान अति उत्तम, बातें करती नहीं डरें॥

सुन्दर अवसर मिला, करेंगी, बातें मन की आज अवश्य ।

उलझी हुई सदा रहती हैं, घर के कामों में घर पर।
कभी बैठकर खुलकर बातें, करने का न मिला अवसर॥
निर्जनता के विना न खोले- जाते मन के छिपे रहस्य[1]।
सुन्दर अवसर मिला, करेंगी- बातें मन की आज अवश्य॥

□ "शीलवती" का स्वर

"शीलवती" ने कहा—नहीं है, बातें करने का यह स्थान।
कहीं छिपा बैठा हो कोई, सुनले बातें देकर कान॥
मन का नहीं, नहीं जीवन का, छेड़ा जाए अन्य प्रसंग।
अपने से सम्बन्ध नहीं हो, यही बात करने का ढंग॥

□ "कीर्तिमती" का स्वर

"कीर्तिमती" ने कहा—वहन! तू, कैसे है इतनी डरपोक?
क्या अपनी बातें सुनने को, छिपे यहां पर रहते लोक?
इतने पर भी सुन लेगा तो, सुनलेगा वह वेचारा।
नहीं हमारा कुछ विगड़ेगा, "चन्दन" इन बातों द्वारा॥

---

१ गुप्त बात

□ "शीलवती" का प्रतिवाद

"शीलवती" ने कहा विवश हो, जैसे, हम ठहरी हैं अत्र।
सम्भव है कोई ठहरा हो, कोई आगन्तुक अन्यत्र ॥
नहीं किसी को अवसर देना, कोई बातें सुनने का।
आ सकता है समय बाद में, अपना ही सिर धुनने का ॥

□ "कीर्तिमती" की कड़ाई

"कीर्तिमती" ने कहा—अन्त क्या, आशंकाओं का आता ?
आशंका करने वाला नर, मंजिल तक न पहुंच पाता ॥

□ 'शीलवती' की रूक्षता

"शीलवती" ने कहा—सोचलो, मेरे से हैं आप बड़ी।
आप कहें, मैं भी कहदूंगी, तोडूंगी मैं नहीं कड़ी ॥

□ "महीपाल" का मनोरथ

ससुर सोचकर जो आया था, काम वही अब होता है।
जो उत्सुक होता सुनने का, कभी नहीं वह सोता है ॥

बड़ी सावधानी से उसने, इधर लगाए अपने कान।
सोच रहा है'—मेरे ऊपर, चला न आए इनका ध्यान॥
देख लिया तो रुक जाएंगी, कहती-कहती मन की बात।
और विचारेंगी क्यों आए, आज ससुर जब है बरसात॥
बहुओं के संग आना-जाना, बातें सुनना है अपराध।
सूत्र नहीं, पर नीतिसूत्र तो, "महीपाल"ने रक्खा साध॥
सांसों की गति धीमी करली, जिससे शब्द न हो पाए।
मेरे आने का तो इनको, भान न कुछ भी हो जाए॥
वस्त्र नहीं उड़ने देता है, आजाए आवाज़ कहीं।
मेरे छिपने का यह सारा, खुल जाए न राज़ यहीं॥

विहगों का कलरव भी करता, नीरवता को भंग नहीं।
सुना न जाए सही-सही तो, मिलता कथा-प्रसंग नहीं॥
योग निरोध कर रहा योगी, कहीं अयोगी बनने को।
शव सम बनकर श्वसुर खड़ा है, मन की बातें सुनने को॥

▫ वार्ता का प्रारम्भ

"चन्द्रमती" ने कहा—'कहूँ मैं, पहले अपने मन की बात।
साथ-साथ हम सब रहती हैं, सभी जानती तन की बात॥

समय हो चुका है भोजन का, भोजन की हम बात करें।
रुचि से भोजन करती हैं जब, बातें रुचि के साथ करें॥

□ मेरी रुचि

पापड़ भी हो और गर्म हो, खिचडी ताजा घृत के साथ।
शाक बड़ो का और कढ़ी हो, यह मिलना क़िस्मत की बात!!
यदि अचार हो साथ आम का, खट्टा-मीठा अति स्वादिष्ट।
रुचिकर भोजन के द्वारा हो, तन-मन बनते सदा वलिष्ठ॥
मेरे मन की बात सुनादो, कीर्त्तिमती ! अब तुम बोलो।
शरमाने की बात न इसमें, बात हृदय की सब खोलो॥

□ "कीर्तिमती" का कथन

"कीर्त्तिमती" ने कहा—मुझे तो, खीर-खंड है अधिक पसन्द।
ताज़ा घृत की फिर केसर की, उसमें उठती रहे सुगन्ध॥
दाल मसालेदार भात के- साथ शाक ताज़ा-ताज़ा।
मैं क्या, मेरे इस भोजन पर, ललचा भी जाए राजा॥
तृप्ति मानसिक,वाचिक,कायिक, भोजन द्वारा प्राप्त करूं।
इतनी सी इच्छा दिखलाकर, मैं वक्तव्य समाप्त करूं॥

□ "शान्तिमती" का मन

"शान्तिमती" ने कहा—मुझे हैं, केसरिया मोदक प्यारे।
पांचों ही पक्वान्न साथ में, गए परोसे हों न्यारे॥
छोटी-छोटी और पूरियां, घृत से निकली हुई गरम।
अच्छी सेकी गई बराबर, कुरमुर करतीं नहीं नरम॥
पांच शाक हों और रायता, और मिले स्वादिष्ट अचार।
बात यही है मेरे मन की, भोजन जीवन का आधार॥

कवि का चिन्तन

दिल के किसी एक कोने में, दबे पड़े थे उग्र विचार।
बनता नहीं कभी भी "चन्दन", बिना विचार बाह्य संसार॥
एक तरह के भोजन से ही, तृप्ति नहीं पाता है मन।
यह खालूं, वह खालूं ऐसा, उठता ही रहता चिन्तन॥
इतना खालूं, इतना पीलूं, होड़ लगाया करता मन।
"चन्दन" इच्छा-दमन कठिन है, सत्पुरुषों का सत्य वचन॥

▭ "शीलवती" का अन्तर

तीनों ने अपनी इच्छाएं, स्पष्ट रीति से करदीं व्यक्त।
बहुत शीघ्र ही कहने का अब, आया "शीलवती" का वक्त॥

सोच रखा था इसने ऐसे, जब आएगा मेरा क्रम।
सम्भव है इतने में वर्षा, बरस-बरस जाएगी थम॥
कुछ भी कहना नहीं पड़ेगा, चल देंगी हम सब आगे।
टूट जांयेगे बातचीत के, फैल रहे हैं जो धागे?
इच्छा नहीं अल्प भी लेकिन, होकर विवश बोलना अब।
"शीलवती" को अपना अन्तर, "चन्दन" पड़ा खोलना अब॥

☐ महान मनोरथ

जीवित रहने को हम खाएं, खाना है उद्देश्य नहीं।
जीएं खाने के खातिर हम, यह उद्देश्य न कभी सही॥
किसी वस्तु के प्रति मेरी तो, इच्छा जगती नहीं कभी।
पूरी और मिठाई रोटी, मेरे लिये समान सभी॥
मैं छोटी हूँ लेकिन मेरी, अभिलाषाएं बहुत बड़ी।
कह ही डालूं कहने को जब, मैं होगई आज खड़ी॥

प्रातःकाल करूं उठ करके, प्रथम सुगन्धित जल से स्नान।
करूं विलेपन चन्दन का मैं, फिर पहनूं उत्तम परिधान॥
अधिक मूल्य वाले ही सारे, अलंकार हो इस तन पर।
तन न उठाता भार, भार क्यों- डाला जाए इस मन पर॥

सास ससुर को जेठों को मैं, करवाऊं भोजन उत्तम।
भोजन करवाने में कैसे, मानी जाए कहो शरम॥
जेठानियां सभी खाएं फिर, परिजन खाएं लेकर स्वाद।
बचा-खुचा ही खाऊं मैं तो, इससे हो मुझको आल्हाद॥
दीनों को दूं दान, अदीनों- को दूं मैं सम्मान बड़ा।
केवल खाने की बातों में, "चन्दन" कुछ भी नहीं पड़ा॥

□ एक सपना

"कीर्तिमती" ने कहा–'मनोरथ, क्या पूरा हो जाएगा?
घर हो जब असमर्थ बताओ, वस्तु कहां से लाएगा?
उत्तम भोजन वस्त्राभूषण, की बातें केवल सपना।
क्योंकि स्वयं से छिपा न रहता, जिस स्थिति में हो घर अपना॥

○ "शीलवती" का उत्तर

"शीलवती" ने कहा शान्ति से, इच्छा क्यों की जाए स्वल्प।
भले उसे पूरा होने में, लग जाता हो पूरा कल्प॥
उत्तम जन की उत्तम इच्छा, उत्तमता से होती प्राप्त।
मेरी इच्छा मैंने कहदी, बातें अपनी करो समाप्त॥

वर्षा रुकते ही चारों के, चरण बढ़े खेतों की ओर।
चारों के चल देने से ही, ससुर हो उठा हर्ष-विभोर॥
चली गईं ये मुझे न देखा, सुन पाया मैं इनकी बात।
उलटा असर हुआ उस पर से, लगा एक भारी आघात॥
नहीं यथेप्सित भोजन देती, इनको मेरी घरवाली।
चार-चार बहुओं की सासू, बन कर विपदा है पाली॥
क्या मेरे घर पर भोजन की, लगती उसे कमी कोई ?
नहीं आज तक मैंने बेची, पाई हुई ज़मीं कोई॥
नहीं किसी का डर है सिर पर, घर का घर है घर का खेत।
मेरे चारों बेटों में भी, आपस में है पूरा हेत॥

बहुएं चारों बड़ी सयानी, चलतीं इंगित के अनुकूल।
बहुओं की कुछ नहीं, सास की, दिखती है इसमें तो भूल॥
उत्तम भोजन हित लालायित, मैंने तीनों को पाया।
लगता है ऐसा—छोटी ने, मानों सब कुछ हो खाया॥

बचा-खुचा हो छोटी पाए, आती इसको बात बड़ी।
निर्दोष बहू पर आज श्वसुर ने, करली ऐसी दृष्टि कड़ी॥

○ नया आदेश

विटप-तने की ओट छोड़ कर, घर की ओर चला आया।
जो करना था वह पत्नी को, भली भान्ति से समझाया॥
आदि-अन्त वृत्तान्त सुना कर, दिया नया ऐसा आदेश।
तीनों को तो इच्छित भोजन, देना दोनों समय हमेश॥
बचा-खुचा देना छोटों को, कहने का इतना सा सार।
भला आदमी और भलाई, ऐसे खाया करते मार॥

○ यह हुआ

नई व्यवस्थाएं देकरके, चला गया "महिपाल" कहीं।
पति के आदेशों को पत्नी, क्या सकती है टाल कहीं?
बहुओं के आने से पहले, हुई व्यवस्थाएं सारी।
क्योंकि समय से पूर्व हमेशा, की जाती है तैयारी॥
भोजन का जब समय हुआ तो, चारों पुत्र पिता जीमे।
खाया हुआ पचाना जिसको, वह खाता धीमे-धीमे॥

जितनी रुचि हो उससे कुछ कम, खाने का है नियम महान।
क्योंकि सांस सुख से लेने को, रिक्त रखा जाता है स्थान॥

जिसे अधिक जीना हो वह क्यों, अति मात्रा में खाएगा।
जो खाएगा अधिक वही तो, अपनी आयु घटाएगा॥

○ यथेप्सित भोजन

उत्तम भोजन गया परोसा, तीनों बहुओं को तत्काल।
रखे गए सज्जित कर सम्मुख, अलग-अलग अब तीनों थाल॥
"शीलवती" ने भोजन पाया, जो खाने के बाद बचा।
भोजन की यह विषम व्यवस्था, देगी नूतन खेल रचा॥

○ तीनों का चिन्तन

तीनों ने सोचा मन ही मन, कैसा आज हुआ यह खेल !
अपनी सारी इच्छाओं का, यहां बिठाया किसने मेल ?
सभी वस्तुएं उत्तम रुचिकर, एक नहीं अवशेष रही।
क्यों न दिया खाने को जो कुछ, देती सास हमेश रही !!
ऐसा करने का सासू को, किसने आकर कहा यहां ?
बातें करते समय बताओ, कौन आदमी रहा वहां ?
बिना कहे ही कैसे जाना ? ज्ञान सास के पास नहीं।
सास ससुर को बतलाने का, हमने किया प्रयास नहीं॥

○ प्रतिदिन का क्रम

जैसा आज किया वैसा ही, करने का क्रम बना लिया।
भेद-भावना रखने के हित, अपने मन को मना लिया॥
"शीलवती" ने सोचा—ऐसा, प्रतिदिन क्यों होता व्यवहार?
घर में कैसे लगा पनपने, भेद-भावना का आधार!!
जब आहार समान नहीं हो, हो व्यवहार समान नहीं।
इसका अर्थ यही होता है, उसके प्रति सम्मान नहीं॥
व्यक्ति असम्मानित का होता, घर में कोई स्थान नहीं।
"चन्दन" घर का अभिभावक नर, फिर क्यों देता ध्यान नहीं?
बचा-खुचा खाकरके भी मैं, जीवित तो रह सकती हूं।
स्वाभिमान का हनन शान्ति से, कितने दिन सह सकती हूं?
मैं बोलूं उससे पहले ही, कोई बोले तो अच्छा।
जो इसका कारण है उसको, कोई खोले तो अच्छा॥

○ अपनी ओर से

भूल गणित में हो जाने पर, हो सकता क्या शुद्ध सवाल?
सही सोचने को कहते हैं, इसीलिये प्रभु दीन-दयाल॥
बड़ा मनोरथ करने से क्या, हुआ श्वसुर का कुछ अपमान?
भला सोचने वाली को क्यों, दिया जा रहा दुःख महान?

जो भी होता अच्छा होता, चलें मानकर ऐसा हम।
जैसा होना होता वैसा, "चन्दन" हो जाता उद्यम॥

○ कारण खुला

तीनों बहुओं ने जिज्ञासा, रखो एक दिन सास-समक्ष।
भोजन में यह भेद-भावना, रखने का क्या कहिए लक्ष्य ?

बोली सास—'तुम्हीं चारों ने, वन में की थी कुछ बातें।
सुनी तुम्हारे पूज्य श्वसुर ने, जब होती थी बरसातें॥
जो आदेश मिला है मुझको, उसका मैं करती पालन।
"चन्दन" गृहपति के द्वारा ही, होता गृह का संचालन॥

□ खेत के बीच में

सुनकर सन्न रह गई सारी, उठी खेत की ओर चलीं।
तीनों हर्षित होकर बोलीं, हुई व्यवस्था पूर्ण भली॥
"शीलवती" की इच्छाएं तो, पूर्ण नहीं हो पाएंगी।
दब जाएंगी मर जाएंगी, फिर क्या सम्मुख आएंगी ?

इतने दिन तक यह वेचारी, रूखा-सूखा खाएगी।
कभी श्वसुर के मन में करुणा, दया-भावना आएगी ?
गिरकर सासू के चरणों में, अथवा माफ़ी लेगी माँग।
या ऐसे कह देगी उस दिन, मैंने कुछ खाली थी भांग ॥
अथवा हम सब मिल करके ही, सासू से कह देंगी बात।
यह बरताव नहीं है अच्छा, हम न सहेंगी यह आघात ॥

''शीलवती''ने कहा—'सुनो तुम, फूल रही क्या खाने पर
खाना मिट्टी हो जाता है, रसना से गिर जाने पर ॥
मेरी आत्मा तृप्त बनेंगी, सबको करवाकर भोजन।
बिना भावना उठे न होता, किसी तरह का आयोजन ॥
जो आयोजन होना होता, वही भावना जगती है।
ठहरी हुई भावना-बल पर, यह सारी ही जगती[1] है ॥
भाव शुद्धि ही नर-जीवन का, माना जाता पावन लक्ष्य ?
भाव-शुद्धि का मार्ग बताते, शास्त्रज्ञान वाले मुनि दक्ष ॥
मैंने भूल नहीं की कोई, क्षमा मांगने का क्या अर्थ।
व्यर्थ क्षमा मांगा करता है, जिसकी आत्मा हो असमर्थ ॥

तुम ही खाओ अच्छे भोजन, बचा-खुचा मैं खालूंगी।
अपने शुद्ध मनोरथ को मैं, मनसा वाचा पालूंगी ॥

---

१ पृथ्वी।

तुम देखोगी तीनों मेरा, पुण्य शीघ्र ही फल देगा !
जैसा कर्म-बीज है जिसने- बोया वैसा फल लेगा !

▭ तीनों का उत्तर

इसके लिये नहीं हम कारण, हम हैं तेरे साथ सदा।
घर की पूर्ण व्यवस्थाएं तो, सासू जी के हाथ सदा ॥
हम मिलकर आशा करती हैं, तेरी इच्छा त्वरित फले।
"चन्दन" बिल्कुल सही बात है, फलने का क्यों समय टले ॥

खेतों पर कर काम शाम को, आईं चारों ही घर पर।
फिर व्यवहार वही देखा तो, दिल पर भारी हुआ असर ॥

▭ "शीलवती" की उदासी

थोड़ा सा भोजन करके ही, "शीलवती" उठ खड़ी हुई।
सोच रही निज शयन कक्ष में, शिथिल पलंग पर पड़ी हुई ॥
सारी स्थिति मैं कह दूं पति से, या घुटन भरा जीवन जीऊं ?
फटती जाती जीवन चादर, कहां-कहां से यह सीऊं ॥
उत्तम भोजन पाकर तीनों, होती हैं सन्तुष्ट सदा।
मुझ हताश की अभिलाषाएं, होंगी जिनवर ! पुष्ट कदा ॥

क्यों इच्छाएं उठीं ? उठीं तो- प्रकट हुई क्यों वाणी से ?
मन को ये इच्छाएं क्या-क्या, करवाती हैं प्राणी से !!
इच्छाओं ने बाहर आकर, कष्ट दिया है मेरे को।
कौन हटाएगा जीवन पर, छाए इस अन्धेरे को ?

□ "शूरपाल" के सम्मुख

"शूरपाल" ने देखा आकर, "शीलवती" है बहुत उदास।
नहीं सदा की भान्ति दीखता, मुख पर इसके हास्य विलास ॥
उठा विषाद दबा देता है, अन्तर का आमोद-प्रमोद।
जीवन-धरती के सुख-पादप, है विषाद सब देता खोद ॥

"उठो प्रिये! क्यों लेटी हो तुम? क्यों उदास हो यह बोलो।
टूटे तरु की दीन लता-सी, पड़ी किस लिये मुख खोलो ॥"

सच बतलाना उचित न समझा, बोल सकी वह झूठ नहीं।
डर है, कहीं मौन से पाला, प्रेम न जाए टूट नहीं ?
पति के सत्याग्रह के सम्मुख, ठहर न पाया उसका मौन।
घुले बिना क्या रह सकता है, पड़ा हुआ जो जल में लौन ॥

□ "शूरपाल" पर प्रभाव

"शूरपाल" के सरल चित्त पर, लगा एक भारी आघात।
मेरी भोली पत्नी परखे क्यों, किया जा रहा वज्र-निपात॥
कुल-गौरव की वृद्धि हेतु हो, इसने की यह अभिलाषा।
यह बेचारी जान न पाई, उलट जायगा यह पासा॥
समझदार है पिता, न जाने, वे क्या मन मे लाए है।
भोजन की इस विषम व्यवस्था- में क्यो वे भरमाए है?
किया पिता जी ने जब ऐसा, जान-बूझ कर यह अन्याय।
यह अन्याय मिटाने का क्या, अब मैं सोचू शीघ्र उपाय?

□ विदेश जाना होगा

यद्यपि अपने घर पर धन की, कुछ भी तो है कमी नही।
धन के होते यह दुख पाए, बात चित्त में जमी नही॥
किन्तु पिता जी की आज्ञा के, बिना नही मिलता पाई।
और बड़े है मेरे से ये, देखो तीनो ही भाई॥
इनके सम्मुख कहना कुछ भी, या धन पाना बहुत कठिन।
बहुत कठिनता से कटते हैं, "चन्दन" कठिनाई के दिन॥

क्षण भर रुककर सोचा—मुझको, जाना हीं होगा अन्यत्र।
अर्थोपार्जन करने के हित, खुले स्रोत रहते सर्वत्र ॥
वैभव पाए विना न होगी, सफल योजनाएं मन की।
आवश्यंकता और महत्ता, सदा रही "चन्दन" धन की ॥

"शीलवती" से कहा—मनोरथ, तेरे पूरे कर दूंगा।
कर व्यवसाय कमाकर धन से, जब पूरा घर भर लूंगा ॥
खेती से धन नहीं, 'धान्य हीं- मिल पाता है देख प्रिये !
धन के लिए विदेशों में ही, नर जाते हैं देख प्रिय !!
कर गृह-त्याग चले जाना ही, उत्तम अपने लिये विशेष।
वित्तार्जन के लिये प्रिये! अब, जाना होगा मुझे विदेश ॥

▫ जूड़ा और चोली

स्थान अनिश्चित जब जाने का, पता लिखाया क्या जाए।
कार्य अनिश्चित लेकर जाता, पता नहीं वह कब आए ॥
घर वालों को हुआ ज्ञात यदि, जाने देंगे क्यों घर से।
घर वाले जब रोते हों तो, जाया जाता क्या नर से ?
वह कुछ बोलें उससे पहले, "शूरपाल" उठ खड़ा हुआ।
केश-पाश बांधा निज कर से, प्रिय पत्नी का अड़ा हुआ ॥

प्रेम-सहित चोली पहनाई, और दिया है यह आदेश।
इन दोनो को नही बदलना, और बदलना चाहे वेश॥
जब तक लौट न आवू घर पर, तब तक इतना रखना ध्यान।
पतिव्रता के लिये शील हो, और धर्म हो होता प्रान॥
जब आवूगा इन्हे बदल कर, नया तुम्हें - पहनाऊंगा।
तेरे लिये लौटकर वापिस, बहुत शीघ्र ही आऊगा॥
रहना खुश, मत रोना, चिन्ता- करके सूख नही जाना।
एक बार जो किया मनोरथ, उससे चूक नही जाना॥
दृढ इच्छाएं ही फलती है, रखो हृदय मे दृढ़ विश्वास।
घर मे रहो इस तरह रानी ! लिया हुआ हो ज्यो सन्यास॥

ऐसे कहकर "नमोक्कार" पढ़, ले तलवार चला तत्काल।
दृढ-प्रतिज्ञ हो चला मनस्वी, करके अपना हृदय विशाल॥

▭ "शीलवती" की कल्पनाएं

"शीलवती" के मन पर उभरा, कभी हर्ष तो कभी विषाद।
क्योकि विरह का क्षण पहला यह, आया पाणिग्रहण के बाद॥
मंगलमय हो सभी दिशाएं, हों मंगलमय सारे पंथ।
जल थल गगन बने मंगलमय, मङ्गल पावें मेरे कंत !

कहां रहेंगे ? क्या खाएंगे ? सोएंगे वे किस घर पर ।
कौन ठहरने देगा उनको, सभी अपरिचित होंगे नर ॥
कैसे अर्थोपार्जन होगा, होगा पुनर्मिलन कैसे ।
सोती-जगती एक कल्पना, मन की शय्या पर ऐसे ॥

जाग रही थी गिन-गिन तारे, मन न दोनता वाला था ।
अन्धेरा था वाहर—मन के, भीतर तो उजियाला था ॥
सभी मनोरथ सब फलते हैं, जब कुछ कष्ट सहा जाए ।
कष्ट मिटाने वाले के ही, सम्मुख कष्ट कहा जाए ॥
कष्ट सहेंगे मेरे प्रिय, मैं- कष्टों से क्यों घवड़ाऊं ।
जो कुछ हो वन कर तटस्थ-सी, उसे देखती मैं जाऊं ॥

□ "शूरपाल" कहां गया ?

प्रातःकाल हुआ तव सारा, एकत्रित परिवार हुआ ।
"शूरपाल" को नहीं देख कर, विस्मय अपरम्पार हुआ ॥
ढूंढ़ा इधर-उधर भी ढूंढ़ा, पूछा पास-पड़ौसी को ।
किसने निर्वासित कर डाला, मेरे सुत निर्दोषी को ?
बड़े वन्धु वस यह कहते थे, वह था हम सव को प्यारा ।
क्यों घर छोड़ा, कारण क्या था, हुआ यहां से क्यों न्यारा ?

"शीलवती" से पूछा—तुझसे, कही न कोई उसने बात ?
बिना बात के गया किधर वह, कैसे हो सकता अब ज्ञात ?

"शीलवतो" बोली—मेरे पर, पूर्ण अनुग्रह था पति का।
लड़ना, और झगड़ना पति से, विषय नहीं मेरी मति का॥
नहीं सोच भी सकती हूँ मैं, पति-इच्छाओं के विपरीत।
जो विपरीत सोचती उसने, जानी नहीं प्रीत को रीत॥

बोले सभी—'सत्य है यह तो, तेरे से कुछ बोला क्या ?
जाग रही थी या सोई थी, जब दरवाज़ा खोला था ?

"शीलवती" अब लगी बोलने, जो कुछ जाते समय कहा।
निकला समय रोकने का अब, कहने का ही समय रहा॥
मेरे प्रिय ने निज हाथों से, बांधा था मेरा जूड़ा।
नई कंचुकी भी पहनाई, फिर घर छोड़ा ज्यों कूड़ा॥
जब तक नहीं लौट कर आवूं, तब तक इन्हें बदलना मत।
सत पथ पर चलते रहना तू, धर्म-नियम को छलना मत॥
इतना कहकर चले गये वे, किधर गए कुछ नहीं पता।
तभी बता पाती यदि मुझको, बतला जाते अता-पता॥

▭ सही अनुमान

सुनकर अग्रज बोली उठा यों, स्वाभिमानियों की यह रीत।
तिरस्कार पत्नी का सहकर, पाल सका न घर की प्रीत।।
भोजन वेला में पत्नी का, होता था प्रतिदिन अपमान।
घर से निकल भागने का यह, कारण मानो एक महान।।
पत्नी का अपमान स्वयं का, मान लिया जाता अपमान।
जो संवेदनशील व्यक्ति हो, "चन्दन" यह उसकी पहचान।।

▭ स्मृति में काल का योग

चारों ओर आदमी भेजे, मिल न सका पर पता कहीं।
दृढ़ प्रतिज्ञ होकर जो जाते, मिल सकते वे कभी नहीं।।
नई बात नौ दिन तक रहती, खींची-तानी तेरह दिन।
दिन पर दिन जब बीते जाते, कौन रखे उनको गिन-गिन।।
सब कुछ भुला दिया जाता है, साथ समय के प्रथा यहीं।
"शूरपाल" के जाने की भी, सब के दिल से व्यथा गई।।

"शूरपाल" के पीछे कैसे, त्याग दिये जाएं गृह-कार्य।
क्योंकि सभी घर वालों ने जब, जीना मान लिया अनिवार्य।।

काम खेत पर करने जाना, आना-जाना इधर-उधर।
कौन पूछता है बोलो अब, "शूरपाल"सुत गया किधर ?

□ "शीलवती" नहीं भूली

"शीलवती"निज मन से पति को, भूल नहीं पाती क्षण एक।
मन-मन्दिर में दर्शन करके, अश्रु अर्घ्य देती सविवेक।।
जैसे अपनी आत्मा को हम, अपने अन्तर पाते हैं।
प्रेमी अपने प्रेम-पात्र को, मन में ही पा जाते हैं।।
वह इसमें यह उसमें ऐसे, आपस में घुल-मिल रहते।
तू मैं, मैं तू कभी जानते, नहीं जानते फिर कहते।।

○ शुद्धि का कारण प्रेम

जिस दिन 'शीलवती' भूलेगी, उस दिन वह क्यों आएगा।
जैसे घर से भागा वैसे, भाग हृदय से जाएगा।।
'शीलवती' का शुद्ध प्रेम ही, उसे शुद्ध रख पाएगा।
कहीं प्रेम भी पाएगा तो, क्यों उस पर ललचाएगा।।
पति परदारा गामी बनता, पत्नी के ठुकराने पर।
झुक जाता है पति पत्नी के- थोड़ा सा झुक जाने पर।।

○ ममता नहीं, समता

पति की अनुपस्थिति में भी वह, करती सारे घर का काम।
थकने पर भी लिया न करती, जान-बूझ करके विश्राम॥
खा लेती कुछ, कुछ पी लेती, कुछ सो लेती थी सुख से।
कोई नहीं सान्त्वना देता, पास बिठा करके मुख से॥
मुख पर दुख न झलकने देती, सह लेती समता द्वारा।
दुख को सुख भी समझा जाता, "चन्दनमुनि" ममता द्वारा॥

○ "शूरपाल" की सम्भाल

घर वालों ने "शूरपाल" को, स्मृति से ओझल कर डाला।
लेकिन कथाकार ने उसको, बड़े ध्यान से सम्भाला॥
कथा उसी की उसे भुलाकर, कैसे चल सकती आगे।
भागी कथा उसी के पीछे, देखें यह कितना भागे॥
घर से जब प्रस्थान किया था, संजोया उद्‌देश्य महान।
पुण्यवान पुरुषों का रहता, "चन्दन" चिन्तन धर्म-प्रधान॥

ले जाना था उसे सुकृत ने, उसे कहीं पर क्या जाना।
इसके लिये निविड तम में यह, पथ-प्रदेश था अनजाना॥

बुला रही थी, चला रही थी, कोई शक्ति महान इसे।
इसीलिये जाने का मन में, हो आया था ध्यान इसे ॥

○ जम्बू की छाया

"महाशालपुर"—पास पहुंच कर, लगा मानने स्वयं थकान।
विधि-विधान से उसने देखा, एक बड़ा सुन्दर उद्यान ॥
जम्बू पादप की छाया में, सुख पूर्वक जाकर सोया।
"चन्दन" हमें देखना है यह, पाया या इसने खोया ॥
निद्राधीन होगया ऐसा, करवट नहीं बदलता है।
छाया स्थिर है इसके तन पर, चाहे सूरज ढलता है ॥

○ चितन्न की चांदनी

चिन्तातुर शोकातुर नर को, नींद नहीं आती गाढ़ी।
चिन्तातुर नर बैठा-बैठा, खुजलाता रहता दाढ़ी ॥
चिन्ता करने से क्या कोई, काम बना करता भाई!
काम स्वकृत-सुकृत से बनता, कहते जिसको पुण्याई ॥
पहरा पुण्य लगाया करता, मानव के सो जाने पर।
पुण्य प्रेरणा भर देता है- साहस के खो जाने पर ॥

जंगल में मंगल कर देते, रण में जीवित रख लेते।
गोलों, ओलों की वर्षा में, पुण्य पूर्णतः ढक लेते॥
जल में, स्थल में और अनल में, पुण्य किया करता रक्षा।
जन-रक्षण में पुण्य-शक्ति ही, मानी जाती है दक्षा॥

पांच दिव्य घूमे

"महाशालपुर" के राजा का, हुआ उसी दिन था अवसान।
किसको राज्य दिया जाए यह ? सोच रहा था सचिव सुजान॥
पांच दिव्य सज्जित करने की, परम्परा थी अति प्राचीन।
सचिवों ने की स्वस्थ व्यवस्था, सचिव न होते बुद्धि विहीन॥

छत्र[1] खुलेगा, चंवर[2] डुलेगा, कलश[3] करेगा जल-अभिषेक।
घोड़ा[4] हिन-हिन बोलेगा, गज- डालेगा ले माला[5] एक॥
जिस नर पर पांचों दिव्यों की, पूर्ण कृपा हो जाएगी।
"महाशालपुर" को यह जनता, उसको नृपति बनाएगी॥

पहले पुर में घूमेंगे फिर, परिक्रमा पुर की देंगे।
पंच दिव्य सज्जित नर को हम, भावी राजा चुन लेंगे॥

□ उत्सुकता और भीड़

द्विपथ, चतुष्पथ, त्रिपथ, राजपथ, चौड़े थे पर तंग हुए।
राजा बनने और देखने, जो आए वे संग हुए॥
गलियों और मुहल्लों में भी, नर-नारी सब हुए खड़े।
अपने ही इस भले गले में, माला आकर क्यों न पड़े॥
बीत गए दो पहर घूमते, छान लिया है पुर सारा।
पुर की परिक्रमा करने का, कार्यक्रम अब निरधारा॥
पुर के बाहर जब निकले तब, आया वह उद्यान तभी।
पुण्यशील नर कोई होगा, यह आया न ध्यान कभी॥
लेकिन इनके पीछे चलना, है हम लोगों का बस काम।
बतलाएंगे स्वयं दिव्य ही, राज्य योग्य नर पुण्य-ललाम॥

□ अनोखी बात

''शूरपाल'' के निकट पहुँच कर, खुला छत्र अत्यन्त महन्त।
डोले चंवर, कलश ने जल से, कर डाला अभिषेक तुरन्त॥
घोड़ा हिन-हिन बोल उठा है, हथिनी ने माला डाली।
गूंज उठा नभ जय-जय रव से, सजी आरती की थाली॥
मंगल-वाद्यों की ध्वनि, मंगल- गीतों के ही साथ हुई।
सभी सोचने लगे आज यह, एक अनोखी बात हुई!!

□ महामात्य का प्रणाम

"शूरपाल" ने उठकर देखा, खड़े हज़ारों नर-नारी।
मुख्य सचिव की आज्ञा से अब, की जाती है तैयारी॥
महामात्य ने आगे बढ़कर, "शूरपाल" को किया प्रणाम।
महाशालपुर ने पाये हैं, अपने नरपति अति अभिराम॥
अंगुलियों में चक्र मत्स्य की, स्वस्तिक की रेखाएं स्पष्ट।
शारीरिक शुभ लक्षण कहते, इनको कभी न होगा कष्ट॥
पुण्य-पुरुष के बिना कभी क्या, छाया भी रहती है स्थिर ?
स्थिर शासन होगा इस नर का, नहीं चाहिये कुछ भी फ़िर॥

□ सवारी निकली

स्नान विलेपन के आग्रह को, "शूरपाल" करता स्वीकार।
नृपति योग्य पोशाक पहनकर, हाथी पर होगया सवार॥
स्वर्ण-छत्र की छाया सिर पर, दोनों ओर चंवर ढुलते।
"चन्दन" भाग्य जभी खुलते हैं, अकस्मात ऐसे खुलते॥

हाथी, घोड़े, रथ, पैदल दल, सज्जित हो सब साथ हुए।
'शूरपाल' ही अब जन-जन के, अति ही प्रिय नरनाथ हुए॥

नृत्य हो रहे, गान हो रहे, क्षण भर में सज गया शहर।
शील लहर से भी द्रुत गति से, बढ़ जाती है हर्ष लहर॥
सधवाएं ले थाल स्वर्ण के, मोती के अक्षत डाले।
लगीं उतारने भव्य आरती, सावधान हैं रखवाले॥
चिरजीवो चिरजीवो स्वामिन्! कोटि दिवाली राज्य करो।
हरो जगत की ईड़ा-पीड़ा, सुख से धन-भाण्डार भरो॥
आज हर्ष का पार नहीं है, बना शहर ही हर्षाकार।
घूम-घूम कर दिखा दिये हैं, "चन्दन" मुख्य-मुख्य बाजार॥

□ विधि से घोषणा

राजमहल में लाकर विधियुत, राजा घोषित किया गया।
दीनों और अदीनों को भी, दान मान से दिया गया॥
"शूरपाल" ने राजा बन कर, किये बहुत से काम भले।
भले काम के बिना किसी का, यहां कहां तक नाम चले॥
राजनीति की शिक्षा, सचिवों के द्वारा पाई।
होशियार वह हो जाता नर, जिसने हो ठोकर खाई॥
काम काम सिखला देता है, सिखला देती काम हवा।
तन में रोग उपजने पर ही, ली जाती है यहां दवा॥
"शूरपाल" की नीति-रीति से, लोग हुए सन्तुष्ट सुखी।
सुखी सुखी ही थे पहले से, सुखी होगए लोग दुखी॥

सत्ता और विवेक

सत्ता, लक्ष्मी और सफलता, पाने पर जो हो अभिमान।
"चन्दन" उस मानव को कैसे, माना जाए यहां महान ?

कभी अहं में अपने को भी, भूल बैठता अज्ञानी।
आए हुए अतिथि को उठकर, वह न पिला सकता पानी।।
सत्ता, लक्ष्मी और सफलता, बुरी नहीं तीनों में एक।
नहीं अकेली कभी रहीं ये, रखें साथ में आत्म-विवेक।।
अविवेकी के लिये तीन क्या, नहीं एक भी उपयोगी।
उसके पास एक भी होगी, तो उसकी दुर्गति होगी।।
किसी विवेकी को मिल जाए, तीनों में से एक कहीं।
अपनी और दूसरों की वह, हानि सकेगा देख नहीं।।

घर की स्मृति

मेरा[1] कोई शत्रु नहीं है, मेरा कोई मित्र नहीं।
शत्रु मित्र के बिना सफलता- बनती कभी विचित्र नहीं।।

---

१ किं तया क्रियते लक्ष्म्या, विदेशगतया ननु।
अरयो यां न पश्यन्ति, बन्धुभिर्या न भुज्यते।।
—भावदेव सूरि

मित्र हर्ष से उछले सारे, नष्ट शत्रुता हो जाए।
सत्ता-लक्ष्मी के फल तब हो- समझो मैंने हैं पाए॥
मेरे सारे घर वालों को, में घर पर ही आया छोड़।
भले छोड़ कर आया लेकिन, नहीं स्नेह सकता मैं तोड़॥
पत्नी की इच्छा भी अब तक, पूर्ण नहीं कर पाया मैं।
पता कहां से होगा उसको, "महाशालपुर" आया मैं॥
उन सब को मैं बुलवाऊं तो, है नृप बनने का कुछ अर्थ।
एतदर्थ कुछ नहीं किया तो, मेरा जीना-मरना व्यर्थ॥

□ पत्र और सेवक

पत्र लिखा अपने हाथों से, भेजे सेवक जन विश्वस्त।
कहने योग्य कहा मौखिक ही, शेष लिख दिये वृत्त समस्त॥
सेवक चले पत्र ले करके, "कंचनपुर" में किया प्रवेश।
सावधान रहना पड़ता है, अनजाना हो अगर प्रदेश॥

घूमे बहुत बहुत पूछा पर, पता नहीं मिल पाया है।
सोचा—'काम नहीं बनने से, केवल धक्का खाया है॥
"महोपाल" का पता बतादे, मिला न ऐसा कोई नर।
कैसे ढूंढा जाए बोलो, बिना पते का नर या घर॥

□ कुछ

बैठे किसी वृक्ष के नीचे, सेवक लेने को विश्राम।
नागरिकों ने पूछा—'भाई! कहो आपको किससे काम?
नहीं यहां के आप निवासी, ऐसा होता हमको ज्ञात?
कुछ निराश हो कुछ उदास हो, है कुछ ऐसी ही तो बात?

"महीपाल" क्षत्रिय के घर का, पता न हमने पाया है।
"महाशालपुर" के राजा ने, उन सब को बुलवाया है॥
लाये हैं हम पत्र साथ में, लाए हैं मौखिक सन्देश।
पता न उनका चलता कोई, कैसे पालें नृप-आदेश?
अगर जानते हैं बतलादें, धन्यवाद हम मानेंगे।
"कंचनपुर" के सभी नागरिक- सभ्य तभी हम जानेंगे॥

□ यहां से चला गया

क्षत्रिय "महीपाल" के घर पर, अभी नहीं है कोई नर।
पता नहीं वे सारे कबके, चले यहां से गये किधर॥
कारण भी इसका बतलाएं, करते थे खेती सारे।
नहीं खेत में कुछ उपजा तो, गए यहां से बेचारे॥

बहुत लोग मर गये भूख से, क्योंकि भयंकर था दुष्काल।
बिषमावस्था में मानव हो, मानव का बन जाता काल ॥
सन्तानें भी बेची जातीं, खाने को जो हो न अनाज।
बहुत कठिनता से बच पाती, कुल ललनाओं की शुभ लाज ॥
भिक्षुजनों को भिक्षा के हित, बहुत उठाना पड़ता कष्ट।
भिक्षा की भी छीना-झपटी, रंकों द्वारा होती स्पष्ट ॥
घर,नारी,शिशु,पशु तक को भी, त्याग भागते भूखे नर।
बहुत बुरा माना जाता है, भूखों मरते जाना मर ॥
चोरी होती डाके होते, होती रहती लूट-खसोट।
शूरों से भी सही न जाती, देखो तीव्र भूख की चोट ॥
बहुत व्यवस्था करने पर भी, नहीं अवस्था सुधर सकी।
क्योंकि काल की छाया पूरे, शासन पर थी पसर चुकी ॥

राजकीय सामाजिक साधन, सीमित ही तो होते हैं।
होते वे उपलब्ध उन्हीं को, जो खाकर भी रोते हैं ॥
रोने की आवाज़ कान तक, पहुंचा करती कब सारी।
इसीलिये परवश होकरके, मरती जनता बेचारी ॥

☐ और कोई सेवा

यहा नहीं हैं वे निश्चित ही, पता अनिश्चित अब उनका।
पता बता देंगे हम, हमको- पता मिलेगा जब उनका॥
इसके सिवा और कुछ सेवा, हो तो हम से बोलें आप।
पता लगानें "महीपाल" का, यहां व्यर्थ मत डोलें आप॥

☐ सेवक आगये

ऐसा सुनकर सेवक लौटे, "महाशालपुर" चल आये।
किया प्रयत्न बहुत पर उनका, प्राप्त नहीं कर फल पाये॥
समाचार कर दिये निवेदन, "शूरपाल" नृप के आगे।
समाचार अच्छे आते हैं, जब क़िस्मत अच्छी जागे॥

☐ "शूरपाल" की चिन्ता

उन्मनस्क नृप हुआ रात-दिन, नहीं सुहाने हास्य विलास।
आगन्तुक लोगों से पूछा- करता, [illegible]रके निःश्वास॥
राजा के मन की चिन्ताएं, बढ़ती ज्यों हिमऋतु की रात।
बहुत खोज करवाने पर भी, समाचार हो सका न ज्ञात॥

जैसे लोग मरे वैसे क्या, मरा सकल मेरा परिवार ?
जीवित होता तो मिल जाता, मैंने ढुंढवाया संसार ॥
नहीं-नहीं वे मरे नहीं हैं, कहीं पारहे होंगे कष्ट ।
कष्ट भोगने को ही जीवित, यहां अभागे रहते स्पष्ट ॥
आज नहीं कल, परसों, तरसों, आयेंगे वे आयेंगे ।
मुझ से मिले बिना ही कैसे, वे पहले मर जायेंगे ॥
पत्नी आयेगी, पायेगी- राज्य सम्पदायें सारी ।
शीघ्र दूर हो जायेगी बस, इच्छाओं की बीमारी ॥
प्रथम सुगन्धित जल से उसको, करवाया जायेगा स्नान ।
पहनाया जायेगा सुन्दर, रानी के लायक परिधान ॥
उत्तम आभूषण पहनेगी, होगा भोजन का अवसर ।
स्वयं परोसेगी सारों को, खाएंगे जब सास-ससुर ॥
जेठानियां जेठ खाएंगे, देगी श्रेष्ठ सुपारी-पान ।
दीनों और याचकों को फिर, देगी दान और सम्मान ॥
सब के भोजन कर लेने पर, स्वयं शान्ति से खायेगी ।
इसीलिये हो मेरी पत्नी, आयेगी बस आयेगी ॥

इतने पर भी अगर न आई, तो मैं भी मर जाऊंगा ।
पत्नी के पीछे मरने का, नया कार्य कर जाऊंगा ॥

जीना उसके लियें, उसी के- लिये मृत्यु होगी मेरी।
अभी नहीं, ऐसा करने में- करनी होगी कुछ देरी॥

▭ तालाब खुदवाया

सोचा उसने पुर के बाहर, खुदवाऊं यदि सुन्दर ताल।
सम्भव है तब मेरी इच्छा, पूरी होजाए तत्काल॥
काम जहां पर मिलता, आते- दूर-दूर से लोग वहां।
कहो, काम के करने वाले, "चन्दन" मिलते लोग कहां॥
लोग निकम्मे कभी न रहते, जो उनके सम्मुख होवे काम।
जिनके पास काम है वे क्या, करते सत्ता को बदनाम ?

▭ "महीपाल" का हाल

"महीपाल" परिवार सहित जब, "कंचनपुर" से गया निकल।
दुख में दुख बढ़ता रहता है, नियम प्रकृति का यह अविकल॥
कभी गांव में, कभी नगर में, कभी पहाड़ों में रहता।
भूख-प्यास सर्दी-गर्मी की, सभी यातनाएं सहता॥
वृक्षों की छाया में सोना, नहीं बिछोना धरती पर।
खुला पड़ा सामान साथ का, नहीं साथ में लाए घर॥

कहीं मिली मज़दूरी पूरी, कहीं अधूरी ही पाई।
कहीं पेट भर खाई रोटी, कभी नहीं बिल्कुल खाई ॥
खारा कहीं, कहीं पर मीठा, गरम कहीं पर शीतल जल।
पीकर प्यास बुझा लेते थे, क्षीण नहीं हो पाए बल ॥
दूध, दही, घृत के दर्शन भी, पाना दुर्लभ मान लिया।
ताज़ा तक्र कहीं मिलने पर, माना अमृतपान किया ॥

हिंसक पशुओं का भय आता, जब वन से गुज़रा करते।
जैसे ये डरते थे वैसे, पशु भी थे इनसे डरते ॥
जीना कठिन होगया जैसे, हृदय कठिन भी बना महान।
कठिन हृदय में फंसे हुए क्या, सहजतया जा सकते प्रान ?
दुख में सुख है एक यही बस, जीवित है सारा परिवार।
और साथ में मिलकर करते, सुख-दुख का सम्मिलित विचार॥
सारे सोते, सारे जगते, सारे साथ चला करते।
कठिनाई के समय एक भी, अलग नहीं निकला करते ॥

□ "शीलवती" की सहिष्णुता

"शीलवती" ने अपनी चोली, जूड़ा अभी न बदला है।
इन्हें बदलने के ख़ातिर निज, मन को कभी न बदला है॥

फटी-पुरानी चोली बदलो, कभी-कभी कहता 'महिपाल।'
तेरे कदाग्रहों से ही तो, हुआ हमारा ऐसा हाल॥
सुन लेती सह लेती सब कुछ, कहती नहीं शब्द भी एक।
बहुत कठिन है कठिन समय में, रखना समता, शान्ति, विवेक॥

८ खबर मिली

सुना इन्होंने यहां पास में, "महाशालपुर" एक शहर।
दयावान नृप की छाया में, प्रजा पारही प्रेम-लहर॥
वहां सरोवर पर मजदूरी, करने का भी अवसर है।
अच्छा काम, दाम भी अच्छे, अच्छा भोजन का स्तर है।
ले परिवार "महाशालपुर", आया चल क्षत्रिय "महिपाल।"
देखा, सोचा, समझा, पाया, श्रम करने का क्षेत्र विशाल॥
ज्योतिषियों से मजदूरों ने, क्या पूछा है कभी लगन?
काम मिले, रोटी मिल जाए, इतने में हो जाएं-मगन॥
पत्र-पत्रिकाएं पढ़ने को, क्या जाते मजदूर कभी?
श्रम को ऊंचा करने वाला, बहुत नहीं दिन दूर अभी॥

श्रम का शोषण छोड़ दीजिये, श्रम की यही प्रतिष्ठा है।
स्वस्थ समाज विरचना की यह, श्रम के प्रति सन्निष्ठा है॥

जीएगा श्रमवाद जगत में, होगा पूंजीवाद समाप्त।
मरते-मरते भी जीने को, इसको समय मिला पर्याप्त ॥
जिसका श्रम हो उसकी पूंजी, नहीं अलग होने की बात।
पूंजी की कुंजी आजाए, "चन्दन" श्रमजीवी के हाथ ॥

पारा जैसे सोना खाता, पूंजी श्रम खा जाती है।
पारा सोना नहीं बताता, पूंजी श्रम न बताती है ॥
विधि से पारा मारा जाता, विधि से पूंजी मरती है।
ये बातें पूंजी-पतियों के, अभी गले न उतरती हैं ॥

□ शान्ति और काम

"महाशालपुर" में आने से, "महीपाल" को शान्ति मिली।
शान्ति मानसिक मिल जाने से, शारीरिक कुछ कान्ति मिली ॥
सच्चाई से जो श्रम करता, क्यों बातें कहलाएगा ?
काम समय पर पूरा करके, श्रमिक सदा घर जाएगा ॥

कामचोर नर के हाथों से, स्वतः काम जाता है छूट।
काम, काम करने वाले में, नहीं हुआ करती है फूट ॥

☐ देखने की आवश्यकता

राजा हाथी पर चढ़ करके, काम देखने को आया।
कार्य-निरीक्षक अधिकारी गण, उन्हें निमन्त्रण दे आया॥
उलाहना या धन्यवाद का, पात्र परखने में आता।
सौंपा हुआ किसी को हो वह, काम अतः देखा जाता॥
क्या विधि से सम्पन्न हुआ है? जैसा दिया गया आदेश।
इसीलिये भी काम देखते, आया करते नृपति हमेश॥
रुचि के ही अनुकूल कार्य हो, अतः निरीक्षण हो अपना।
स्वतः निरीक्षित कार्य अगर है, नहीं पड़ेगा फिर तपना॥
चित्त प्रसन्न किया जाता है, काम देख कर लोगों का।
काम देख कर करते ऊंचा, वेतन का स्तर लोगों का॥
काम नहीं देखा करते जो, अच्छा उनका काम नहीं।
देख लीजिये पहले, फिर हो, श्रमिक कभी बदनाम नहीं॥

☐ परिवार पर नज़र

नहीं अकेला आया राजा, आया साथ बड़ा परिवार।
प्रथम सूचनाएं मिल जातीं, आज महीपति रहे पधार॥
मार्ग स्वच्छ हो, कार्य स्वच्छ हो, स्वच्छ वस्त्र पहने जाएं।
जिसे सूचना नहीं मिली हो, क्यों न उसे कहने जाएं॥

निश्चित समय हुआ जब आया, "शूरपाल" परिवार सहित।
नहीं अकेला आया करता, जो बाबा घरबार रहित ॥

काम देख कर, हर्ष व्यक्त कर, लगा डालने नृपति नज़र।
नज़र वहीं पर रुकी जहां पर, मिट्टी ढोता सारा घर ॥
मात-पिता भाभियां भाई, अपनी नारी नज़र चढ़ी।
बहुत दूर से ही पर उनकी- भव्याकृतियां पूर्ण पढ़ीं ॥
हाय ! हाय ! कर्मों ने कैसी, विषमावस्था कर डाली।
इतनी दुर्बल होने पर भी, मिट्टी ढोती घर वाली !!
इधर नहीं है उधर नहीं है, ऊंची-तिरछी नहीं नज़र।
नीची नज़र बनाकर चलती, निज श्रम का क्रम अपनाकर ॥

□ इन्हें बुलावो

नृप बोला—'इन सब लोगों को, अपने पास बुला लाओ।
कब से रखे ? और क्या देते ? सभी परिस्थिति बतलावो ॥

आये नवों सामने नृप के, हाथ जोड़ कर हुए खड़े।
क्यों न बड़ों के बुलवाने पर, समझेंगे हम हुए बड़े ॥

बोले—दो-दो रुपया देते, देते साधारण भोजन।
नहीं श्रेणियां रखीं, रखे हैं- मध्यम श्रेणी के साधन ॥

☐ विशेष आदेश

विशेषता देने से ही तो, बढ़ता है उत्साह नया।
प्रथम श्रेणि में इनको लेलो, कार्य श्रेष्ठ है किया गया ॥
इन्हें आज से दुगुने रुपये, साथ श्रेष्ठ ही दो भोजन।
प्रोत्साहन के द्वारा ही तो, दुगुना बढ़ जाता है मन ॥
हानि नहीं कुछ, लाभ अधिक ही- होगा ऐसा करने से।
काम नहीं सुन्दर हो सकता, अति व्यय द्वारा डरने से ॥

"महीपाल" ने कहा—नृपति की, दया-दृष्टि बरसी हम पर।
हम पर क्या बरसी है करुणा, बरसी सत्य परिश्रम पर ॥

☐ नृप का प्रश्न

नृप ने कहा—'आपके सुत तो- तीन, और हैं बहुएं चार।
एक पुत्र द्विकलत्र आपका, लगता ऐसा मुझे विचार ॥

"नहीं पुत्र द्विकलत्र, पुत्र की- कथा व्यथामय कह डाली।
नहीं कभी भी छिप सकती है, व्यथा-घटा जो है काली ॥"

"अच्छा आप कहां से आये? कैसा रहा प्रवास कहो?
वृद्ध आप हैं करें कार्य वह, जिसमें अधिक प्रयास न हो ॥"

जब से चले तभी से लेकर, जीवन-वृत्त सुना डाला।
नृप को लगा इस तरह मानो, पीता हो विष का प्याला ॥

"अच्छा! तब तो आप सभी हो, क्षत्रिय कुल के शील धनी।
आप सभी के जीवन पर हैं, विपदाएं हैं आज बनी ॥
दूध, दही, घृत कहां प्राप्त हैं, तक्र नहीं जब पीने को।
बहुत दुःख से कमा रहे हैं, करते श्रम हैं जीने को?
छोटी बहु को भेज महल से, प्रातः तक्र मंगा लेना।
काम करो आराम करो बस, दुख का क्या लेन-देना ॥

▫ आश्चर्य फैल गया

ऐसे कहकर चला गया नृप, सोच रहा क्षत्रिय "महिपाल।"
"महाशालपुर" के राजा का, राज्य सदृश है हृदय विशाल ॥

मेरे जैसे दीन व्यक्ति पर, कितनी दया दृष्टि करदी।
सूखी काया में राजा ने, नई चेतना - सी भरदी ॥
लोगों ने आश्चर्य किया है, आज हुई यह कैसी बात !
दयाशील राजा ने इतनी, बातें क्यों कीं इनके साथ !!
सारा जीवन-वृत्त पूछकर, कितना स्नेह दिखाया है !
कौटुम्बिक सम्बन्ध पुराना, मानो चलता आया है ॥

□ तक्र के साथ दधि

"महीपाल" की अनुमति पाकर, "शीलवती" होकर तैयार।
प्रातःकाल तक्र लेने को, पहुंची राजमहल के द्वार ॥
द्वारपाल ने किया निवेदन, आज्ञा कर दी उसे प्रदान।
आज्ञा बिना प्रवेश न मिलता, राज-महल का यही विधान ॥
"शीलवती" को नृप-आज्ञा से, मिला तक्र के साथ दही।
दही, तक्र पाकरके आत्मा, अधिक हर्ष से नाच रही ॥

"महीपाल" ने तक्र दही जब, देखा उमड़ा हर्ष अपार।
सोचा—'अब कष्टों से अपना, हो जाएगा जीर्णोद्धार ॥'
प्रतिदिन राजमहल में जाकर, तुझे तक्र लानी होगी।
राजा जी यदि दानी हैं तो, रानी भी दानी होगी ॥

फटी-पुरानी चोली पहने, जाना उचित नहीं रहता।
इसे बदलकर कल जाना तुम, "महीपाल" ऐसे कहता॥

"शीलवती" ने कहा—इसे तो, बदल सकेंगे वे ही हाथ।
पूज्य पिता की प्रिय की भी क्या, दोनों साथ निभेंगी बात?

□ तक्र का दूसरा दिन

गई दूसरे दिन महलों में, "शीलवती" लेने को तक्र।
चोली लेकर नई हाथ में, लगा बोलने नृपति अवक्र॥
फटी-पुरानी चोली बदलो, नई पहनलो यह चोली।
राजा के सम्मुख भी वह तो, दृढ़ता-पूर्वक ही बोली॥

बदल न सकती इस चोली को, बदलेंगे प्रिय-हाथ इसे।
इसे बदलने वाली सारी, कहो सुनाऊं बात किसे?

□ भय भी बताया

"मेरे कहने पर भी क्या तू, नहीं बदल सकती चोली?
यहीं क़ैद करली जाएगी, नहीं समझती तू भोली!"

भय का नहीं प्रभाव पड़ा कुछ, निज निश्चय पर रहो अडोल।
"चन्दन" निर्भयता के होते, सत्य और ओजस्वी बोल ॥

मेरा जूड़ा मेरी चोली, पाकर प्रिय-कर का प्रिय स्पर्श।
खुल सकता है समझ लीजिये, मेरा यह अन्तिम आदर्श ॥
हृदय नहीं बदला जा सकता है, नृप की आज्ञा के द्वारा।
नृप-आज्ञा के द्वारा केवल, दी जा सकती है कारा ॥
मरने का डर जिसे नहीं हो, कारा का क्या होगा डर।
जो डरता है वह होता है, झूठा अथवा कायर नर ॥

▭ मुझे पति मानलो

"शूरपाल" स्मित-युत यों बोला, मुझे मानलो पति अपना।
मिट सकता है रानी बनकर, जीवन भर का यह तपना ॥
अभी महल है मेरा सूना, उस पर तुम अधिकार करो।
धर्म-विरुद्ध नहीं है कुछ भी; अतः न अधिक विचार करो ॥

"नृपति! आप पालक हैं ऐसे- शब्दों का मत करें प्रयोग।
न्याय, सतीत्व, शान्ति की रक्षा, कैसे कर पायेंगे लोग ?
सत्य सतीत्व निगलने वाले, मिलते बहुत नराधम हैं।
इनकी रक्षा करने वाले, केवल राज्य-प्रसाधन हैं ॥"

देख चर्म-सौन्दर्य हृदय को, विचलित मत नृपराज! करें।
कह कर यो अश्लील वचन नृप! मुझ को मत नाराज करे ॥

▫ नृप के ही नर

राजा के संकेतित नर यो, बोल उठे जो पास खड़े।
है भोली तू नही समझती, राजा प्रेमी बहुत बड़े ॥
अन्य अनेक नारियां होते, नृपति चाहने लगा तुझे।
तेरी क़िस्मत जाग उठी है, रानी का पद मिला तुझे ॥
नहो उपेक्षा-भाव दिखाओ, सकेतो का समझो मूल्य।
रानी बन जाने का शुभतम, अवसर तुझको मिला अमूल्य ॥

□ कड़ा प्रतिवाद

"शीलवती" की चढी त्योरिया, किसे भुलावा देते हो ?
छाछ–दही का बना बहाना, शील यहा पर लेते हो ॥
याद रखो मेरी काया का, स्पर्श नही कर पाओगे।
"शीलवती" की दुराशीष से, जीते जी जल जाओगे ॥
मेरा स्वामी कर पाएगा, जीते जी इस तन का स्पर्श।
मर जाने पर स्पर्श करेगा, अग्नि देवता इसे सहर्ष ॥

नहीं चाहिये छाछ--दही कुछ, जाने का दो अब पथ छोड़।
नहीं अकेली मुझे मानिये, एक नहीं मैं एक करोड़॥
जिसको शील पालना उसको, कौन देखता रहता साथ ?
अपने को सम्भाले रखना, अपने ही हाथों की बात॥
मनसा, वाचा और कर्मणा, अपना धर्म निभाऊंगी।
मर जाऊंगी हाथ तुम्हारे, कभी न मैं आ पाऊंगी।

▭ "शूरपाल" को हर्ष

राजा सुनकर हुआ प्रभावित, नारी क्या है रत्न महान।
आंख उठाकर नहीं देखती, नहीं बात पर देती ध्यान॥
नहीं कान से भी सुन पाती, शील डिगाने वाली बात।
सास, ननद, जेठानी में से, कोई नहीं यहां पर साथ॥
शील-परीक्षा में यह नारी, हुई पूर्ण उत्तीर्ण यहां।
ऐसा नारी-रत्न लोक में, मिल सकता है अन्य कहां ?

▭ मुझे पहचाना जाए

बोला–'प्रिये ! उठाओ आंखें, जरा मुझे अब पहचानो।
"शूरपाल" मैं ही हूं मुझको, नहीं दूसरा नर मानो॥

मैंने ही बांधा था जूड़ा, मैंने पहनाई चोली।
शीलवती! तू धन्य! धन्य! है, नहीं शील-पथ से डोली॥
निकला था ले खड्ग हाथ में, बात रात को याद करो।
मिलने के इन मधुर क्षणों में, मिल करके आल्हाद करो॥
राज्य-सम्पदा मिली यहां पर, सारा वृत्त कहा संक्षिप्त।
अग्नि-परीक्षा के द्वारा तब, शील-सत्य परखा उद्दीप्त॥

☐ पहचान लिया

"शीलवती" के अन्तर मन को, आया शब्दों से सन्तोष।
देखूं आंख उठाकर इसमें, नहीं लगेगा कोई दोष॥
प्रिय को पहचाना, अब माना- जीवन अपना पूर्ण सफल।
क्षण में वातावरण महल का, "शीलवती" ने दिया बदल॥
किया प्रणाम सती ने झुककर, "शूरपाल" के चरणों में।
प्रेम छिपाया क्या छिपता है, "चन्दन" देहावरणों में?
प्रेम इधर का उधर आगया, दोनों ने दिल लिया बदल।
इस लोटे से उस लोटे में, पय होता ज्यों उथल-पुथल॥

☐ दोनों का साथ

मर्दन, उबटन, स्नान विलेपन, होने पर पहना परिधान।
सभी वस्तुओं का जीवन में, यथायोग्य होता है स्थान॥

"शूरपाल" के साथ बैठकर, किया अलंकृत अर्द्धासन।
मन्त्री सामन्तों के द्वारा, किया गया है वर्धापन॥
"शीलवती" को पाकर के नृप, मान रहा अपने को धन्य !
"चन्दन" दृढ़ विश्वास कीजिये, सुख सारे हैं सुकृत-जन्य॥

☐ सुखी होगये

सुनी, सुनाई बीती बातें, बातों का क्या होता अन्त ?
बातों के द्वारा ही मिलते, "चन्दन" गुप्त रहस्य अनन्त॥
सुख को मुख न दिखा सकता दुख, हुआ पलायन क्षण भर में।
प्रश्न पूछने में सुख मिलता, सुख मिलता प्रत्युत्तर में॥
मुख अवलोकन से सुख मिलता, वाणी सुनकर सुख मिलता।
अंग-स्पर्श से सुख मिलता है, सद्गुण चुनकर सुख मिलता॥
मिलने से भी सुख मिलता है, सोच-समझ कर सुख मिलता।
कभी प्रेम की चर्चा में ही, उलझ सुलझ कर सुख मिलता॥
सुख की मधुर कल्पना से भी, सुख माना जाता मन का।
सुख से अलग नहीं है कोई, सुख-धन मानव-जीवन का॥

सुख की क्या परिभाषा कोई, स्थिर कर पाया है विद्वान ?
तृप्ति मानसिक जिससे होती, उसे दीजिये सुख का स्थान॥

दुख सुख मे, सुख दुख मे परिणत, लगता है पल एक नहीं।
दुख क्या है? सुख क्या है? इसका, "चन्दन" सरल विवेक नहीं॥

दोनो सुखी होगये मिलकर, सुख पूर्वक अब मिलने दो।
"महीपाल" की क्या स्थिति है बस, हमे वही पर चलने दो॥

□ "महीपाल" को सूचना

"शान्तिमती" भी "शीलवती" के, साथ इसी दिन आई थी।
बेचारी नृप-रोष देख कर, मन में वह घबराई थी॥
दौड़ी-भागी आई घर पर, सारा सत्य सुनाया हाल।
"शीलवती" को रुष्ट नृपति ने, दिया जेल में निश्चित डाल॥
घर वालो ने हर्ष मनाया, व्याधि गई अपने घर को।
समझाने पर जो न मानता, दुर्गति होती उस नर को॥
जो कुछ हम करने-कहते तो, होता सामाजिक अन्याय।
दुनिया भी बस यह कह देती, बेचारी अबला है गाय॥
इतने दिन तक हमे दिया दुख, अब दुख भोगेगी वह आप।
आज्ञा नही मानने का भी, क्या न लगा करता है पाप?
अगर बदल लेती चोला तो, क्यो नृप देते कारा में।
वास्तव में सच कहा गया है, बुद्धि न होती दारा में॥

कल ही मैंने टोका उसका, फल सम्मुख आया सारा।
अच्छा हुआ, नृपति ने ऐसी, दारा को देदी कारा॥
राजाज्ञा का रखा हुआ है, अणुव्रतों में भी आगार।
नृप-हठ के सम्मुख हठ रखना, होता इसका क्या आधार?
मेरे से भी बुद्धि स्वयं में, सदा अधिक माना करती।
इसीलिये तो अपना ही हठ, दृढ़ता से ठाना करती॥
"शूरपाल" कब आएगा कब, चोली बदली जाएगी।
उतने दिन तक इस चोली का, कैसे साथ निभाएगी!!
कैसे जूड़ा रख पाएगी, इसे कौन समझाए नर।
मूर्ख मनुष्य हारने से ही, पथ पर आता है आख़िर॥

मर जाने पर भी हम कोई, शोक मानते नहीं कभी।
"शीलवती" की सुध लेने को, जाएंगे हम नहीं अभी॥

□ हठ नहीं, दृढ़ता

सत पर डटने को हठ कहना, शठता से रखता सम्बन्ध।
दृढ़ता अगर नहीं होती तो, पन्थ प्रगति के होते बन्द॥
बुद्धि निश्चयात्मक रखने से, सुन्दर फल पाया जाता।
यह छोड़ा वह ग्रहण किया यह, उचित न बतलाया जाता॥

सोचो, समझो, लो निर्णय फिर, लिये हुए को पार करो।
पुनर्विचार करो लेकिन मत, शिथिल सत्य आधार करो ॥
"महावीर" ने लिया अभिग्रह, क्या उसको हठ मानोगे ?
"महावीर" की महावीरता, या इससे पहचानोगे ?
"शीलवती" की सत्य प्रतिज्ञा, पर-नर को क्यों पति माने।
अपना शील बचाने को वह, क्यों न बताओ हठ ठाने ?

"महीपाल" की निष्ठुरता

"महीपाल" ने नहीं किसी के, सम्मुख इसका जिक्र किया।
नहीं किसी भी घर वाले ने, दुर्घटना पर फिक्र किया ॥
जेठानियां कुछ दुखी हुई हैं, फिर भी दिया न उस पर ध्यान।
क्योंकि उन्हें थी देरानी वह, कुछ-कुछ प्यारी बहन समान ॥
नहीं छाछ लेने को कोई, गया महल में इसके बाद।
सोचा महलों में जाने से, होगा बन्धन और विशाद ॥
करते काम, शाम हो जाती, फिर विश्राम तथा आराम।
"चन्दन" उदासीनता का भी, कभी निकलता शुभ परिणाम ॥

नृपति का आदेश

नृप ने कहा–'किसी के सम्मुख, करना नहीं आज की बात।
बात आज की जो भी बीती, आप और हम उसमें साथ ॥

यह मेरी पत्नी है इसको, पाने का यह पुण्य प्रयास।
यथा समय डाला जाएगा, इस घटना पर पूर्ण प्रकाश।।

▭ भोजन का आमंत्रण

भोजन करने को आमन्त्रित, "महीपाल" को किया गया।
सभी सदस्य साथ में आएं, समय सुनिश्चित दिया गया।।
कहा गया था "शीलवती" को- भी जो लखना चाहेंगे।
आदर सहित सभी को दर्शन, उनके भी करवायेंगे।।
किसी किसम का कोई धोखा, नहीं आपके होगा साथ।
क्षत्रिय नहीं कभी भी कहते, मुख से कोई झूठी बात।।
अगर मिलेगा लाभ मिलेगा, नहीं हानि का कुछ भी काम।
बड़े प्रेम से—बड़े प्यार से, स्वागत होगा अति अभिराम।।

-'महीपाल" ने सोचा–'नृप की, कितनी कृपा हमारे पर!
भोजन करने को आमन्त्रित, करता हमको अपने घर।।
न्यौता और बुलावा आए, क्यों न जीमने को जाएं।
ठुकराएं जो नृप-आमन्त्रण, क्या न विपद ही वे पाएं।।
प्रेम सहित पर-घर पर भोजन, करने से बढ़ता है स्नेह।
प्रेम बिना क्या जाना "चन्दन", चाहे कंचन बरसे मेह।।

□ अनुपम आतिथ्य

यथासमय परिवार सहित हो, महलों में पहुंचा "महिपाल।"
द्वारपाल क्यों रोकेगा जिस- नर की नृप लेता सम्भाल ॥
सभी सदस्यों को नहलाया, पहनाये उत्तम परिवेश।
सज्जित किया अलंकारों से, जैसा था नृप का आदेश ॥
मर्दन, उबटन, स्नान, विलेपन, अग सुकोमल कर देते।
उस पर उत्तम वस्त्राभूषण, सुन्दरता भी भर देते ॥
अंग वही था रंग वही था, केवल बदल दिया था ढंग।
ढंग सीख लेने में बनते, सदा सहायक उचित प्रसंग ॥

"महीपाल" ने सोचा—कैसे, आतिथ्य-भावना नरवर की।
भेद-भावना की रेखा भी, उभरी यहां नहीं परखी ॥
इसके पीछे क्या कारण है ? समाधान कुछ मिल न सका।
समाधान मिलने का "चन्दन", समय नहीं था अभी पका ॥

□ नृपति के साथ

समय हुआ भोजन करने का, आसन बिछा दिये सारे।
रखीं सामने रूप्य चौकियां, स्वर्णिम थाल सजे प्यारे ॥

"शूरपाल" नृप का आसन भी, लगा सभी के साथ यहां।
साथ बैठ कर खाने का ही, माना पुण्य प्रताप यहां॥

□ मनोरथ की परिसमाप्ति

"शीलवती" सज्जित होकरके, परोसने को आती है।
कुछ सकुचाती शीश झुकाती, आगे बढ़ती जाती है॥
पांचों ही पक्वान्न परोसे, दाल-शाल-घृत-शाक गरिष्ठ।
सादर भोजन करवाने का, "चन्दन" पाया भाव वरिष्ठ॥

प्रिये! मनोरथ सफल करो यह, उत्तम अवसर आया है।
"शूरपाल" ने "शीलवती" से, सस्मित यों फ़रमाया है॥

□ मनुहार एक प्रथा

देख रही हो क्या इनको कुछ, और परोसो जी भरके।
बादामों की चार कतलियां, रखदो मनुहारें करके॥
सकुचाने से अतिथि-भावना, मन ही मन सकुचा जाती।
सदा अतिथि यह कहते रहते, नहीं चपाती अब भाती॥
और नहीं जी ! और नहीं हम, तृप्त होगये पूर्णतया।
उनसे बोलो—लेना होगा, कुछ लेने की करो दया॥

□ पान-सुपारी

भोजन से निवृत्त हुए अब, दिये गये मुखवास सभी।
जो न कभी खाए-देखे थे रखे आज वे पास सभी ॥
यह लो, यह लो थोड़ा-थोड़ा, चखो स्वाद इन सब का आप।
खाने में क्या शरमाना है, भूल-चूक कर देना माफ़ ॥

□ परिवार से मिलन

"शूरपाल" ने "महीपाल" को, ऊंचे आसन बिठलाया।
यथायोग्य सब बैठ गए जब, हर्ष हृदय में है छाया ॥
प्रकट हो रहा सब के सम्मुख, छिपा हुआ जो रहा रहस्य।
नहीं छिपाकर रख पाते हम, करना पड़ता प्रकट अवश्य ॥

"पूज्य पिता जी! पुत्र आपका, "शूरपाल" मैं हूं प्यारा।
मेरा नहीं आपका समझो, राज्य विशाल यही सारा ॥
बहू आपकी है यह रानी, जिसने भोजन करवाया।
किया मनोरथ अपना पूरा, साथ भाग्य ने दिखलाया ॥
अविनय माफ़ कीजिये मेरा, आप सभी हैं सदा बड़े।
मेरे सम्मुख हाथ जोड़ कर, उस दिन सारे हुए खड़े ॥

मैंने तो पहचान लिया था, आप नहीं पहचान सके।
काटा जाता खेत तभी हो, पूर्णतया जब धान पके॥
दुगुनी मजदूरी देने का, और नहीं कोई कारण।
कारण को पहचाने कैसे, नर की मति अति साधारण॥

माता जी के चरणों में भी, 'शूरपाल' ने किया प्रणाम।
गले लगाया मां ने सुत को, मिला उसे है पुत्र ललाम॥
ज्येष्ठ सहोदर और भाभियां, सब ने नमन किया स्वीकार।
प्रकट नहीं कर पाते कोई, छाया इतना हर्ष अपार॥
हर्ष चाहता मुझे रचयिता, नहीं बनादे शब्दाकार।
निराकार रहने में ही है, हर्ष हर्ष को अपरम्पार॥

□ "शीलवती" उठी

"शीलवती" का हर्ष फूट कर, बहा आंसुओं के द्वारा।
बोली–'क्षमा कीजिये मुझको, मेरा यह अविनय सारा॥
चोली जूड़ा बदल न पाई, सास-ससुर के कहने पर।
आप बहुत नाराज बने थे, मेरे वैसे रहने पर॥
अगर मान लेती मैं कहना, तो न मनोरथ यह फलता।
फलता वही मनोरथ "चन्दन", जिसके पीछे निश्छलता॥

□ परिवार का प्रतिनिधित्व

"महीपाल" बोला—'ओ बेटे! तेरा था सौभाग्य बड़ा।
बिना भाग्य के अनायास ही, राजा का पद कहां पड़ा ?
पाकर तुझे होगया मेरा, सारा जीवन आज सफल।
सुत सुविनीत दिया करता है, पूज्य पिता को श्रेय सकल ॥

बेटी ! शीलवंती है तूने, अपना पातिव्रत पाला।
व्रती-तपी की फेरा करते, लोग सुबह उठकर माला ॥
तुम दोनों ने किया हमारा, भारी कष्टों से उद्धार।
नहीं हमारे प्रति दोनों ही, बने कभी भी हैं अनुदार ॥
नहीं हमारे में से कोई, आया तेरी सुध लेने।
हमने तो व्यवहार किया था, तुझे और ही दुख देने ॥
उन सब बातों का अब हमको, होता पश्चाताप बड़ा।
हम लोगों ने ऐसा करके, किया मानसिक पाप बड़ा ॥

▭ बहू बोली

बोली बहू—'पिता जी ! यह तो, फला आपका आशिर्वाद।
बीते जीवन को मत करिए, आप इस तरह फिर-फिर याद ॥

पिता पुत्र का, पुत्रवधू का, अहित नहीं कर सकता है।
पिता पुत्र को सुखी बनाने, जीते जी मर सकता है॥
पुत्र पिता की सेवा के हित, करदे अपने को अर्पण।
इससे बढ़कर और नहीं कुछ, माना जाता संतर्पण॥

□ परिचय और विनय

"शूरपाल" ने राजमहल से, करवाया उठकर परिचय।
परिचय दिये बिना कोई नर, कर पाता है नहीं विनय॥
राजा द्वारा पूज्य, पूज्य वे- होते क्यों न प्रजा द्वारा।
राजा के पीछे ही सारा, चलता राजमहल प्यारा॥

□ किसी ने नहीं सोचा

"शीलवती" ने बचा-खुचा अब, भोजन किया प्रेम के साथ।
दोनों का दिल भरा गया है, दिया दान जब भर-भर हाथ॥
"शूरपाल" ने कभी न सोचा, होगा ऐसे मिलन मधुर।
यद्यपि मिलने को रहता था, "शूरपाल" प्रतिपल आतुर॥
शीलवती ने कभी न सोचा, पति राजा बन जाएंगे।
मेरे राजमहल में मेरे, सास-ससुर यों आएंगे॥

नहीं सास ने सोचा—'मेरी, बहू बनेगी पटरानी।
रानी भोजन करवा करके, बोलेगी मीठी बानी ।।
नहीं भाइयों ने सोचा यों, राजा होगा लघु भ्राता।
राजा बनने पर भी अपना, बना रहेगा शुभ नाता ।।
सचिवों ने सोचा था—राजा, होगा अभी कंवारा ही।
किन्तु आज आया महलों में, रहने को घर सारा ही ।।

□ "शूरपाल" की सेवा-भावना

सभी अग्रजों को राजा ने, अलग-अलग दे दिये प्रदेश।
नृपति मांडलिक इन्हें बनाकर, भ्रातृ-प्रेम रख लिया विशेष ।।
पूज्य पिता जी माता जी को, रखा महल में अपने पास।
सेवा करने का शुभ अवसर, देता "चन्दन" पुण्य-प्रकाश ।।
माता और पिता को प्रतिदिन, प्रातः करता पुण्य प्रणाम।
उनके पावन आशिष पाकर, करता राजकीय नित काम ।।

□ आचार्य 'श्रुतसागर'

"महाशालपुर" के उपवन में, आये "श्रुतसागर" आचार्य।
अ.यं किया करते हैं "चन्दन", जनोद्बोध का पावन कार्य ।।

पुरवासी यह समाचार सुन, दर्शन करने को जाते।
सुनकर के उपदेश सदा शुभ, तन मन पावन कर पाते ॥

आवागमन देख जनता का, नृप ने पूछ लिया ऐसे।
एकत्रित जन इसी दिशा में, आते-जाते हैं कैसे ?
शुभागमन आचार्यदेव का, हुआ सचिव ने बतलाया।
चलना हमें चाहिये ऐसा, स्वयं नृपति ने फ़रमाया ॥
अनुमोदन कर दिया सचिव ने, सपरिवार नृप आया है।
श्री सद्‌गुरु के दर्शन पाकर, फूला नहीं समाया है ॥

□ धर्म-देशना

धर्म-देशना दी सद्‌गुरु ने, समझाया है शाश्वत तत्त्व।
नहीं अशाश्वत तत्त्वों द्वारा, होता सुख के साथ समत्व ॥
सब कुछ आज किया जाता जब, धर्म करोगे कल कैसे ?
आप, आप के भाव आज के, बने रहेंगे कल ऐसे ?
पर्यायें परिवर्तित होतीं, क्षण-क्षण में इस जीवन की।
पता नहीं क्या स्थिति गति होगी, तन की, यौवन की, धन की ॥
किस निद्रा में सोए हो ? क्या- जाना होगा नहीं कभी ?
कृत कर्मों का फल तुमको क्या, पाना होगा नहीं कभी ?

समय हाथ से निकल न जाये, सावधान होकर रहना।
सम्मुख चोरों के आने पर, छिपा न रह सकता गहना ॥
आध्यत्मिकता से बनता है, अन्तर्मुख जीवन अपना।
अन्तर्मुखता आने पर हो, जगत लगा करता सपना ॥
सपना सच है या झूठा है, सपने जैसा है संसार।
व्रत की पाल बिना बांधे क्या, बंध पाता जीवन, काशार[1] ॥

▭ श्रावकत्त्व की स्वीकृति

सुनकर नृपति प्रभावित होकर, करता बारह व्रत स्वीकार
शक्ति देख करके कंधो की, 'चन्दन' लादा जाता भार ॥
अब नृप ने क्रम बना लिया है, प्रतिदिन जाने-आने का।
धर्म-ध्यान के लिये व्यक्ति को, होता समय बचाने का ॥
नही व्यवस्थाएं भी बिगड़े, सुधरे मानव की काया
प्रभावना है यही धर्म की, सद्गुरु ने है समझाया ॥

▭ पूर्व जन्म का प्रश्न

"शूरपाल" ने पूछा—भन्ते! मैंने क्या था दान दिया?
अनायास ही बड़ राज्य ने, राजा मुझको मान लिया

---

1 तालाब

'शूरपाल' का पूर्व जन्म अब, श्री गुरुदेव बताते हैं।
ज्ञानी अपना और पराया, जन्म देखते आते हैं॥

एक नगर था "क्षितिप्रतिष्ठित," "वीरदेव" था तेरा नाम।
बारह व्रतधारी तू श्रावक, करता नीति-रीति से काम।
गृहिणी का था नाम 'सुव्रता', धर्म-भावना में अनुरक्त।
जब अनुरक्ति धर्म पर होती, चित्त न होता विषयासक्त॥
किया अष्टमी तिथि का पौषध, और धर्म की जागरणा।
व्रतधारी के लिये बताई, अरिहन्तों ने वागरणा॥

▭ दान की भावना

समय पारने का जब आया, तेरे मन में उठा विचार।
अगर सुपात्र साधु आजाए, दान-लाभ लूं अधिक उदार॥
इतने ही में हुए दृष्टिगत, युगल तपस्व श्रमणो महान।
अनायास ही वीरदेव का, लगा साधु-सन्तों पर ध्यान॥
उठा पुलक कर नमस्कार कर, ले आया अपने घर पर।
एषणीय आहार और जल, वहराया कर भाव प्रवर।
उत्कट भाव दान के आये, आखों में से अश्रु गिरे।
इसी दान के द्वारा देखो, जीव अनेकों यहाँ तिरे॥

▢ दान का अनुमोदन

मुनि जी को पहुंचाकर वापस, आकर तू करता है हर्ष ।
दान-धर्म के प्रति श्रद्धा के, भाव पागये चरमोत्कर्ष ॥
ऐसा अवसर कभी-कभी ही, किसी-किसी को होता प्राप्त ।
मेरा जीवन सफल हो गया, हर्ष हो रहा मन में व्याप्त ॥
किया 'सुव्रता' ने भी मन से, और वचन से अनुमोदन ।
शुद्ध पाठ में किसी तरह का, किया न जाता सशोधन ॥
दोनों ने उस समय पुण्य का, भारी संचय कर डाला ।
मानो दुर्गति के द्वारो पर, लगा दिया हो दृढ ताला ॥

▢ दान की महिमा

दान नही देने वालो को, रहता केवल अपना ध्यान ।
ध्यान उसे रहता दुनिया का, 'चन्दन' जो करता है दान ॥
दानो सज्जन पूजे जाते, पूजे जाते कब धनवान ।
उदन्वान[1] के पास पहुँच कर, पय बन जाता क्षार प्रधान ॥
मुष्टिकदर्या[2] के दर्शन से, नाम ग्रहण से भी नुकसान ।
नाम उदारमना का लेकर, लोग किया करते प्रस्थान ॥

---

१ समुद्र । २ कजूस ।

गौएं दूध दिया करती हैं, कूएं देते स्वच्छ सलिल।
घटा न देखो पय दोनों का, जान रहा संसार अखिल॥
पत्र-पुष्प-फल देने से क्या, कभी टहनियां जातीं टूट?
देने वाले दुगुना पाते, शक्ति दान में भरी अखूट॥

भाग्य-योग्य यों प्रकृति दे रही, चाहे दैव तुम्हें देता।
देने वाले सज्जन से क्या, भाग्य भला वापस लेता?
देने वाला ही रखता है, लेने का अधिकार विशेष।
और अधिक लेने के खातिर, देते रहिये दान हमेश॥
प्राणदान दे करके भी तो, लोग बचाया करते प्राण।
शिरस्त्राण[1] के विना धूप से, कौन हमें दे पाता त्राण॥
भारतीय संस्कृति गाती है, दान दानवीरों का गान।
ऐसा कोई धर्म नहीं है, 'चन्दन' जो न मानता दान॥

कोई अगर नहीं देता तो, मिलता कुछ न तुम्हारे पास।
अध्यापक के देने पर ही, शिशु कर पाते ज्ञानाभ्यास॥
वत्सलता का दान पुत्र को, माता द्वारा मिलता है।
रूप-वर्ण-रस टहनी से ले, सुमन सुगन्धित खिलता है॥
आशीषें ही देते रहते, अन्तर आत्मा द्वारा वृद्ध।
पृथ्वी दान स्थान का देती, बनता तभी निधान समृद्ध॥

---

१. छाता।

और नहीं कुछ हो देने को, धन्यवाद ही देना जी !
वह भी अगर नहीं दे पाओ, मौन आप[1] ले लेना जी !

तुम वे हो

निरतिचार व्रत का पालन कर, देवलोक 'ईशान' गये ।
स्थान रिक्त होने पर ही तो, जन्मा करते देव नये ।।
'वीरदेव' का जीव तुम्हीं हो, "शूरपाल" कहलाये हो ।
क्यों न राज्य पाते जब इतना, पुण्य कमाकर लाये हो ।।
'शीलवती' है वही 'सुव्रता' रही तुम्हारे साथ वहां ।
जिसका हो सम्बन्ध पुराना, वह जा सकता छोड़ कहां ।।
दान, दान के अनुमोदन से, दोनों ही तुम बने सुखी ।
दान नहीं देने वाले ही, होते निर्धन दीन दुखी ।।
देते नहीं स्वयं, जो देता– उसे रोकते देने से ।
अन्तराय क्या चूका करता, अपना बदला लेने से ?
दान-पात्र की और दान की, निन्दाएं जो करते नर ।
इस भव में उस भव में भी वे, रहते पामर के पामर ।।
रखो भावनाएं देने की, देने का दिन आएगा ।
देने वाला देगा पहले, स्वयं बाद में खाएगा ।।

---

१. अर्थात दान के स्थान पर गाली मत देना ।

खाकर नहीं, खिला करके खुश, हो सकता है चित्त उदार।
सब धर्मों ने दान धर्म को, धर्म-सिन्धु का माना सार॥

▫ जातिस्मरण और दीक्षा

पूर्व जन्म-वृतान्त श्रवण से, 'जातिस्मरण' नृप ने पाया।
यथा देखते हम आंखों से, अपनी ही काया छाया॥
श्रद्धा ने पाई है दृढ़ता, चित्त बना है पूर्ण विरक्त।
धर्म-भक्त अविभक्त भक्ति से, बन जाता है गृह-परित्यक्त॥
'चन्द्रपाल' सुत को शासन का, सौंप दिया है सारा भार।
राजा, रानी, 'महीपाल' युत, निकले बनने को अणगार[1]॥
दीक्षा लेकर धर्म खपाकर, पाया 'केवलज्ञान' प्रवर।
मुक्तात्माओं का होता है, 'चन्दन' सिद्धशिला पर घर॥

▫ पूर्ति और शिक्षा

"चन्दन" इस संगीत का, दान-धर्म नवनीत[2]।
दान-धर्म से कीजिये, प्यारे पाठक! प्रीत"

---

१. साधु। २. माखन।

देता यह संगीत जब, ग्रहण करें हम ज्ञान।
हम आगे देते रहें, रखें एक ही ध्यान॥

परम्परा यह दान की, पलती रहे हमेश।
"चन्दन" इस संगीत का, हमें यही आदेश॥

▫ रचना काल

दो हज़ार पर तीस आ गया, विक्रमीय सम्वत का साल।
श्रेष्ठ वीर निर्वाण दिवस में, रचना करता 'चन्दनलाल'॥
गुरु-चरणों में अर्पण करदूं, मेरा कोई नहीं ममत्व।
श्री सद्गुरु जी ने सिखलाया, धर्म श्रेष्ठ है सदा समत्व॥

▫ रचना का स्थान

"बरनाला" की भक्ति हो गई, आज षोडशीया श्यामा।
रूप रंग अविभंग अंग का, फिर भी नहीं कहीं बामा॥
गुणग्राही, दानी, सत्संगी, सत्य धर्म प्रेमी सज्जन।
सद्गुण की सच्ची गंगा में, करते भाव सहित मज्जन॥

सेवा, श्रद्धा, धर्म-भावना— में आला है "बरनाला"।
।।।। "चन्दन मुनि" लिखता, संगीतों की यह माला ॥
। कवासी परम्परा में, सारे पलें फलें-फूलें।
"चन्दन" अपनी संस्कृति को हम, किसी जन्म में क्यों भूलें ॥

श्री भावचन्द्र जी सूरी द्वारा संस्कृत गद्य में लिखित (सम्वत १५३५) श्री शान्तिनाथ चरित्र ही इस कथानक की आधार-भूमि है।

□ ६ □

भौंरे की दशा

o

फंसे कमलिनी के फन्दे में
मधुकर ने बांधी आशा
यही तमाशा है दुनिया का।
उलट-पुलट देखो पासा

o

० ६ ० भौंरे की दशा

भौंरों का आकर्षण

शीतल जल से भरा सरोवर, खिले मनोहर विविध कमल ।
शतदल से जल, जल से शतदल, शोभान्वित होते अविकल ॥
खिले हुए कमलों से सारा, देता वातावरण सुगन्ध ।
नहीं छिपाये छिप सकते गुण, अवरोधक हों लाख प्रबन्ध ॥
मधुकर को मधुपान चाहिये, कमलों में है उसका स्थान ।
खिल-खिल कमल दे रहे मानो, सादर मधुपों को आह्वान ॥
मिला हमें जो कुछ जीवन में, कहते कमल करें हम दान ।
रस-दानी सत्पुरुषों का सब, करते आए हैं सम्मान ॥

फल पकने पर रस देते हैं, बोने से भू देती रस।
कविता-द्वारा कवि रस देते, देते हैं रस जलद बरस।
भोजन पचने पर रस देता, रस देते हैं सकल पदार्थ।
रस देने वाले का "चन्दन", क्या होता है अपना स्वार्थ॥
सदुपयोग इसका होता है, अगर लुटाया जाए रस।
व्यर्थ दुखा कर जीवन का रस, नहीं निकाला करते रस॥
खिलने पर यदि कमल न देता, भौरों को करने रस-पान।
इसका फिर उपयोग नही कुछ, कहते नीति-विज्ञ विद्वान॥

□ मधुप की भूल

पास कमल के पहुँच मधुप ने, गुंजन मिस गुण-गान किया।
बड़े दानियों ने भी स्तवना, सुनकर देखो दान दिया॥
बोला कमल—'खुली पंखुरिया, जितना पी सकते पीलो।
जीने का अधिकार मिला है, जितना जी सकते जी लो॥

सूर्य अस्त होने में केवल, समय बचा था अति थोड़ा।
आप जानते ही हैं पीते— पीते क्या जाए छोड़ा॥
समय-विवेक त्याग रस पीना, भौरों को देता नुकसान।
रसाधीन हो जाने पर ही, विस्मृत हो जाता है ज्ञान॥

कमलों के खिलने का अथवा, रस पीने का होता काल ।
अज्ञानी को फंस जाने का, अवसर आ जाता तत्काल ।।
भूखा था या चूका था या, ढूका था यह पहली बार ।
रस-लोभी ही खाया करते, हार करारी अथवा मार ।।

उड़ा नहीं भौंरा, उतने में, अस्त हो गया है आदित्य ।
आना इधर इधर जाना है, कहता रवि संसार अनित्य ।।
कमल-द्वार सब बन्द होगए, भौंरा निकल नहीं पाया ।
जब आया है होश ज़रा सा, तब मन में यों पछताया ।।

□ क्यों फंसता

अगर न करता लोभ यहां पर, फंसता क्यों मैं फन्दे में ।
जिस बन्दे में अक्ल न होती, वही चूकता धन्धे में ।।
मुझे पता था उड़ना है, पर— उड़ा नहीं यह भूल हुई ।
हाय ! भूल ही जीवन में अब, चुभने वाली शूल हुई ।।
कल क्या कमल नहीं खिलते, फिर आकर के पी लेता रस ।
रस का लोभ नहीं छूटा बस, इसीलिये क्या गया न फंस ?
रोऊं-धोऊं कितना ही मैं, खुल न सकेंगे शतदल-द्वार ।
द्वार खुले बिन कमल-कैद से, कैसे हो सकता उद्धार ?

काष्ठ कुरेद डालता भौंरा, नहीं कमल-दल सकता छेद।
नहीं आज तक खुलने पाया, छिपा हुआ जो इसमें भेद ॥
पीना था जितना पीया रस, पीने से भी ऊब गया।
हाय! हाय! इतना जल्दी क्यों, आज सूर्य भी डूब गया।
मैं देरी से आया जैसे, देरी से जाता मार्त्तण्ड।
उड़ने में देरी करने का, निश्चित मुझे मिला यह दण्ड ॥

सावधान रहने का मतलब, सदा समय का रखिये ध्यान।
स्थान पराए में फंस जाना, क्या न रसज्ञों का अपमान ?

भूल से शिक्षा

मेरी भूल देखकर शायद, नहीं दूसरे भूल करें।
मेरी दशा देख कर अपने— चरण प्रकृति अनुकूल धरें ॥
भूल बचा सकती भूलों से, रहा विधानों के अनुकूल।
भूल दुबारा हो जाएगी, भूल गए जो करके भूल ॥
नहीं दुबारा भूल करूंगा, शपथ खा रहा हूं मन से।
नहीं स्वाभिमानी हट सकता, सम्मुख ग्रहण किये प्रण से ॥
किसी तरह की भूल नहीं हो, वह नर सुर सम कहलाता।
भूल दुबारा नहीं कभी हो, वह नर का नर रह जाता ॥

बारम्बार जो भूलें करता, वह नर पशु समझा जाता।
ठोकर खाकर उठकर फिर भी, और ठोकरें ही खाता ॥

□ भविष्य की आशा

आशा एक करूं अब जिससे, काट सकूं अन्धेरी रात।
रात काटने को आयेगा, कौन दूसरा मेरे साथ ॥
रात्रि बीतने पर निश्चित ही, होगा सुन्दर पुण्य प्रभात।
सूर्य उदय हो जाएगा फिर, प्रमुदित होगा मेरा गात ॥
उड़ जाऊंगा उसी समय मैं, नहीं लगाऊंगा देरी।
खुल जाएंगे नीरज के दल, प्रिया मिलेगी फिर मेरी ॥

मन के लड्डू फोड़ रहा था, कमल-दलों में होकर बन्द।
भावी की आशाओं द्वारा, वह यों लेता था आनन्द ॥

□ हाथी खा गया

सूर्य उदय होने से पहले, आया वन से मस्त करी।
करूं विविध क्रीड़ाएं जल में, मन में है यह आस धरी ॥

जल क्रीड़ाएं की स्वेच्छा से, तोड़ खा गया कमल वही।
जिस में भौंरा बन्द पड़ा था, प्रथम आगया कमल वही ॥
कमल-नाल के साथ मधुप के, प्राणों का भी अन्त हुआ।
नहीं कमल से, गज के मुख से, बचने का है पन्थ हुआ ॥
रहे मनोरथ मन के मन में, दिन न निकलने पाया जी !
'चन्दन' प्रश्न पूछता बोलो, तत्त्व समझ में आया जी ?

▭ उपनय का सार

दुनिया वाले प्राणी भौंरे, फूलों पर मंडराते हैं।
रसाधीन बन कर अपने को, सब क़ैदी बनवाते हैं ?
समय बीतने से पहले तो, होते वे रस-मुक्त नहीं।
कहते ऐसा कर लेना क्या, बतलावो उपयुक्त नहीं ?
यह करना है—यह करना है, चिन्तन का कुछ अन्त नहीं ?
शेष नहीं कुछ करना ऐसा, अपना सकते पन्थ नहीं ॥
मन की इच्छाएं सब मन में, ले करके मर जाते हैं
आकर यहां पराया अपना, भला नहीं कर जाते हैं ॥

हाथी काल अचानक आकर, क्या न चबा कर खा जाता ?
चेतन भौंरा नहीं मौत से, किसी तरह भी बच पाता ॥

जल-क्रीड़ाएं की स्वेच्छा से, तोड़ खा गया कमल वही ।

भूलो मत, फूलो मत भौंरो! फूलों का रस पी करके।
सोचो किया और क्या करना, इस दुनिया में जी करके॥
करने वाला काम कीजिये, जिससे मरना नहीं पड़े।
करना वही सत्य कहलाता, फिर-फिर करना नहीं पड़े॥

ज्येष्ठ कृष्ण तिथि तीज मनोहर, 'जैतो मण्डी' उत्तम स्थान।
सम्वत् युग्म हज़ार पांच में, 'चन्दन मुनि' यह देता ज्ञान॥

जैतोमण्डी
२००५ जेठ

इस कथानक का आधार है निम्न लिखित संस्कृत सुभाषित

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं,
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्रीः।
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे,
हा हन्त! हन्त! नलिनीं गज उज्जहार॥

○ १० ○

आनन्द श्रावक

O

अवधिज्ञान पाने वाला वह।
श्रमणोपासक "श्री आनन्द ॥"
पढ़ना जो प्रारंभ करोगे।
कर न सकोगे पढ़ना बन्द ॥

O

○ १० ○ आनन्द श्रावक

▫ भूल न हो

पूर्ण सजगता रखिये पहले, कहीं नहीं होजाये भूल।
समझाने से भी क्यों अपनी, नहीं समझ में आये भूल ॥
बड़े-बड़े पुरुषों से भी तो, कभी-कभी हो जाती भूल।
भूल-भूल ही कहलाती है, भूल न हो सकती अनुकूल ॥
पूर्व-पाठियों ज्ञान-धारियों, मुनियों से भी होती भूल।
भूल-पात्र छद्मस्थ मात्र हैं, शास्त्र नहीं इसके प्रतिकूल ॥
सब से बड़ी भूल है यह ही, नहीं मानते हम निज भूल।
भूल सुधार नहीं यदि होगा, भूल तभी बन जाती शूल ॥

एक वार जो भूल होगई, पुनः न होने देना भूल।
प्रतिदिन भूलें करते रहना, निश्चित है यह विपदा मूल ॥
अपनी भूल देखिये पहले, औरों की फिर देखो भूल।
अपनी भूल छिपाने की मत, चेष्टा करिये आप फ़िज़ूल ॥

जान-बूझ कर भी हो जाती, कभी भूल से होती भूल।
भूल भूल से भरी हुई है, कभी न होती थोथी भूल ॥
भूल किसी की और किसी के, पास नहीं बतलाना भूल।
जिसकी भूल हुई हो उसको, प्रेम सहित समझाना भूल ॥
औरों की भूलें सुनने की, आदत भी कहलाती भूल।
आती भूल कहीं से आगे, आगे बढ़ती जाती भूल ॥
भूल मिटाने के ख़ातिर ही, दिखलाई जाती है भूल।
क्या न भूल करने वाले को, अन्दर से खाती है भूल ?
भूल दिखाने वाले नर की, भूल मानना गर्हित भूल।
कभी भूल इसकी पकड़ेंगे, यह चिन्तन भी निश्चित भूल ॥
कभी-कभी करवाई जाती, कान पकड़ कर भूल कबूल।
भूलें करने वाले नर पर, सदा समाज डालता धूल ॥

भूल भुलैयों से छुटकारा, पाने को मत जाना भूल।
'चन्दन' प्रभु-गुरु-धर्म-भक्ति के, गाने को मत जाना भूल ॥

नगर एक 'वाणिज्यग्राम' था, शोभाओं का धाम बड़ा।
शोभाओं के लिये सभी को, करना होता काम बड़ा ॥
गलियों में–बाज़ारों में कुछ, ऐसी साफ़ सफ़ाई थी।
समझ लीजिये स्वर्गपुरी ही, उतर धरा पर आई थी ॥
ज्ञान स्वच्छता का होने पर, ध्यान स्वच्छता का रहता।
स्थान-स्वच्छता रखने की बस, बात स्वास्थ्य-विद् जन कहता ॥
हृदय-स्वच्छता आत्म-स्वच्छता, माने गये मुक्ति के अंग।
सदा स्वच्छता से जीने का, 'चन्दन' सिखलाता है ढंग ॥

केवल बाह्य-स्वच्छता से नर, स्वच्छ नहीं बन पाता है।
इसीलिये आन्तरिक स्वच्छता, धर्म हमें सिखलाता है ॥
आप स्वच्छ हों स्वच्छ पड़ोसी, तभी स्वच्छता रह सकती।
बिना स्वच्छता कहीं बतावो, पवन स्वच्छ हो बह सकती ?
बुरे विचारों आचारों से, नाश स्वच्छता का होता।
स्वच्छ सदा सन्मानित होते, निश्चित गंदा जन रोता ॥
पानी स्वच्छ देख कर पीते, स्वच्छ देख करते भोजन।
क्यों न स्वच्छता-प्रेमी सज्जन, स्वच्छ बनायेंगे जीवन ?
स्वच्छ मनुष्यों से कब होते, चोरी और ठगी के काम।
चोरी ठगी नहीं होने से, मिलता है सब को आराम ॥

सुख से सोना, सुख से जगना, नहीं शिकायत तन-मन की।
विशेषताएं ये होती हैं, 'चन्दन' मानव-जीवन की॥
आवश्यकता क्या न धर्म की, सोचो जरा विचार करो।
जीना अगर शान्ति से है तो, पहले धर्म-प्रचार करो॥

☐ आनन्द गाथापति

गाथापति 'आनन्द' नाम का, उसी ग्राम में रहता था।
धर्म-भाव के महासिन्धु में, उसका मानस बहता था॥
द्वादश कोटि स्वर्ण मुद्राओं- से मण्डित था धन-भण्डार।
मितव्ययी था, सन्तोषी था, श्रम से करता था व्यापार॥
धन से बड़ा, बड़ा मन से भी, सद्‌गुण से भी बहुत बड़ा।
बड़ा वही बन सकता जो नर, न्याय-नीति पर रहे खड़ा॥
गुणी स्वयं हो गुणानुरागी, थोड़े होते ऐसे लोग।
गुणी-गुणी आपस में करते, गुण-वर्धन के नित्य प्रयोग॥

कृषि-पशु-पालन भी करता था, गौएं थीं चालीस हजार।
भारतमाता गौमाता से, भारतीय जन करता प्यार॥
दूध, दही, घृत की नदियां ही, बहतीं प्यारे भारत में।
कहां आज गो-पालन होता, कहो हमारे भारत में?

गईं भाड़ में खीर रबड़ियां, दुखी दुलारे भारत में।
नहीं छाछ भी सब लोगों को, मिलती सारे भारत में ॥
उन्नति कहते अवनति होती, नैतिक मूल्यों की दिन-दिन।
दुखी राष्ट्र है अपने दम को, मानो तोड़ रहा गिन-गिन ॥

▭ समवसरण की रचना

निकट उसी 'वाणिज्यग्राम' के, सन्निवेश था एक 'कुलाक।'
नृपति वहां 'जितशत्रु' नाम का, शत्रु मानते जिसकी धाक ॥
धर्म प्रजा का पल सकता है, धर्म पालता हो जब भूप।
प्यासे को जल पिला न सकता, सूख गया होगा जो कूप ॥

'महावीर भगवान' पधारे, रचा एक दिन 'समवसरण।'
तीर्थंकर के चरणों में ही, अशरण करते ग्रहण शरण ॥
समाचार पाकरके सारे, लोग चले करने दर्शन।
अतिशय धारी श्री जिनवर का, बड़ा प्रबल था आकर्षण ॥
राजा-प्रजा सभी आते हैं, सुनने को प्रभु के उपदेश।
प्रभु-वाणी से सब के संशय, होने लगे स्वतः निःशेष ॥
गाथापति 'आनन्द' वहां पर, दर्शन करने को आया।
आया नहीं कभी था पहले, आज प्रथम अवसर पाया ॥

पशु-पक्षी नर और नारियां, देव देवियां भी आईं।
'चन्दन' क्या वर्णित हो सकती, 'समवसरण' की छवि छाई॥
सिंह अजा से, नाग नकुल से, अश्व महिष से करता प्यार।
वैर-भावना क्यों जागेगी, जुड़ा हुआ प्रभु का दरबार॥

छोटे-बड़े सभी मिल बैठे, ऊंच-नीच का भेद नहीं।
भेद-नहीं होने से मन में, उपजा करता खेद नहीं॥
भेद भाव के बिना वरमती, प्रभु-वाणी ज्यों जल-धारा।
सत्य गृहस्थ धर्म बतला कर, महावीर ने जग तारा॥
घर में रहते हुए धर्म का, पालन कर सकता है नर।
अपने धर्म-कर्म के बल पर, तर सकता नर भव-सागर॥
व्याख्याएं की बारह व्रत की, समझाये अतिचार सकल।
उपदेशामृत बरस रहा था, पीते थे श्रोता अविकल॥

☐ 'श्रमणोपासक' बना

सुनकर प्रवचन चले गये जन, बैठा है 'आनन्द' अभी।
मिला उसे आनन्द आज वह, मिला नहीं आनन्द कभी॥
आत्मा का विश्वास जगा कर, उठकर आया प्रभु के पास।
प्रभुवर ! बारह व्रत लेने की, आज हुई मेरी अभिलाष॥

श्रावक और श्राविका बन कर, दोनों जीते जीवन शुद्ध।
शुद्ध धर्म के द्वारा ही तो, मानस होता अधिक प्रबुद्ध॥

☐ सम्यग् दृष्टि

देव एक 'अरिहन्तदेव' है, धर्म दयामय है प्यारा।
लिप्त नहीं होता दुनिया से, सम्यग्-दृष्टि सदा न्यारा॥
मंद-मन्द परिणाम वरतते, बन्ध नहीं पड़ते गाढ़े।
अगर देर तक नहीं उबालो, क्या बन सकते हैं काढ़े?
शिथिल बन्ध तोड़े जा सकते, दो अपने भावों पर बल।
सम्यग्दर्शन पाने से ही, 'चन्दन' होता जन्म सफल॥
सम्यग्दर्शन के द्वारा हो, होता कर्म-ग्रन्थि का भेद।
कर्म-ग्रन्थि का भेद समझलो, जन्म-मरण का मूलोच्छेद॥

☐ पूर्ण निवृत्ति

चौदह वर्ष बिताये ऐसे, श्रावक-धर्म निभा करके।
'पौषधशाला' में जा बैठा, सब धन्धे छिटका करके॥
अपने ज्येष्ठ पुत्र को सारा, सौंप दिया है घर का भार।
भार उठाये बिना नहीं निभ- सकता है घर का व्यवहार॥

धन की, धंधे की, परिजन की, ममता दूर हुई मन से।
मन से धर्म किये जाने पर, छूटा जाता बन्धन से॥
अगर नहीं निवृत्त चित्त हो, स्थिर रहते परिणाम नहीं।
अस्थिर परिणामों से प्रभु का, ले सकते हम नाम नहीं॥
अल्प काल की दीर्घ काल की, ले निवृत्ति शक्ति अनुसार।
दो घोड़ों पर चढ़ा न जाता, चाहे हो कोई असवार॥

ग्यारह पड़िमाएं श्रावक की, गाथापति आराध रहा।
समता साध्य बनाकर सच्चा, भली भान्ति से साध रहा॥

अवधिज्ञान

अनशन अब आमरण किया है, तज करके तन की ममता।
आकांक्षा अवशिष्ट नहीं है, इसे कहा जाये समता॥
नहीं जीविताशंसा मन में, मरणाशंसा नहीं रही।
सिद्ध स्वभाव छोड़कर अपना, नहीं वृत्तियां कहीं गईं॥
साध्य यही है, सिद्धि यही है, नहीं साधना कोई और।
समता को ही बतलाया है, सारे धर्मों का सिरमौर॥
समता बढ़ जाने से श्रावक, अवधिज्ञान पा जाता है।
अवधिज्ञान पाने वाले को, शुक्ल ध्यान आजाता है॥

प्रभु का आगमन

'दूतिपलाश' चैत्य में आये, प्रभुवर 'वर्द्धमान' भगवान।
स्त्री, पशु, पंडग से सूना, साताकारी था वह स्थान॥
उपदेशामृत पीकर जनता, चली गई है अपने स्थान।
सन्तों के कार्यों में श्रावक, नहीं डालते हैं व्यवधान?

'वज्रऋषभनाराच' संहनन, 'समचौरस' उत्तम संस्थान।
गौतम गोत्री 'इन्द्रभूति जी', 'महावीर' के शिष्य प्रधान॥
घोर तपस्वी, दीप्त तपस्वी, उग्र तपस्वी ममता-हीन।
छट्ठ-छट्ठ तप करने वाले, पहले 'गणधर' परम प्रवीन॥
कर स्वाध्याय ध्यान अब निकले, छट्ठ-पारणा लाने को।
'महावीर प्रभु' आज्ञा देते, शिक्षा के हित जाने को॥

संथारा सुना

'दूतिपलाश' चैत्य' से निकले, अचपल असंभ्रान्त है चित्त।
आये हैं 'वाणिज्यग्राम' में, लेने को आहार अचित्त॥
एषणीय आहार ग्रहण कर, जब वे वापस आते हैं।
श्रावक जी के संथारे की, बात वहां सुन पाते हैं॥

सुनकर गणधरदेव पधारे, श्रावक को देने दर्शन।
दर्शन देने में भी कितना, भरा धर्म का आकर्षण॥
गुरु 'गौतम' के दर्शन पाकर, आनन्दित होता 'आनन्द।'
श्रावक और साधु का 'चन्दन', धर्म-भावना का सम्बन्ध॥

श्रावक बोला—'हे गुरुवर! अब, उठने की तो शक्ति नहीं।
इसीलिये विधि-सहित आपकी, कर सकता मैं भक्ति नहीं॥
आप सन्निकट आजाए तो, गुरु-चरणों का स्पर्श करूं।
है आदर्श यही श्रावक का, और हृदय में हर्ष भरूं॥

सुनकर 'गौतम' निकट आगये, चरण-स्पर्श करता ।नन्द।
आनन्दानुभूति का माना, अपनी श्रद्धा से सम्बन्ध॥

गाथापति 'आनन्द' पूछता, गौतम गुरु से प्रश्न प्रशस्त।
अवधिज्ञान क्या पासकता है, घर में रहते हुए गृहस्थ?

'गौतम' बोले—'पा सकता है, अवधिज्ञान श्रावक घर में।
संशय को अवकाश न होता, पूर्ण विश्वसित उत्तर में॥

□ मेरा अवधि ज्ञान

हे भगवन् ! मैंने भी विस्तृत, अवधि-ज्ञान अब पाया है।
ऊर्ध्वलोक में प्रथम स्वर्ग तक, साफ़ सामने आया है ।।
अधोलोक में प्रथम नरक का, देखा 'लोलुच' नरकावास।
मध्यलोक की सीमाओं का, वर्णन बतलाता मैं खास ।।
उत्तर में हिमवंत वर्षधर- तक आता है मुझे नजर।
दक्षिण पश्चिम पूर्व दिशा में, लवण समुद्र के भीतर ।।
पांच-पांच सौ योजन तक मैं, देख रहा हूँ बिल्कुल स्पष्ट।
ज्ञान तभी मिल सकता 'चन्दन', ज्ञानावरण कर्म हो नष्ट ।।

□ हो नहीं सकता

सुनकर "गौतमस्वामी" बोले, इतना बड़ा न होता ज्ञान।
किया असत्योच्चारण इससे, प्रायश्चित्त करो धर ध्यान ।।

□ प्रायश्चित्त का भागी

सुन बोला 'आनन्द—मुझे प्रभु! एक बात तो बतलावो।
प्रायश्चित्त किसे आता है ? साफ़-साफ़ सब समझावो ।।

सत्य बोलने वाले को क्या, करना होगा प्रायश्चित्त ?
अथवा मिथ्याभाषी को ही, माना जाता है अपवित्त ?

मिथ्याभाषी दंडित होता, उत्तर में 'गौतम' बोले।
सत्य बोलने वाला सुरगिरि, प्रलयानिल से क्यों डोले ॥

"प्रायश्चित्त आप हीं करिये, जाकरके प्रभुवर के पास।
सच्चा श्रावक सद्गुरुओं से, कभी नहीं करता उपहास ॥"

▭ प्रभु का न्याय

'इन्द्रभूति' आश्चर्यान्वित हो, पास गये श्री प्रभुवर के।
सारी घटना लगे सुनाने, विधि-पूर्वक वन्दन करके ॥
दोनों में से कौन सही है ? प्रभुवर ! आप बतायें साफ़।
सुगुरु शिष्य का, नृपति पुत्र का, दोष नहीं कर सकता माफ़ ॥

"प्रायश्चित्त तुझे ही करना- होगा इसका हे गौतम !
श्रावक ने जो कुछ बतलाया, अर्थ पूर्णतः है सक्षम ॥
जाओ उसे खमाओ, सुनकर- 'गौतम' आये हैं चलकर।
नहीं खमाया जा सकता है, माया-कपट तथा छल कर ॥"

लगें खमाने श्रावक जी को, 'गौतम स्वामी' सरलमना।
मैंने जो कुछ बोला था वह, मेरा ही अपराध बना॥
प्रभु ने तुम्हें सत्य बतलाया, बतलाई है मेरी भूल।
पक्षपात की बात मुक्ति के- लिये न होती है अनुकूल॥

▫ अपनी बात

प्रभु ने किया विहार वहां से, सीझा श्रावक का अनशन।
'गौतम गुरु' की सच्चाई का, 'चन्दन' है यह दिग्दर्शन॥
सब से बड़े सन्त यों अपनी, भूल क़बूल किया करते।
भूल छिपाने को माया का, आश्रय नहीं लिया करते॥
सभी साधुओ में 'गौतम गुरु', सतियों में 'चन्दनबाला।'
'आनन्द' श्रावकों में थे उत्तम, जिनने सम्यक् व्रत पाला॥
सभी श्राविकाओं में 'सुलसा', सेठानी का नाम भला।
'महावीर प्रभु' के शासन में, किया इन्होंने काम भला॥

▫ आधार और समापन

सूत्र 'उपासकदशा' देखकर, रचा गया सुन्दर संगीत।
शिक्षा-प्रद संगीतों द्वारा, सीख लीजिये रीत पुनीत॥

सरल हृदय बन जाने से ही, पाया जाता सत्य महान।
सदा असत्याचरणों से ही, रुकता जीवन का उत्थान॥
पूर्ण सत्य को पाजाना कुछ, सरल नहीं होता 'चन्दन।'
सत्य कटुक होता है लेकिन, गरल नहीं होता 'चन्दन॥'

शिक्षा लोगे पाठको! करना कभी न भूल।
होजाए यदि भूल तो, करना उसे कबूल॥
इसी बिंदु पर लिख दिया, सुन्दर लघु संगीत।
ऋजुता से 'चन्दन' श्रमण, करता प्रीत-पुनीत॥

० ११ ०

सिर का मोल

o

सिर का मोल [समझ लेने को,
"सिर का मोल" पढ़ो संगीत।
मुख्य सचिव को समझाने के,
लिये 'अशोक' बताता रीत॥

o

□ ११ □

सिर का मोल

□ झुकने योग्य

सन्तों के चरणों में झुकते, चक्रवर्त्तियों के भी सिर।
अहं उतर जाता सिर पर से, जब जाते चरणों में गिर।।
पूज्य, गुणी, त्यागी के सम्मुख, कभी नहीं झुकता जो सिर।
ऊंचा होने पर भी वह सिर, नीचा माना जाता फिर।।
स्थान अहं का सिर में होता, इसीलिये कटता है सिर।
क्यों न चरण हैं काटे जाते, इसका उत्तर करलो स्थिर?
उत्तम-चरणों में झुकने से ही, उत्तमांग कहलाता सिर।
उत्तम पुरुष शीश पर कर रख, देते हैं आशीषें फिर।।

☐ सम्राट 'अशोक'

इतिहास-प्रसिद्ध एक घटना से, समझ लीजिये सिर का मोल।
शिरोधार्य सज्जन जन करते, सत्पुरुषों के सच्चे बोल ॥
सन्तों का जब दर्शन पाता, झुक जाता सम्राट'अशोक।'
संतों से आगे बढ़ने में, रुक जाता सम्राट'अशोक' ॥
सन्त पुरुष ही शान्ति-धर्म का, सिखलाते दुनिया को पाठ।
चरण-धूलि लेकर सन्तों की, शीश चढ़ा लेते सम्राट ॥
प्राणि-मात्र की हित-चिन्ता से, चिन्तित हो जाते हैं सन्त।
सभी प्राणियों को बतलाते, आत्म-शान्ति का सच्चा पन्थ ॥
सम्राटों के झुकने से क्या, सन्त बड़े हो जाते हैं?
सन्तों के चरणों में झुककर, नृप भी गौरव पाते हैं ॥
सन्त बड़े होते समता से, झुकने से सम्राट बड़े।
सुर 'सर्वार्थसिद्धि' वालों से, सन्तों के हैं ठाठ बड़े ॥
यथा सर्वथा सन्त सुखी हैं, तथा सुखी क्या सौधर्मेन्द्र?
भारतीय संस्कृति में 'चन्दन', सन्त रहे श्रद्धा के केन्द्र ॥

☐ सचिव की भावना

मुख्य प्रधान'अशोक' नृपति का, 'यश' था जिसका नाम भला।
उसको बहुत न अच्छा लगता, मुनि-वन्दन का काम भला ॥

अवसर देख एक दिन नृप से, बोला–सचिव सुनें महाराज !
आप साधुओं के चरणों में, क्यों झुकते होकर नर-राज ?
लोग जोड़ते जैसे वैसे, आप जोड़ देते हैं हाथ।
सभी तरह के लोगों से है, इन सन्तों का होता साथ ॥
वन्दन-अभिनन्दन के लायक, हो सकते ये लोग नहीं।
इन्हें वन्दना करने का क्या, लगा आपको रोग नहीं ?
मोल आपके सिर का कितना, इनके चरणों का क्या मोल।
सम्राटों से सन्त बड़े हैं, सहे न जाते ऐसे बोल ॥
झुकते हैं सम्राट आप जब, लज्जित होते सारे हम।
झुकता है बलहीन हमेशा, 'चन्दन' कब झुकता सक्षम ॥

मेरा नम्र निवेदन है यह, झुकना नहीं चाहिये जी !
हठी व्यक्ति यह कह सकता है, रुकना नहीं चाहिये जी !

▭ बुद्धि का अनुपात

नृपति 'अशोक' रोक कर मन को, सोच-समझ कर हुए खामोश।
मन्त्री का क्या दोष भला है, यह कर्मों का केवल दोष ॥
सन्त और शिशु तो होते हैं, परमात्मा के पावन रूप।
परमात्मा है वह भी, चलता, जो उनके पथ के अनुरूप ॥

ज़िसको जैसी बुद्धि मिली है, वैसी ही वह करता बात।
मतिमत्ता की बात बताने- का रहस्य क्या सब को ज्ञात?
उदाहरण के द्वारा 'यश' को, समझाना होगा उत्तम।
उत्तम पुरुष किया करते हैं, वाद-विवाद बहुत ही कम॥
'यश' मन्त्री ने मानव-सिर का, समझ रखा है मोल बड़ा।
बोल दिया करते हैं लघुमति, छोटे मुंह से बोल बड़ा॥

▫ मृतकों के सिर

नृपति 'अशोक' एकदा ऐसा, कार्यक्रम करता तैयार।
बुद्धिमान पुरुषों के द्वारा, खुलते नीति-कुशलता-द्वार॥
मृत पशुओं के सिर मंगवाकर, सजा दिये हैं सभी विशेष।
इन्हें बेचने का देते हैं, सभी सेवकों को आदेश॥
एक खोपड़ी ले मानव की, दी है 'यश' के हाथों में।
इसे बेचने आप जाइये, भाव भरा है बातों में॥

पशुओं के सिर शीघ्र बेचकर, आये हैं सेवक सारे।
नहीं खोपड़ी बेच सके 'यश', चेष्टाएं करके हारे॥
नहीं खोपड़ी किसी काम की, व्यर्थ न लोग खरचते दाम।
काम नहीं बन पाया अब तक, और होगई थी अब शाम॥

सचिव महोदय लिये खोपड़ी, वापस आये नृप के पास।
काम नहीं बनने से मानव, हो ही जाते सदा उदास॥
मृत पशुओं के सिर बिकने से, सेवक सारे देते वित्त।
नहीं खोपड़ी बिकने से ही, खिन्न हो रहा 'यश' का चित्त॥

□ 'यश' और 'अशोक'

'यश' बोला—मैं इसे बेचने, घूमा गली-गली बाजार।
नहीं मोल तक किया किसी ने, डरता है इससे संसार॥

भूपति बोला—वापिस जाएं, इसे मुफ्त ही दे आओ।
ऐसा कहीं नहीं हो जाये, लौटा करके ले आओ॥

आज्ञा पाकर गए दुबारा, मुफ़्त खोपड़ी देने को।
कोई भी तैयार न होता, इसे मुफ़्त भी लेने को॥
उसी तरह वापस आकरके, सुना दिये सारे हालात।
मृत-मानव की खोपड़ियों को, कोई नहीं लगाता हाथ॥
मेरे से भी, डरते हैं नर, देख खोपड़ी मेरे पास।
पास नहीं आते हैं मेरे, करते हैं मेरा उपहास॥

'हुआ आपको क्या है मन्त्रिन् ! क्षिप्त बने क्यों घूम रहे।
नर-कपाल ले जाकर घर में, क्यों कोई नर दुःख सहे।।

मृत पशुओं के सिर बिकते हैं, मृत नर का सिर नहीं बिका।
ऐसा कोई मिला नहीं जो, कमियां इसकी सके दिखा।।
प्रिय नरवर जी ! हर मानव को, घृणा खोपड़ी से भारी।
नहीं समझ में आता है कुछ, है क्या कोई बीमारी'।।

नृप बोले—'यदि मेरा सिर हो, तो क्या बिक सकता है? बोल।
क्योंकि चक्रवर्त्ती के सिर का, होता है लाखों का मोल।।'

सुन मन्त्रीश्वर बोल न पाया, मन की मन में बात रही।
दिया नहीं जा सकता उत्तर, नहीं बात भी हाथ रही।।

राजा बोला—'तुझे अभय है, जो कुछ हो बतलादे साफ़।
"यही हाल होगा" 'यश' बोला- मेरी गुस्ताखी हो माफ़।।

राजा बोला-- 'ऐसा सिर यदि, गुरु-चरणों में झुक जाये।
बतलादे क्यों चित्त किसी का, देख-देख कर दुख पाये ?

"मृत पशुओं के सिर विकते हैं, मृत मर का सिर नहीं बिका"

सही दिक्षा

'यश' बोला–नृप ! भूल होगई, मिटा आज मन का अभिमान।
इस घटना के द्वारा कितना, सुन्दर दिया आपने ज्ञान ॥
मुनिराजों के चरण-कमल में, झुकना कोई पाप नहीं।
मुनि-चरणों में शीश झुकाकर, छोटे होते आप नहीं ॥
गुणवानों का आदर करना, झुकने का है अर्थ यही।
बड़े आदमी ही झुकते हैं, झुकने की बस शर्त यही ॥
वज़नदार पलड़ा झुकता है, झुकती डाली फल वाली।
झुक सकता है जिसके मन ने, वृत्ति नम्रता की पाली ॥
झुकने वाले को ही झुक कर, करते लोग प्रणाम भला।
बिना झुके क्या हो सकता है, कोई भी व्यायाम भला ?
तन में जान जान हो मन में, तभी झुका करता तन-मन।
झुकने की शिक्षाएं देता, 'जगरांवां' में 'मुनि चन्दन ॥'
पूज्य मुनीश्वर 'रूपचन्द' की, नगरी यह कहलाती है।
यहां समाधि उन्हों की भारी, चमत्कार दिखलाती है ॥

"दो हज़ार उन्नीस" विक्रमी, मास श्रेष्ठ वैसाख चढ़ा।
झुकने और झुकाने वाला, संगीतों का पाठ पढ़ा ॥

जगरांवा
२०१९ वैसाख

१९

स्वभाव बदलो

बदलो बुरा स्वभाव स्वयं का,
अगर बदलना आता है।
रूप-रंग ज्यों भला सुहाता,
भला स्वभाव सुहाता है॥

० १२ ० स्वभाव बदलो

सभी नारियां जगत में, होती नहीं समान।
बदलो बुरे स्वभाव को, सुन प्रेरक आख्यान ॥

शील नहीं, सन्तोष नहीं हो, नहीं सत्य हो सेवा-भाव।
ऐसी पत्नी मिल जाने पर, नर पर पड़ता बुरा प्रभाव ॥
सदाचारिणी[1] दुराचारिणी, दोनों ही होती नारी।
इसीलिये बन जाया करती, क्रमशः प्यारी या खारी ॥

---

१ उक्तं च—
कृतज्ञस्वामि-संसर्गमुत्तम-स्त्री-परिग्रहम्।
कुर्वन्मित्रं मनोज्ञं च, नरो नैवावसीदति ॥

कटुक बोलने वाली नारी, गृह-भेद खोलने वाली हो।
क्यों प्रशंसनीय हो सकती, जो पति प्रेम से खाली हो॥

अगर स्वभाव नहीं है उत्तम, रूप-रंग का क्या है मोल।
पीतल के गहनों पर जैसे, चढ़ा रखा हो स्वर्णिम झोल॥
जल में. दधि में, पय में, चाहे, जिस में डालो मिल जाये।
मधुर स्वभाव बड़ा मिसरी का, जो देखे वह ललचाये॥
सब में घुल-मिल जाए ऐसी, मिलनसार है भला स्वभाव।
भला स्वभाव भरा करता है, पड़े अगर हों दिल में घाव॥

पत्नी अच्छी तो घर अच्छा, पत्नी बुरी बुरा है घर।
बुरी नारियों से ही घर के, है बिगाड़ का रहता डर॥
आने वाले घर पर आते, यश-अपयश होता घर का।
गृहिणी को गृह बतलाने का, भाव बड़ा ऊंचे स्तर का॥

८· एक कथा

किसी गांव में एक सेठ की, पत्नी थी दुःशील बड़ी।
ऐसा कोई बचा न घर में, जिस से हो वह नहीं लड़ी॥

गाली देती, पीट डालती, बकती जो आता मुख में।
सुख में शामिल हो जाती झट, दूर खिसक जाती दुख में ॥

सब से पहले खा लेती वह, ताज़ा-ताज़ा खाना जो!
पहले किसे खिलाना होता, इतना कभी न जाना जी!
आए हुए अतिथि का आदर, करना कभी न सीखा जी!
यश हो मानो, अगर न देती- सिर अपयश का टीका जी!
क्या घर वाले और पड़ोसी, तंग आगए थे इस से।
मन की कष्ट-कहानी 'चन्दन', बतलाई जाये किस से ॥

ज्वर का प्रकोप

एक बार बीमार पड़ी वह, ज्वर आया है अति भारी।
बेचारी का दिल घबराया, देख मृत्यु की तैयारी ॥

पति सेवाएं करता पूरी, औषधियां भी देता ला।
कहता–'अगर नहीं कुछ भाये, लेकिन ताज़ा फल तो खा ॥'

वह बोली–'मैं अगर मर गई, तो जीएंगे कैसे आप।
तन का ताप बढ़ा है जैसे, मन का और बढ़ा सन्ताप ॥

जितना दुख देती हो जीकर, मरकर उतना सुख दोगी।

□ बच गई-तो

"सुनो प्रिये! कुछ शान्त रखो मन, बोल रही हो, क्यों ऐसे ?
बची अगर तुम बीमारी से, तो मैं जीवूंगा कैसे ?
जितना दुख देती हो जीकर, मर कर उतना सुख दोगी।
सच है तेरे मर जाने पर, मुझे नहीं चिन्ता होगी ॥"

पति की बात कान से सुनकर, पलट गया है हृदय तुरन्त।
नारी नेक बनूंगी अब से, हो जाए जो ज्वर का अन्त ॥

□ चान्दनीय चिन्तन

बुरा स्वभाव हुआ करता है, नर-नारी तो बुरे नहीं।
बड़ा बुरा हो जाता है वह, 'चन्दन' चिन्तन फुरे नहीं ॥
मैं हूं भला बुरा या पहले, मन में अपने करो विचार।
अपने मन को बुरा लगे जो, करो न जग से वह व्यवहार ॥

नहीं बदलते सन्त-सुज्ञ जन, बदलोगे तुम अपने को।
ज्यों अनुभव करता आया नर, निश्चित अपने सपने को ॥

बहनो ! बुरा स्वभाव छोड़ कर, सरल स्वभाव बना लेना।
परिजन प्रियजन जो रूठे हों, उनको शीघ्र मना लेना ?
सुनो सयानी बहनो ! 'चन्दन- मुनि' का छोटा-सा संगीत।
सत्य, शील, सन्तोष, धर्म से, जोड़ लीजिये प्रीति पुनीत ॥
दो हज़ार उन्नीस विक्रमी, मास चढ़ा वैसाख भला।
'मोगा' में 'चन्दन' सिखलाता, यह जीवन-व्यवहार-कला ॥

मोगा
२०१९ वैसाख

▫ १३ ▫

लकड़हारा

८

प्रकट नहीं थी पकड़ नहीं थी,
नेक लकड़हारे की एक।
एक नियम के द्वारा देखो,
कैसे जागा नया विवेक॥

८

० १३ ० लकड़हारा

सत्संग-महिमा

सत्संगति की महिमा भारी, सारे शास्त्र बताते हैं।
बड़े भाग्य से बड़े पुण्य से, सत्संगति नर पाते हैं ॥
जल की बूंद सीप की संगति- पाकर बनती मुक्ताफल।
जल की बूंद सांप के मुंह में, गिरकर बनती हालाहल ॥
नौका की सत्संगति पाकर, लोहा भी तर जाता है ;
औषधियों की सत्संगति से, पारा भी मर जाता है ॥
सारे अवगुण हट जाते हैं, कट जाते भव के बन्धन।
सूखी लकड़ी के बदले में, मिल जाया करता 'चन्दन' ॥

श्रम से स्वास्थ्य, स्वास्थ्य से मिलता, जीने का आनन्द परम।
सत्संगति से संयम सधता, संयम ही है परम धरम॥
एक लकड़हारे का जीवन, छन्दोबद्ध सुनाता हूं।
इस प्रकार मैं निज भावों को, जनता तक पहुंचाता हूँ॥

'कम्पिलपुर'

'कम्पिलपुर' में 'रिपुमर्दन' नृप, सुख से करता था शासन।
शासन अच्छा होने से ही, स्थिर रह सकता सिंहासन॥
गलियों में बाज़ारों में भी, पूर्ण स्वच्छता सुखकारी।
स्वच्छ स्थान का मन आत्मा पर, होता असर सदा भारी॥
वन-उपवन की रचनाओं से, नन्दन-वन का आता ध्यान।
हरा-भरा रहने का हमको, हरियाली से मिलता ज्ञान॥
बावड़ियों से, तालाबों से, कूओं से मिलता जल मिष्ट।
जीवन वास्तव में जीवन है, सदुपयोग करते जन शिष्ट॥
जनता का व्यवहार मधुर था, था आपस में शुभ सहयोग।
सहयोगों के बिना सुरक्षित, कभी न रहते सुखोपभोग॥

सन्तोषी 'अकिंचन'

एक लकड़हारा उस पुर में, रहता नाम 'अकिंचन' है।
रहने को है एक झोंपड़ी, दारिद्रय-भरा बस जीवन है॥

बोझा एक लकड़ियों का ला, बेचा करता था प्रतिदिन।
पेट-गुज़ारा करने का बस, एक मात्र उसका साधन ।।
इस क्रम से श्रम से जीवन का, रथ पथ पर बढ़ता जाता।
ढला एक सांचे में जीवन, मानो था सड़ता जाता ।।

श्रमिक-संगठन

नहीं अकेला जाता वन में, जाते संगी-साथी मिल।
साथी मिलने से कामों में, लग जाया करता है दिल ।।
सम-व्यवसायी लोगों का ही, प्रेम परस्पर होता है।
धोबी धोबी के कपड़े क्या, पैसे लेकर धोता है?
"संघे शक्तिः कलौयुगे" का, सूत्र हमें देता सन्देश।
काम संगठन से होता है, नीति विदों का यह आदेश ।।
जाते साथ, साथ आते थे, साथ बेचते अपना माल।
माल बिकाने वाला कोई, उस युग में था नहीं दलाल ।।
क्रेता-विक्रेता दोनों ही, सरल और होते न्यायी।
अन्यायोपार्जित धन से कब, सुख पाता है व्यवसायी ।।
श्रमिक सुखी थे सुखी धनिक थे, दोनों में ही था सन्तोष।
असंतोष से एक-दूसरे- का बतलाया जाता दोष ।।
मानव को मानव प्यारा था, धन को माना जाता हीन।
उदासीन धनवाले रहते, जीवन जो हो प्रेम-विहीन ।।

□ अकेला ही था

माता पिता नहीं थे घर में, छोटा बड़ा नहीं भाई।
नहीं विवाह हुआ था इससे, पत्नी अभी नहीं आई॥
कोई नहीं झमेला, रहता- पड़ा अकेला रहता था।
स्वयं वनाता था खा लेता, इसी तरह दुख सहता था॥
रूखी-सूखी चिकनी-चुपड़ी, जो भी मिल जाती रोटी।
रोटी-दाल शान्ति से खाना, बात नहीं बिल्कुल खोटी॥
हलवा-पूड़ी स्वाद न देते, सच्चा स्वाद क्षुधा देती।
सुधा भोजियों को जैसे सुख, शान्ति अमूल्य सुधा देती॥

□ देरी का फल

सोया एक दिवस देरी से, और देर से आई जाग।
भाग-भाग कर कितना भागे; साथी इसे गए थे त्याग॥
आज अकेला आप जा रहा, वन की ओर उदास-उदास।
मिले सामने ज्ञानी मुनिवर, मानो इसको मिला प्रकाश॥

□ मुनि-महिमा

मुख पर है 'मुखपत्ति' मनोहर, दयाधर्म का एक निशान।
तन पर श्वेत वस्त्र का वाना, जैन-साधु की जो पहचान॥

गाली देती, पीट डालती, बकती जो आता मुख में।
मुख में शामिल हो जाती झट, दूर खिसक जाती दुख मे ॥

सब से पहले खा लेती वह, ताजा-ताजा खाना जी!
पहले किसे खिलाना होता, इतना कभी न जाना जी!
आए हुए अतिथि का आदर, करना कभी न सीखा जी!
यश हो मानो, अगर न देती- सिर अपयश का टीका जी!
क्या घर वाले और पड़ोसी, तंग आगए थे इस से।
मन की कष्ट-कहानी 'चन्दन', बतलाई जाये किस से ॥

ज्वर का प्रकोप

एक बार बीमार पड़ी वह, ज्वर आया है अति भारी।
बेचारी का दिल घबराया, देख मृत्यु की तैयारी ॥

पति सेवाए करता पूरी, औषधिया भी देता ला।
कहता—'अगर नही कुछ भाये, लेकिन ताजा फल तो खा ॥'

वह बोली—'मैं अगर मर गई, तो जीएंगे कैसे आप।
तन का ताप वढ़ा है जैसे, मन का और बढ़ा सन्ताप ॥

मुनि बोले–'क्या मानव-जीवन, इतना सस्ता मान लिया ?
इसको सफल बनाने को कुछ, क्यों न अब तक ध्यान दिया ?
सुना करो उपदेश कभी तो, किया करो सच्चा सत्संग।
पता नहीं कब उड़ती-उड़ती, कट जाए आयुष्य-पतंग ॥

कठियारा बोला–'हे भगवान् ! मुझको समय नहीं मिलता।
जन्मा है दारिद्र्य साथ में, नहीं हिलाने से हिलता ॥
कठिन परिश्रम से भी पूरा, पेट नहीं भर पाता है।
जीते जी भी निर्धन जन का, मानो मन मर जाता है ॥
नहीं काम से फुर्सत होती, कौन राम को याद करे।
अगर समय हो समझदार फिर, क्यों जीवन बरबाद करे ॥
कैसे जावूं सत्संगति में, कैसे श्रवण करूं व्याख्यान।
घर पर आये हुए अतिथि को, कैसे दूं दिल भर कर दान ॥
कैसे ज्ञान करूं जीवन का, नहीं अक्षरों की पहचान।
पता नहीं किसलिये बना हूं, मैं इस दुनिया में इनसान ॥

□ धर्म का स्वरूप

मुनि बोले–'सुन भाई ! होते, धर्म-ध्यान के भेद अनेक।
धर्म धर्मस्थानों में होता, ऐसा कहता नहीं विवेक ?

शुद्ध आत्म-भावों की परिणति, धर्म हमेशा रहता साथ।
नहीं समय से और स्थान से, बंधा धर्म का होता हाथ ।।
जीवन के प्रत्येक कार्य का, शुद्ध धर्म से है सम्बन्ध।
ऐसा अगर नहीं होता तो, धर्म नहीं देता आनन्द ।।
कभी किसी स्थानक आदिक से, बांधा जाता धर्म नहीं।
नहीं एक भी क्षण है ऐसा, जिस में बंधते कर्म नहीं ।।
शुभ-अशुभ संज्ञा फिर बनती, उसी कर्म के बन्धन की।
गहरी है पर बहुत सरल है, व्याख्या-शैली 'चन्दन' की ।।

▫ नियम ले सकते हो

अगर आपको समय न मिलता, क्या न नियम-व्रत ले सकते?
शुद्ध भावना दृढ़ता का क्या, परिचय कभी न दे सकते?
जो कुछ सध सकता हो वैसा धर्म नियम करलो स्वीकार।
केवल स्थानक ही आत्मा का, क्या कर सकते हैं उद्धार?

▫ नियम-ग्रहण

"सुनकर लगा सोचने मन में, क्या व्रत-नियम लिया जाये।
गुरु जी ने उपदेश दिया है, उसको मान्य किया जाये ।।

सोच-समझ कर अपने मन से, मुनिवर से वह यूं बोला।
एक नियम-व्रत ले सकता हूं, चाहे हूँ दिल का भोला॥
हरी लकड़ियां नहीं आज से, काटूंगा मैं जीवन-भर।
शुष्क लकड़ियों के द्वारा ही, भरा करूंगा मुने ? उदर॥
अगर न सूखी मिली लकड़ियां, भूखा ही रह जाऊंगा।
लिया हुआ व्रत-नियम प्रेम से, मैं सोत्साह निभाऊंगा॥
जाने दूंगा जान, आन को- जाने दूंगा नहीं कभी।
दृष्टिकोण समझा है मैंने, मेरे व्रत का सही अभी॥"

करण-योग युत नियम दिलाकर, मुनि ने कदम बढ़ाया है।
कर प्रणाम कठियारा भी अब, वन को ओर सिधाया है॥

□ मैत्री-भावना

टहने और टंहनियां कोमल, टूटेंगे क्यों अब मुझ से।
पुत्र-पुत्रियां वनदेवी के, रूठेंगे क्यों अब मुझ से॥
हरे-भरे वृक्षों को मुझसे, नहीं कभी भी होगा डर।
मेरा पावन नियम बनेगा, वन के लिये सदा सुखकर॥
रहें अभय, भय तजकर मन का, मन मस्ती में वे झूमें।
उठ-उठ करके ऊंचे-ऊंचे, नील गगन को वे चूमें॥

प्रेम-प्यार की भव्य भावना, अपने भावों से भाता।
लिया हुआ व्रत-नियम 'अकिंचन', शुद्ध निभाता है ज़ाता ॥
लाता चुन कर शुष्क लकड़ियां, हरी लकड़ियां देता छोड़।
मित्रों से, मित्रों के धन से, नहीं लगाई जाती होड़ ॥
श्रम पूर्वक भोजन जो मिलता, उस से ही रहता संतुष्ट।
खाया हुआ नहीं पचने से, कब काया होती है पुष्ट ?

▭ ऋतु परिवर्तन

ग्रीष्म-काल अब बीत गया है, वर्षाऋतु आई रिम-झिम।
मेघ-गर्जना द्वारा करती, अपने आने का डिंडिम ॥
काली-काली मेघ-घटाएं, उमड़-घुमड़ कर आती हैं।
नहीं शुष्कता हमें सुहाती, कहकर जल बरसाती हैं ॥
रंग-बिरंगा इन्द्र-धनुष है, करता लोगों को संकेत।
बनने और बिगड़ने के क्षण, आते रहते रहो सचेत ॥
सौदामिनी कामिनी लेती, मुख पर घूंघट बादल का।
दृश्य दिखाती चमक-चमक कर; प्राप्त हुए यौवन-बल का ॥
घटा छटा से घूम रही है, पाकर जवन पवन अनुकूल।
पति-पत्नी यदि साथ घूमते, कौन बता सकता है भूल ?
जिधर पसारो नजर उधर ही, है हरियाली-हरियाली।
क्या वनदेवी ने धरती पर, हरित शभ्र-चादर डाली ?

अंगुल भर भी सूखी धरती, आ सकती अव नजर नहीं।
ताप और सन्ताप जगत का, डर कर मानो छिपा कहीं।
रंग-विरंगे फूलों द्वारा, हंसती हास्य मधुर धरती।
नारी अपने शृंगारों का, अहंकार जैसे करती॥

नदियां कल-कल रव से बहतीं, कहतीं जाना दूर हमें।
वेग सलिल का बहने को बस, करता है मजबूर हमें॥
शीतल पवन कभी आता है, रुक जाता है कभी-कभी।
ऐसा लगता हवा-मान से, बरसेगा घन अभी-अभी॥
टर्र-टर्र की आवाज़ों से, मेंढक मान रहे आभार।
भरे हुए हैं ताल-तलैया, भरे हुए सारे कासार[1]॥
ज़ोर-ज़ोर से शोर मचाकर, मोर दिखाते सुन्दर नृत्य।
नृत्य-कला क्या दिखलायेंगे, भौतिकता के हों जो भृत्य :
जिसे चढ़ाया गया गगन में, पानी वह नीचे आता।
समझाता है नीच व्यक्ति का, नहीं स्वभाव कभी जाता॥
वहीं उचित होता है रहना, होता हो उपयोग जहां।
पानी से शिक्षण ले सकते, 'चन्दन मुनि' सब लोग कहां?

वर्षाऋतु आई या कोई, भू पर वनदेवी तूठी।
सूखी हुई जड़ों में भी अब, नव्य कोंपलें हैं फूटी॥

---

१ तालाब।

□ 'अकिंचन' की कठिनाई

गया 'अकिंचन' वन में लेकिन, इसकी इच्छा फली नहीं।
बोले साथी—'शुष्क लकड़ियां, तुझे मिलेगो नहो कहो ॥'
आप ढूढता मित्र ढूढते, लाता सूखी-सूखी देख।
नियम धर्म-धारी को होता, अपने व्रत का पूर्ण विवेक ॥
प्रतिदिन यह कठिनाई होती, परेशान है सब साथी।
साथी बोले—'नेम धर्म की, बात समझ में नहि आती ॥
तोड़ो नेम, धर्म यह छोड़ो, हरा होगया वन सारा।
सूखी लकड़ी मिलने का अब, रहा न कोई है चारा ॥
अगर न गोली काटेगा तो, क्या खायेगा–पीयेगा?
हमें यही चिन्ता होती है, अब तू कैसे जीयेगा?
इसके सिवा न धधा आता, मांगा जाए क्या आटा?
कैसे पूरा हो सकता है, शुष्क काष्ठ का यह घाटा?
तू मत काट, काट देगे हम, बोल तुझे क्या है मजूर।
इससे अधिक और करने में, हम तो सारे हैं मजबूर ॥

□ 'अकिंचन' का उत्तर

वह बोला—'तुम से कटवाकर, बेचूं उसके पैसे लू?
नहीं समझ में आता मेरे, ऐसे पैसे कैसे लू?

काटूं नहीं हाथ से जब मैं, कटवाऊं क्यों औरों से।
वह भी चोरी ही करता है, जो चुरवाये चोरों से॥
नहीं काटना-कटवाना है, तुम मत फ़िक्र करो मेरा।
तोड़ नहीं सकता हूँ मित्रो! मैं मेरे व्रत का घेरा॥

साथी गये सभी घर अपने, रहा अकेला वन में आप।
नहीं तोड़ सकता व्रत अपना, कितना भी पावूं सन्ताप॥

▫ ऊंचा मनोबल

बिना लकड़ियों के लौटूंगा, भूखों मरना है मंजूर।
हरी लकड़ियां नहीं काटना, नियम निभाना मुझे ज़रूर॥
साथी कहते—नियम तोड़दो, कहने में क्या होता हर्ज।
अपने नियम व्रतों का पालन- करना मेरा अपना फ़र्ज॥
इस वन से उस वन तक घूमा, कहीं न सूखा काष्ठ मिला।
फिर भी अपने नियम-धर्म से, लक्कड़हारा नहीं हिला॥
बैठ वृक्ष की छाया में अब, करता है विश्राम ज़रा।
हरा-भरा वन सारा जैसे, मन भी इसका हरा-भरा॥
मन में ग्लानि धर्म के प्रति जो, आजाए वह धर्म नहीं।
जो संकट में होता विचलित, वह होता सत्कर्म नहीं॥

नहीं आंख में, हो घूंघट में, कहलाती वह शर्म नहीं।
धर्म नहीं फल दे सकता जो, समझा उसका मर्म नहीं॥
श्रद्धास्पद श्री सद्गुरु मेरे, दिला गए हैं नियम कठोर।
कठिन परीक्षा दूंगा अपनी, नहीं करूंगा मन कमजोर॥

मेरे गुरुवर नियम निभाते, जब आजीवन कठिन-कठिन।
व्रती व्यक्तियों के जीवन में, आते कठिनाई के दिन॥
पता नियम का तब चलता है, जब आता है कोई कष्ट।
श्रद्धा, भक्ति, शक्ति आत्मा की, हो जाया करती है स्पष्ट॥
कंचन कुन्दन बन पाता क्या, अगर वन्हि में गिरे नहीं।
मानव देव नहीं बन पाता, यदि कष्टों से घिरे नहीं॥
अपना दो बलिदान आन पर, मेरी संस्कृति कहती है।
मर जाता इन्सान, शान ही- बड़े शान से रहती है॥
एक बार फिर चक्कर काटूं, सूखी लकड़ी मिल जाये।
शायद मेरे मन की कलियां, आज भाग्य से खिल जायें॥
मन में लिये नियम की श्रद्धा, आगे क़दम बढ़ाता है।
नियम-धारियों को दृढ़ता का, सुन्दर पाठ पढ़ाता है॥

□ काम बन गया

एक गुफ़ा के पास देखता, शुष्क काष्ठ का ढेर पड़ा।
लगा सोचने—सोच रहा था, मैं क्यों इतनी देर पड़ा॥

मेरे लिये रखा यह किसने, इतना बड़ा लगाकर ढेर !
देर भले हो सकती है पर, कब हो सकता है अन्धेर ॥
कण वाले को कण मिलता है, मन वाले को मिलता मन।
'चन्दन' निभ जाया करता है, ऐसे प्रण वाले का प्रण ॥

वहुत दिनों तक चल सकता है, मेरा आसानी से काम।
सूखे ईन्धन का आयेगा, गीले से कुछ ज्यादा दाम ॥
सीधा यहीं चला आऊंगा, ले जाऊंगा नित भारा।
लिया हुआ जो सद्‌गुरु जी से, नियम निभाऊंगा प्यारा ॥
इतना भारी भारा बांधूं, पड़े नहीं ज्यों कल आना।
वीत गया दिन आज खोजते, इसका कल ही फल पाना ॥

▭ घर आगया

दुगुना भारा वांधा कस कर, घर की ओर चला आता।
घर आते-आते ही सूरज, अस्तंगति को पा जाता ॥
सोचा—'कल ही ठीक रहेगा, इसे वेचने जाना जी।
लगी ज़ोर से क्षुधा अभी तो, खाना मुझे वनाना जी ॥
चूहे चक्कर काट रहे हैं, पेट-पिटारी के अन्दर।
वाग वीच में उछलें-कूदें, जैसे लाल मुंहे वन्दर ॥

जैसे भी हो पहले इसका, यत्न बनाना ही होगा।
भूख-भवानी देवी जी का, भोग लगाना ही होगा॥

खाने का सामान जुटाकर, करने लगा रसोई आप।
लगा जलाने शुष्क लकड़ियां, जो लाया था सहकर ताप॥

□ अजेय क्षुधा

भूख बड़ी बलवान, भूख से, बड़ा नहीं कोई बलवान।
बड़े-बड़े बलवानों से भी, सहना भूख नहीं आसान॥
कामी काम भूलते देखो, और भूलते मानी मान।
ज्ञान भूल जाते हैं ज्ञानी, सहना भूख नहीं आसान॥
नहीं नींद आती भूखे को, भूखा कब सुनता उपदेश।
भूख मिटाने का होता है, सब से पहले यत्न हमेश॥
जीव मात्र को भूख सताती, लेते हैं आहार सभी।
भोजन पर आधारित रहते, जीवन के व्यवहार सभी॥
"प्रथम पेट पूजा" की देखो, सूक्ति यथार्थ सुनी जाती।
"त्यक्त्वा शतं भोजनं कार्यं", बात समझने है में आती॥
क्षुधा विजय कर, स्वाद विजय कर, शुद्ध तपस्या करते सन्त।
पंथ तपस्या का चारों में, कष्ट-साध्य होता अत्यन्त॥

भूख अनेक तरह की होती, उसका यहां नहीं उल्लेख।
तन से मन की भूख बड़ी है, देखा जाये यदि सविवेक ॥
भूख मिटाने का साधन भी, सात्त्विक नहीं रहा आहार।
शायद इसीलिये बढ़ता है, भ्रष्टाचार पूर्ण व्यवहार ॥
शुद्धि विचारों की करने को, शुद्धाहार-विहार करो।
'चन्दन मुनि' से जो सुनते हो, उस पर पूर्ण विचार करो ॥

"'अन्नं वै प्राणाः" का सचमुच, अर्थ 'अकिंचन' जान गया।
नहीं मार से हार मानता, हार क्षुधा से मान गया ॥

□ परीक्षक पहुँचा

उस संध्या को उसी नगर में, प्रीतिभोज का आयोजन।
किसी बाग में था आयोजित, मित्रों द्वारा सह भोजन ॥
पहुंचे मित्र पवित्र भाव से, पहुंचे आमन्त्रित सज्जन।
खाना और खिलाना भी तो, प्रेम निभाने का लक्षण ॥
किसी कार्यवश एक सेठ को, हुआ विलम्ब बड़ा भारी।
अब अविलम्ब पहुंचने की वह, करता ऐसे तैयारी ॥
राजपथों से जाऊंगा तो, देर अधिक हो जायेगी।
तब तो उपालम्भ लेने की, शायद वेला आयेगी ॥

उन गलियों से निकल रहा है, जिधर ग़रीबों के आवास।
चलते-चलते पहुंच गया है, उसी झोंपड़ी के वह पास॥
आई बड़ी सुगन्ध वहां पर, आगे बढ़ते नहीं क़दम।
यहां कहां यह वस्तु अनोखी, अचरज उपजा है इकदम॥
भूल गया दावत में जाना, चला सुगंध-इशारे पर।
क़िस्मत किधर-किधर ले जाती, समझ नहीं सकता है नर॥

गया झोंपड़ी में देखा तो, ढेर लगा है चन्दन का।
चूल्हे में भी चन्दन जलता, काम दे रहा इन्धन का॥
श्रेष्ठ 'बावना चन्दन' है यह, मूर्ख जलाये जाता है।
दाल चढ़ाई हुई देखलो, उसे हिलाये जाता है॥

☐ ले रुपया ले

बोला सेठ—'अरे कठियारे! भारा दे दे लकड़ी का।
यह ले एक रुपया नक़दी, जल्दी ले ले लकड़ी का॥
फेंका तुरत रुपया देखा, कठियारे का मन जागा।
आज काष्ठ-भारा लेने को, क्यों आया दौड़ा-भागा?
देता नहीं चवन्नी, देता- पूर्ण रुपया वह ही नर।
नज़र गड़ाकर देख रहा है, खड़ा लकड़ियां टकर-टकर॥

चमत्कार कुछ है लकड़ी में, नहीं बताता है यह गुण।
मुझको भी मिस कर लेना है, जैसे मिस करता मत्कुण॥

▭ नहीं बेचना

ऐसे सोच समझ कर मन में, उत्तर देता कठियारा।
अपना रुपया ले लो लाला! नहीं बेचना है भारा॥

बोला सेठ—जरूरत मुझको, नहीं बेचने की क्या टेक।
एक नहीं तो छः रुपय्ये, लेले चाहे इसके देख॥

"सुनो सेठ जी! मैं कठियारा, एक बात ही कहता हूं।
कह देता जो बात उसी पर, डटा हुआ फिर रहता हूं॥"

बोला सेठ—'जला मत लकड़ी, इससे जलता मेरा मन।
इसके सिवा नहीं है क्या बस, तेरे-घर पर कुछ इन्धन?

"क्यों न जलावूं? है यह मेरी", लकड़ी एक लगादी और।
बोला सेठ—'अरे कठियारे! तू मूर्खों का है सिर-मोर॥

फेंका तुरत रुपय्या देखा, कठियारे का मन जागा।

"मूर्ख नहीं हूँ सेठ ! ज़रा भी, इन्धन का मैं हूँ मालिक।
बड़ी फ़र्म के मालिक ! मुझको, मत समझो भोला बालक ॥
मेरी है यह वस्तु इसे मैं, बेचूं या करदूं इनकार।
अनधिकार चेष्टा करने का, नहीं आपको भी अधिकार ॥
आप जाइये अपने घर पर, मुझे सताती भूख अभी।
बातें और करेंगे मिलकर, और मिलेंगे कहीं कभी ॥

☐ ले एक लाख

बोला सेठ—'पांच सौ लेले, एक हजार? लाख ले फिर।
नहीं बेचने का कह करके, भला हिलाता है क्यों सिर?
बनिया बड़ा बात का पक्का, इसीलिये मैं यहां अड़ा।
तेरा भारा लेने को ही, एक घड़ी से यहां खड़ा ॥

☐ गुण बतलाओ

किसी परिस्थिति में भी मुझको, नहीं बेचना है भारा।
भारा लेने की चेष्टा का, भेद समझता मैं सारा ॥
लकड़ी जलने से दिल जलता, तो बतलादो इसके गुण।
गुण सुनने की लगी हुई है, अब तो केवल मन में धुन ॥

उसके बाद बेचने की बस, यदि होगी तो होगी बात ।
सौदा करने को बाकी है, अभी सामने सारी रात ।।

बड़ा हठी है

'बड़ा हठी है रे कठियारे ! क्यों करता इतनी शठता ?
बिना नरम होने से कोई, सौदा यहां नहीं पटता ।।
ऊंचा-नीचा होने से ही, बनता काम हमेश यहां ।
मुंह से निकली हुई बात जो, निभ सकती है बता कहां ?
गुण से क्या मतलब है तुमको, बात बेचने की कर तू ।
मन चाहा धन लेकर अपना, रिक्त खजाना ही भर तू ।।
नहीं आज तक किसी सेठ ने, लकड़ी का यह मोल दिया ।
मैंने भी हठ में आकरके, केवल मुंह से बोल दिया ।।
अभी-अभी तो ले सकता हूं, दे सकता हूं इतना धन ।
शायद देरा नहीं रहेगा, फिर इसको लेने का मन ।।

बात हाथ से निकल गई तो, रोयेगा आखें भर-भर ।
ऐसे भारें पड़े हुए हैं, सब कठियारों के घर पर ।।
भ्रम क्यों तुझे हो रहा भारी, लकड़ी के इस भारे पर ।
लक्ष्मी ही आई है मानो, मैं क्या आया द्वारे पर ।।

□ नहीं बेचना, नहीं बेचना

लम्बा-चौड़ा भाषण सुन कर, कठियारा हैरान हुआ !
नहीं ज़रा पहचान सका वह, क्यों इतना व्याख्यान हुआ !!

अच्छा सेठ ! आपकी इच्छा, रोटी मुझे पकाने दो।
नहीं मग़ज़पच्ची अच्छी है, आप बात सब जाने दो ॥
नहीं बेचना, नहीं बेचना, आप जाइये अपने द्वार।
नहीं बेचने का ही मेरे, सर पर समझो भूत सवार ॥

□ मैं जाता हूं ?

"बोला सेठ—सुनो मैं जाता, एक बार फिर सोचो तुम !
उत्तम अवसर नहीं गंवाओ, विस्तृत हठ संकोचो तुम ॥
नहीं जलावो चूल्हे में बस, इतना तो मानो कहना।
अगर जला डालोगे तो फिर, होगा दुःख तुम्हें सहना ॥"

□ क्या जाता है

"सहना होगा सह लूंगा दुख, रुकता नहीं जलाने से।
सेठ ! आपका क्या जाता है, गुन इसके बतलाने से ?

□ सेठ का चिन्तन

चन्दन हाथ नहीं आ सकता, बड़ा हठीला कठियारा
नहीं मानता है कैसे भी, मैं समझा करके हारा ॥
नहीं जानता चन्दन के गुण, फिर भी घुमा रखा है सिर।
अगर बता दूंगा गुण इसके, नहीं बेच सकता यह फिर ॥
वस्तु अमूल्य विनष्ट होरही, चन्दन के जल जाने से।
भला एक का हो जाएगा, गुण इसके समझाने से ॥
मेरे पास प्रचुर धन है ही, धन होगा इसके भी पास।
इसके सुख से मुझको भी तो, 'चन्दन' होना नहीं उदास ॥
क्या न पथिक को पंथ बताते? अज्ञानी को देते दान?
नहीं जानता हो जिसको भी, करवाई जाती पहचान ॥
मैंने मेरा लाभ देख कर, मांगा था इससे भारा।
अब तो उत्तम यही रहेगा, भेद बता देना सारा ॥

□ "बावना चन्दन" है

"लकड़ी नहीं समझिये है यह, श्रेष्ठ 'बावनाचन्दन' जी !
नहीं जानने से हीं चन्दन, बना हुआ है इन्धन जी !
सवालाख सोनैयां लगतीं, मण भर यदि लेने जाएं।
पाएं बड़ी कठिनता से ही, गुण इसके क्या बतलाएं ॥

दाहज्वर मिट जाता तन पर, इसका लेप लगाने से।
तप्त तेल शीतल हो जाता, केवल बून्द गिराने से ॥
चन्दन आखिर चन्दन ही है, चन्दन सम कुछ और नहीं।
चन्दन में जो गुण मिलते हैं, मिल सकते क्या और कहीं ?
यहां उत्सवों में चन्दन का, तिलक लगाया जाता है।
शान्त दिमाग़ बना रहता है, गुण अद्भुत दिखलाता है ॥
वस्तु अमूल्य मूल्य क्या इसका, चढ़ी तुम्हारे हाथ भली।
इसीलिये इसको पाने हित, मैंने इतनी चाल चली ॥
नहीं दाल गलने दी तूने, तू भी निकला हठी बड़ा।
बतलाना ही पड़ा भेद सब, रहता कब तक अड़ा खड़ा ॥"

▭ उपकार का बदला

सुनकर कठियारे ने फ़ौरन, जल से कूल्हा शान्त किया।
बल ने छल ने सदा जगत में, सदा सभी को भ्रान्त किया ॥
बोला—अगर न आप बताते, जला डालता मैं सारा।
अथवा सूर्य उदय होते ही, बेच दिया जाता भारा ॥
वस्तु अमूल्य हाथ से जाती, आता कुछ भी हाथ नहीं।
अन्य किसी से और आप से, मैं तो करता बात नहीं ॥
इतनी देर लगा करके भी, आखिर बतला डाले गुण।
गुर बतलाने वाले का ही, हमें मानना पड़ता ऋण ॥

गिरा सेठ के चरणों में वह, बोला—'किया बड़ा उपकार।
एक बड़ी लकड़ी चन्दन की, 'चन्दन' देता है उपहार ॥
मात्र मुझे गुण बतलाने की, भेंट आपको यह करता।
'चन्दन' और आपके सद्गुण, सदा रहूँगा मैं स्मरता ॥

□ यही होता है न ?

बोला सेठ—दोष क्या तेरा, गुण-ज्ञान न तुमने पाया है।
तेरी इस अज्ञान-बुद्धि ने, यह चन्दन जलवाया है ॥

मोटी[1] मति है किस्मत खोटी, तन पर मात्र लंगोटी।
तभी अमोलक चन्दन को तू, वस्तु समझता छोटी ॥
अरे ! अनेकों पीढ़ी तक तू, खाता जिससे रोटी।
उसी 'बावना चन्दन' से तू, रहा पकाता रोटी !!
खा सकते न बनी बनाई, स्वयं पकाता रोटी।
तर भी ताजा-ताजा भी फिर, प्रतिदिन पाता रोटी ॥
ऐसी खस्ता और मुलायम, देख लुभाता रोटी।
सभी भूलता लेकिन खाकर, नहीं भुलाता रोटी ॥
कभी तिकोनी कभी हाथ की, खा हरषाता रोटी।
कभी दूध की कभी खांड की, जीभ लगाता रोटी ॥

---

१ सार छन्द।

कभी खमीरी कभी पतीरी, तू सिकवाता रोटी।
कभी बाजरा मोठ मकई की, सख्त चबाता रोटी॥
कभी अलूनी कभी बेसनी, तू तलवाता रोटी।
खीर खिचड़ियां खाता, खाकर, जो उकताता रोटी॥
देता तुझे पदारथ छत्ती, खुश्क छुड़ाता रोटी।
चाट-चटनियां-चूरण से फिर, पड़ा पचाता रोटी॥
पतली-मोटी मन मरज़ी की, सदा उड़ाता रोटी।
आये हुए अतिथियों को भी, वही खिलाता रोटी॥

□ जाते-जाते

अच्छा[1] अब सब ठीक होगया, मैं जाता हूँ अपने घर।
दुख-दारिद्रय दूर होगया, मौज मज़ा कर जीवन भर॥
धन से बुद्धि-शुद्धि आजाती, ऋद्धि-सिद्धि बसती धन में।
धन का सदा महत्त्व रहा है, 'चन्दनमुनि' इस जीवन में॥
जीवन की आवश्यकताएं, धन से पूर्ण यहां होतीं।
गुण को नहीं, देखिये दुनिया- इसीलिये धन को रोती॥
भले अशिक्षित-अनपढ़ तू है, पर उत्तमतम है व्यवहार।
उत्तम व्यवहारों से होता, दुःखों से सब का उद्धार॥

---

१ लावनी छन्द।

धन्यवाद[1] दे लौट पड़े वे, मन से गद्गद् होकर।
इधर 'अकिंचन' ने भी सुख से, निशा बिताई सोकर॥

□ सुख की नींद

महलों वालों को भी ऐसी, नींद न आती होगी।
करवट पर बस करवट लेते, रजनी जाती होगी॥
देख भयानक सपन कभी या, जगते-सोते होंगे।
चिंतित-से, अलसाये-से हो, जागृत होते होंगे॥
मगर 'अकिंचन' को तो देखो, मोटा रोटा खाकर।
सोया था किस मस्ती में वह, आज पैर फैलाकर॥

□ 'कम्पिलपुर' का बाज़ार

हुआ प्रभात 'अकिंचन' अब तो, लड़की एक उठाकर।
चल बाजार बीच में आया, मन ही मन मुस्काकर॥
नज़र पड़ी जब साथी दल की, लगे मज़ाक उड़ाने।
भरदेगी यह एक लकड़िया, तेरे रिक्त खज़ाने॥
छोड़ेगी यह लकड़ी तेरा, कष्ट मिटाकर सारा।
सुन्दर भवन बनाना, जिसके, ऊपर हो चौबारा॥

---

1 सार छन्द।

कभी-कभी फिर दावत देना, हम सब को हे प्यारे!
गीत प्रीत के गायेंगे हम, मीत! तुम्हारे सारे॥
अधिक कहें क्या सखे! आप से, एक लकड़िया वावत।
लेकरके ही छोड़ेंगे हम, एक प्रेम से दावत॥

▫ लाख रुपया

धुन का पक्का वह भी था कुछ, ऐसा युवक निराला।
व्यंग किसी के कसने पर, या- ध्यान न देने वाला॥
हस्ती की-सी मस्ती से बस, उसने क़दम वढ़ाया।
वड़े सेठ के निकट पहुंच कर, अपना माल दिखाया॥
देख "वावना चन्दन" लाला, फूला नहीं समाया।
गिन कर रुपया एक लाख झट, उसको नक़द चुकाया॥

□ सेठ होगया

रह सकती थी कमी कौनसी, अब तो उसके घर में।
सुखी हुआ मशहूर वड़ा वह, सारे वड़े नगर में॥
सुख के साधन और प्रसाधन, चले चरण में आये।
छोड़ झोंपड़ी रंगभवन में, डेरे गये लगाये॥

□ विवाह की तैयारी

अब कर-पीड़न होने में भी, देर भला फिर क्या थी।
फूले नहीं समाये उसके, सारे संगी-साथी ॥
सन्तों की संगति का ऐसा, उस पर असर पड़ा था।
बहुत सादगी से वह अपनी, ले बारात चढ़ा था ॥
हुआ विवाहोत्सव सुख-पूर्वक, स्नेही सज्जन सारे।
मुक्त कण्ठ से आज प्रशंसा, करते-करते हारे ॥

□ श्वसुर और जमाई

कहा श्वसुर ने—प्यारे बेटे! तुम-सा पा जामाता।
मेरे तन का मन का कण-कण, फूला नहीं समाता ॥
तेरे साथी-संगी भी थे, सभ्य नहीं कुछ कम हैं।
सबकी सुन्दर चाल-ढाल से, भारी हर्षित हम हैं ॥
सेवा में जो कमी रही हो, देना ध्यान नहीं जी!
भूल-चूक अथ पुत्र! हमारी, जाना छोड़ यहीं जी!
देने को कुछ पास नहीं था, देते फिर क्या 'चन्दन।'
दिल यह, दिल का टुकड़ा यह तो- देते पाप-निकन्दन!

"कहा जमाई जी ने ऐसे, जो की खातिरदारी।
जिससे मैं मेरे साथी सब, खुशी हुए हैं भारी॥
सुता सुशीला ही जब देदी, क्या कुछ नहीं दिया है।
सच्चा प्रेम दिखा करके बस, मुझको जीत लिया है॥"

देख विनय जामाता जी का, श्वसुर प्रेम से फूले।
हुआ परिश्रम और खर्च जो, उसे हर्ष से भूले॥
और सराही अपनी किस्मत, पा जामाता ऐसा।
बहुत प्रेम से दिया गया है, बहुत-बहुत ही पैसा॥
विदा शान से और मान से, आखिर उसे किया था।
हर्षित गद्‌गद् सब का ही बस, 'चन्दन' हुआ हिया था॥

□ गुरु जी की स्मृति

लगा बिताने सुख से जीवन, दुख ने किया किनारा।
बना 'अकिंचन' सेठ आज वह, जो था लक्कड़हारा॥
अच्छे से भी अच्छा अब तो, बना आज व्यापारी।
उसे हजारों-लाखों की ही, आय हो रही भारी॥
नियम-धर्म की महिमा का बस, ध्यान हो रहा मन में।
जिस दिन दर्शन पाये थे, श्री- मुनिवर जी के वन में॥

शुभ मुहूर्त था कितना सुन्दर, दर्शन जब था पाया !
कितने दया भाव से उनने, अद्‌भुत नियम दिलाया ॥
उनकी करुणा की ही सारी, समझ रहा मैं माया ।
मेरे जीवन का जो ऐसा, नक्शा पलट दिखाया ॥
अगर मिलें इक बार सन्त फिर, जीवन सफल बनाऊं ।
सच्चा भक्त उन्हीं का बनकर, गीत धर्म के गाऊं ॥

▭ पहले की याद

हरे वृक्ष की हरी टहनियां, पहले तोड़ा करता ।
और खुश्क हो जाने को फिर, उनको छोड़ा करता ॥
हासल उनसे पैसा ज्यादा, या फिर थोड़ा करता ।
करता था निर्वाह, नहीं मैं- कौड़ी जोड़ा करता ॥
दिन में ढोता लकड़ी, निशि में- खटिया तोड़ा करता ।
सदा गरीबी-निर्धनता से, सिर मैं फोड़ा करता ॥
चाहे कितनें पांव पकड़ता, और निहोड़ा करता ।
जभी उधार मांगता, हरइक- मुखड़ा मोड़ा करता ॥

धोता अपने कपड़े-लत्ते, आप निचोड़ा करता ।
छड़ा-छांड बतलाकर हरइक- हंसी हसोड़ा करता ॥

पश-पच दिन भर चाहे जीवन, गाड़ी रोड़ा करता।
कहती महिलाएं— न कभी यह- काम निगोड़ा करता ॥

नहीं झोंपड़ो प्राप्त महल है, प्राप्त सभी सुख-साधन।
साधन जिन्हें चाहिये वे अब, करते मम आराधन ॥
अगर नहीं करता मैं मेरे, व्रत का दृढ़ आराधन।
लहर-बहर चहुं ओर न होती, होते क्या सुख-साधन ?

▭ आकस्मिक संयोग

संयोगों की बात समझिये, मिले सन्त वे ज्ञानी।
बड़े भाव से सुनने जाता, गुरु से श्री जिनवाणी ॥
खोल-खोल कर शास्त्र प्रेम से, ऐसे कुछ समझाये।
समकित युत श्रावक के व्रत, अब द्वादश ही अपनाये ॥
सुबह शाम सामायिक[1]-सम्वर, करता था रोजाना।
अनछाना जल कभी न पीता, छोड़ा निशि में खाना ॥

---

१ जस्स सामाणिओ अप्पा, संजमे नियमे तवे।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलि भासियं ॥
जो समो सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलि भासियं ॥
—अनुयोगद्वार सूत्र

पाई दौलत, दौलत का पर, नशा न आने पाया।
बड़ा धनिक होने पर जीवन, सादा सरल बनाया॥
दीन दुखी के दुख में शामिल, होता गद्गद् मन से।
जितनी भी बन सकती करता, वह सहाय तन-धन से॥

प्रभु को भूला नहीं एक पल, होकरके संसारी।
सकल जिन्दगी सफल बनाई, धर्म-भक्ति कर भारी॥

□ कथा समापन

दो हजार तेवीस विक्रमी, फाल्गुन मधुर महीना।
सर्दी चली गई है लेकिन, आता नहीं पसीना॥

'बरनाला' में लिखी गई है, भव्यों! सरस कहानी।
जैनसभा बाजार सदर में, सादा वही पुरानी॥
पहले भी संगीत यहां पर, मैंने कई बनाए।
और सुनाये सभा बीच में, श्रोता जन हरषाये॥

संगीतों से शिक्षण लेलें, प्यारे सारे सज्जन।
प्रातः प्रवचन श्रवण समझिये, 'चन्दन' आत्मिक मज्जन॥

□ कथा सार

सार कथा का है यही, धारो कुछ व्रत नेम।
विना नेम के प्रेम के, क्या पाओगे क्षेम ?

यथा-शक्ति प्रभु-भक्ति कर, जीवन है अनमोल।
मोल नहीं मिलते कहीं, 'चन्दन मुनि' ये बोल ॥

बरनाला
२०२३ फाल्गुन

○ १४ ○

चार घेवर

६

चुरा लिये थे हलवाई ने,
सेर-सेर के घेवर चार।
खाया नहीं एक भी लेकिन,
खाई सी कोड़ों की मार॥

□ सुख के साथी

सुख के साथी सब होते हैं, दुख में होता कौन यहां।
सुख में सभी बोलते हंस-हंस, दुख में लेते मौन यहां॥
सुख में कहते—'हम हैं हाज़िर, जी चाहे तब लेना काम।'
दुख में कहते—'हम न जानते, क्या है भला आपका नाम?'
सुख में मिलने को सब आते, दुख में नहीं देखते द्वार।
घर में होते हुए बताते, लाला जी तो गए बाज़ार॥
सुख में तो अपनी पत्नी भी, सेवा सुख पूर्वक करती।
दुख में पास खड़ी रहने से, देखो दिन में भी डरती॥

मेरा घर, परिवार जान कर, पाप कमाता अज्ञानी।
ज्ञानी कहते—'सुन ले भोले, स्वार्थ-अन्ध हैं सब प्रानी॥
तू किस बगिया की मूली है, तेरे जैसे हुए अनेक।
देख-देख औरों की हालत, मानव अपना करो विवेक॥

कोई सुखी दुखी है कोई, एक समान न रहता कल।
समय निकल जाता है स्थितियां- जाया करतीं साथ बदल॥
शत्रु मित्र बन जाते, स्नेही- बन जाते कट्टर दुश्मन।
खण्डहर जहां खड़े वहीं पर, बनते आलीशान भवन॥
हर प्रदार्थ है रूप बदलता, पल-पल में बल होता क्षीण।
अगर नहीं ऐसा होता तो, क्यों होता प्राचीन नवीन?
दिल के भाव बदलते देखो, आता क्या न उतार-चढ़ाव?
परिवर्तन का पड़ता ही है, 'चन्दन' मन पर पूर्ण प्रभाव॥

भाव बदलने को देते हैं, 'चन्दन मुनि' भाषण-व्याख्यान।
बिना भावना पलटे कोई, बन सकता क्या कभी महान?

त्याग स्वार्थ परमार्थ करेगा, जो नर पर-भव से डरता।
'चन्दन शास्त्र-निदर्शन देखो, विचारार्थ प्रस्तुत करता॥

एक बड़ा हलवाई था जो, कारीगर था बहुत बड़ा।
जो भी काम सौंपते उसको, रहने देता नहीं पड़ा॥
जो भी माल बनाता बिकता, ग्राहक लेते हाथों-हाथ।
नहीं उधार दिया करता था, लेता रकम माल के साथ॥
तोल तोलता सदा बराबर, देता था अच्छा सामान।
हर ग्राहक की रुचि पर रखता, पूरा ध्यान तथा पहचान॥
ऋतु अनुकूल मिठाई मिलती, लेते रंक, सेठ, भूपाल।
जब भी देखो मिष्टान्नों के, प्रस्तुत रहते थाल विशाल॥
'अभी नहीं फिर आना' ऐसे, कभी नहीं देता उत्तर।
जो भी वस्तु चाहिये मिलती, सभी ग्राहकों को सत्वर॥
सारी चीजें अच्छी होतीं, होती कोई नहीं ख़राब।
बात ख़राब मानता ग्राहक- को यदि देना पड़े जवाब॥
दिन में और रात में भी यों, भीड़ ग्राहकों की रहती।
चलो मिठाई वहीं मिलेगी, जनता आपस में कहती॥
खाकर खुश, घर लाकर खुश, फिर- देकर और दिलाकर खुश।
जो नर जीकर खुश होता है, होगा क्यों न जिलाकर खुश॥
वस्तु बराबर मिल जाने से, हो जाते ग्राहक सन्तुष्ट।
वस्तु ख़राब निकल जाने से, सारे हो होते हैं रुष्ट॥

घेवर वाला

घेवर इसके जैसा कोई, नहीं बनाने वाला था।
आता इसके यहां सदा जो, घेवर खाने वाला था॥
घेवर वाला—घेवर वाला, नाम बोलता सारा गाम।
नाम प्रसिद्ध वही हो जाता, जो बोला जाता हो आम॥

महलों तक

बात एक दिन की अब सुनिये, नृप ने इसे बुलाया पास।
बनवाने हैं घेवर हमको, हमें तुम्हीं पर है विश्वास॥
ले जाओ सामान तोल कर, कर देना घेवर तैयार।
हलवाई ने नृप-आज्ञा को, सादर शीघ्र किया स्वीकार॥
घेवर बना दिये अति उत्तम, खुश-खुश थे खाने वाले।
खाने वाले और कहीं पर, नहीं कभी जाने वाले॥
अच्छा माल बनाने से ही, ग्राहक जम जाते सारे।
सच्चाई के—अच्छाई के, पुण्य-प्रताप सदा प्यारे!
आवश्यकता होती थी जब भी, इसको ही मिलता आदेश।
प्रथम सूचना देनी पड़ती, हो यदि उत्सव कहीं विशेष॥
"आप भला जग भला" कहावत, रखती है अपना गौरव।
जिसने पाप न किया उसे तो, नरक न मिल सकता रौरव॥

अपने भाव देखने हों तो, झांको दुनिया के दिल में।
शकलें जैसी होतीं वैसी, दिखलाया करतीं फ़िल्में ॥

▫ घेवरों की चोरी

एक बार नृप ने बनवाए, गिनती के घेवर चालीस।
सेर-सेर के थे सब घेवर, माल एक मन बिस्वाबीस ॥
आज इसी हलवाई के मन, हुआ पाप का प्रथम प्रवेश।
प्रथम पाप करने से कंपित, होते 'चन्दन' आत्म-प्रदेश ॥
"नहीं आज तक की है चोरी, है प्रसिद्ध साहूकारी।
मेरी साहूकारी पर ही, मोहित है जनता सारी ॥
मेरा है विश्वास देखिये, कभी नहीं नृप लेते तोल।
मोल चुका देते हैं जो कुछ, मैं बतला देता हूँ बोल ॥
इन चालीस घेवरों में से, घेवर आज चुरालूं चार।
चार घेवरों की चोरी से, थोड़ा ही कम होगा भार ॥
गिनती के चालीस चाहिये, कौन तोलने वाला है।
घेवर वाले के सम्मुख फिर, कौन बोलने वाला है ॥
हम हैं चार व्यक्ति ही घर पर, एक - एक हम खाएंगे।
माल मुफ्त का जब है मिलता, क्यों न मौज उड़ाएंगे ॥"
नीयत हुई ख़राब चुराकर, घर पहुंचाए घेवर चार।
चोरी करने वाला करता, सभी छिपाने के उपचार ॥

□ पाप का प्रभाव

नरपति के महलों में पहुंचे, वे चालिस ही घेवर थे।
मन में पाप समा जाने से, बदल गए अब तेवर थे॥
राजा बोला—'हलवाई का, आज तोल कर देखो माल।
बिना तोल कर लेते-लेते, हमें होगए इतने साल॥
करते हैं विश्वास बड़ा हम, नहीं कर रहे क्या यह भूल ?
नहीं कभी क्या चलती देखो, पवन बादलों के प्रतिकूल ?
चाहे साहूकार बड़ा है, है वह अखिर में इनसान।
सांसारिक मानव के मन के, कभी न रहते भाव समान॥
आज तोल में गोलमाल जो, थोड़ा भी हम पाएंगे।
सारे जीवन का अपराधी, आज इसे ठहराएंगे॥

□ चार सेर नहीं

तोला गया माल जब सारा, चार सेर कम निकला माल।
नृप ने कहा बुलाओ उसको, पूछा जाए सारा हाल॥
कितने दिन से चोरी करता, भरता है अपना भण्डार।
साहूकार समझते हम क्या, समझ रहा सारा संसार॥
जिस पर करो भरोसा वह हो, ऐसे दगा दिखाता है।
जितना खर्च लगाता उससे, दुगना यहां लिखाता है॥

कपटी, झूठा, चोर, और है- दग़ाख़ोर यह हलवाई।
मोल-तोल कर देखा हम सब, समझ गए है सच्चाई॥
यहां बुलाया जाएगा अब, इसे दिया जाएगा दंड।
राज-दण्ड पाने से होते, कभी नहीं अपराध प्रचण्ड॥

▫ किसने खाए?

घेवर चार गए जब घर पर, खुश-खुश हुआ सकल परिवार।
घेवर चार मिले गिनती के, खाने वाले भी हम चार॥
पत्नी, पुत्र, सुता, हलवाई, एक-एक खा लेंगे हम।
कमती अधिक न लेंगे अपना- अपना हिस्सा लेंगे हम॥
ताज़ा-ताज़ा घेवर खाए, तीनों ने लेकरके तीन।
खाने में क्यों पीछे रहना, प्रथा यही प्राचीन-नवीन॥
हलवाई के हिस्से वाला, घेवर रक्खा खूब संभाल।
वे खाएंगे लौट महल से, बतलाएंगे स्वाद कमाल॥

▫ जंवाई का भाग

इतने ही में आजाता है, घर पर प्यारा जामाता।
जो अपना सम्बन्धी होता, वही किसी के घर आता॥
सोचा-मिलता जाऊं, जब मैं- इस रास्ते से हूं जाता।
केवल मिलने के खातिर ही, कौन भला जाता आता॥

▭ पुलिस आई

खाना खाकरके बैठा है, इतने में नृप-नर आया।
बोला हलवाई से—'नृप ने, चलो अभी है बुलवाया॥
आया राजसभा में, नृप ने- पूछा—घेवर क्यों हैं कम?
सच्ची बात बताने में कुछ, 'चन्दन' करना नहीं शरम॥
हम विश्वास सदा करते हैं, देखा आज तोल कर माल।
सदा चोरियां करता होगा, ऐसा आया हमें ख़याल॥
खाल खींचदी जाएगी यदि- सत्य नहीं बतलाएगा।
दण्ड झूठ का तू कठोरतम, अब निश्चित ही पाएगा॥

हलवाई ने सारा क़िस्सा, सत्य-सत्य बतलाया है।
खाने वालों ने खाए पर, मैंने एक न खाया है॥
"बुलवावो खाने वालों को", आए तीनों ही प्रानी।
हलवाई की पत्नी से नृप, बोल रहा ऐसे बानी॥
चारों घेवर थे चोरी के, अपराधी हो तुम सारे।
खाओ चलो मार कोड़ों की, ज्यों खाए घेवर प्यारे॥

☐ हलवाइन खिसकी

"हलवाइन घबराई मन में, नाम मार का सुना जभी।
सुनिये राजन्! विनति एक है, खाए घेवर सही सभी॥

"चारों घेवर थे चोरी के, अपराधी हो तुम सारे।

स्वार्थ-परार्थ-निरर्थ पाप की, परंपराएं चलती हैं।
क्रिया कर्म की फलती तब जा, नर की आंखें खुलती हैं॥
सावधान बन जाओ पहले, नहीं कमावो पाप कभी।
किए हुए जो पाप आपके, हो सकते क्या माफ़ कभी?
करनी आपो आप बताई, चाहे बेटा चाहे बाप।
'चन्दन' इसीलिये कहता है, रखिये व्यवहारों को साफ़॥
धर्म सहायक हो सकता है, संकट के क्षण में केवल।
है संयुक्त कुटुंब किन्तु है, अलग-अलग कर्मों का फल॥
देह अलग होते ही होते, रूप-रंग सब अलग-अलग।
तीन अवस्थाओं के अपने, क्या न ढंग सब अलग-अलग!
समय-समय के परिणामों में, अन्तर कितना आता है।
सुर से असुर, असुर से सुर यह, नर क्षण में बन जाता है॥

□ पूर्ति और सार

'चन्दन मुनि' कहता सुनो, है स्वार्थी संसार।
जो अपना होता वही, खाया करता मार॥
स्वार्थ टूटते ही यहां, नाते जाते टूट।
स्वार्थ नहीं होता अगर, तो क्या होती फूट?
'चन्दन मुनि' अब चेतिये, तजिये अपना स्वार्थ।
यही धर्म सब से बड़ा, और यही परमार्थ॥

० १५ ०

कर भला हो भला

□

करो भला जो भला चाहिये,
सीधा-सादा सही उपाय।
नहीं सुखी हो पाया कोई,
जिसने यहां किया अन्याय॥

□

० १५ ० कर भला हो भला

भला करो

भला दूसरों का करने से, भला स्वयं का होता है।
जो अपना ही स्वार्थ देखता, वही अन्त में रोता है॥
काम उसी का बनता जो नर, आता है औरों के काम।
काम पारमार्थिक करने से, मिलता नाम तथा विश्राम॥
दिल बे-दर्द सर्द जो होता, मर्द नहीं वह कहलाता।
मर्द वही हमदर्द समझलो, दर्द देख दौड़ा आता॥
सुखी दुखी अपने सुख-दुख से, होता है सारा संसार।
पर-सुख दुख से सुखी दुखी हो, उसका ही उत्तम व्यवहार।

पर-दुख से सुख, पर सुख से दुख, नहीं मान सकते सज्जन।
सज्जन दुर्जन की परिभाषा, स्पष्ट बताता 'मुनि चन्दन।।'

इस छोटी सी रचना द्वारा, आ जाएगा ध्यान अभी।
काम कभी भी दे सकता है, सुना हुआ जो ज्ञान कभी।।

□ एक घटना

पथ में एक गड़ा था पत्थर, लगा रहा सब को ठोकर।
जाना-आना ही पड़ता था, सब को उस पथ से होकर।।
एक मनुष्य गिरा खा ठोकर, उठ कर करता आंखें लाल।
बकता बुरी गालियां मानो, दिल का गुस्सा रहा निकाल।।
गिरा दूसरा और तीसरा, खाकर ठोकर पत्थर से।
चलना क्यों न चाहिये चन्दन', चेतन होकर पत्थर से।।
पद-अंगुस्ठ दुष्ट पत्थर ने, मोड़ दिया उतरा नाखून।
बन्द नहीं होता है अब तक, गिरता ही जाता है खून।।
यह पथ तो बस है ही दुर्गम, पत्थर ही यह है ऐसा।
नगर प्रशासन ही ऐसा है, खा जाता सारा पैसा।।
नगर-पालिका मार्ग-मरम्मत, करवाती है नहीं कभी।
उसकी भूल नहीं होती तो, क्यों गिरते हम अभी-अभी।।

नीचे देखो आगे देखो, चलने का यह सीखो पाठ।
इधर-उधर क्यों देख रहे हो, किसे दिखाते जाते ठाठ॥
शिशु रोगी वा महिलाओं को, पहले दो पथ आने को[1]।
भार लिये जो जाता है वह, कहता है हट जाने को॥
प्रज्ञा-चक्षु व्यक्ति को पथ दो, दो पथ सम्मानित जन को।
इस से शान्ति मिला करती है, चलने वाले के मन को॥
अकड़-अकड़ कर धक्का देकर, अड़ कर चलना ठीक नहीं।
नीति-धर्म-कुल-राष्ट्र-सभ्यता- देती ऐसी सीख नहीं॥
चलो, और चलने दो सबको, शान्ति सहित चलते रहिये।
कोई अकड़े झगड़े उससे, आप दूर टलते रहिये॥
जलते से जल होकर रहिये, मार्ग शान्ति का शुद्ध यही।
शुद्ध बुद्ध हृदय वाले नर, चलते होते क्रुद्ध नहीं॥
चलते श्रमण, श्रमणियां चलतीं, देखो उनकी कैसी चाल।
मानो स्थापित करते रहते, चलने की वे एक मिसाल॥

---

१ पन्था देयो ब्राह्मणाय, स्त्रियै, राज्ञे, विचक्षुषे।
वृद्धाय, भारभग्नाय, रोगिणे, दुर्बलाय च॥
—विदुर नीति

२ अड़ते से टलता रहे, जलते से जल होय।
'कबीर' ऐसे पुरुष को, गंज न सक्के कोय।
—कबीर

वड़ी सावधानी से चलना, जीवन का पथ करना तय।
असावधानी से होता है, पद-पद पर मरणांतिक भय ॥
गिरी वस्तु भी मिल जाती है, बच जाती लगने से चोट।
देख-देख कर चलने में 'मुनि- चन्दन' नहीं कहीं भी खोट ॥
चाल हाल कह देती मन का, चाल परख ही लेते लोग।
कितनी चाल चलो पर देखो, दाल न गलने देते लाग ॥

▫ फिर ठोकर

एक भले सज्जन के पद से, हुआ उसी पत्थर का स्पर्श।
समझ लीजिये क्या होता है, असावधानो का निष्कर्ष ॥
उसने सोचा—पथिक जनों को, प्रतिदिन होता होगा कष्ट।
चोट पांव में लगने से ही, मुझे प्रतीत होरहा स्पष्ट ॥
पड़ा नहीं है, गड़ा हुआ है, मानो अड़ा हुआ मन से।
खड़ा-खड़ा कुछ शान्ति पा रहा, पान्थ शान्तिमय चिन्तन से ॥
इसे हटादूं, कष्ट मिटादूं आने-जाने वालों का।
नहीं एक का भला सभी का, कष्ट उठाने वालों का ॥
वाल वृद्ध रोगी महिलाएं, सभी इधर से आते होंगे।
पत्थर से टकराकर घर पर, जाकर पछताते होंगे ॥
इसे हटाकर घर जाना है, कर जाना है काम भला।
भला काम करने से ही तो, होता जग में नाम भला ॥

कोई नहीं मुझे कहता है, कहता है मेरा ही मन।
मन-संकेत समझ लेने का, सरल नहीं है कार्य गहन ॥
अपने लिये भला जो होता, होता सब के लिये भला।
सरल रीति से समझाता हूँ, जीने की यह श्रेष्ठ कला ॥

▫ धन का खज़ाना

गया कुदाला लेकर आया, पत्थर खोद हटाया है।
उस गड्ढे में एक खज़ाना, गड़ा हुआ तब पाया है ॥
अगर भूमि से धन मिलता है, भूमीश्वर का वह होता।
शुद्ध व्यक्ति का लोभ-सिन्धु में, हृदय नहीं खाता गोता ॥
सूचित किया नृपति को जाकर, मिला भूमि से कोष बड़ा।
नाम कोष का सुन करके ही, मन पाता सन्तोष बड़ा ॥
सेवक गए उठा ले आये, नृप के सम्मुख खोला है।
सोनैये इक लाख देखकर, भूपति ऐसे बोला है ॥

□ इनाम और पद

पत्थर दूर हटाने से ही, तुमको ऐसे अर्थ मिला।
अजब-ग़जब के सन्तोषी हो, नहीं नीति से चित्त हिला ॥

गया कुदाला लेकर आया, पत्थर खोद हटाया है।

पता नहीं चल सकता हमको, ले जाते यह सारा धन।
सूचित किया, किया है स्थापित, निस्पृहता का उदाहरन ॥

माया स्वयं मोहिनी होती, बहुत कठिन है इसका त्याग।
कंचन और कामिनी से तो, कोई ही रहता बे-दाग़ ॥
जितना धन है उससे आधा, देता हूँ मैं तुम्हें इनाम।
क्या न इनाम दिया जाता है, जो करता है उत्तम काम?

कोषाध्यक्ष नियुक्त किया है, परख लिया उसका ईमान।
बेईमानों इनसानों से, दूर रहा करते भगवान ॥

▭ चर्चा का विषय

चर्चा का यह विषय होगया, हुए चमत्कृत सज्जन-मन।
किया भला तो भला होगया, मिला उच्च पद आधा धन ॥
लगी ठोकरें कल ही जिनको, उनको कुछ अफ़सोस हुआ।
हमने क्यों न हटाया पत्थर, गया कोष अब होश हुआ ॥
हो सकता था क्या अब लेकिन, मन ही मन पछताने से।
मारें कितने हाथ-पैर वे, रहे ख़ज़ाना पाने से ॥

▭ समापन और सार

श्रेष्ठ भावना-वल्ली से ही, उत्तम फल होते हैं प्राप्त।
होगा भला, भला कर देखो, 'चन्दन' करता कथा समाप्त॥

दो हज़ार बावीस विक्रमी, 'बरनाला' में चातुर्मास।
संगीतों की रचनाओं से, उमड़ रहा अन्तर उल्लास॥

बरनाला
२०२२

- १६ -

पूणिया श्रावक

पढ़ो "पूनिया श्रावक" को तुम,
अपरिग्रह व्रत जो लेना।
धन के बदले यदि नृप मांगे,
फिर भी धर्म नहीं देना॥

१६ पूणिया श्रावक

□ अमर नाम

नेकी और बदी से रहता, इस दुनिया में नाम अमर।
बदी छोड़ने नेकी करने, ख़ातिर कसिये आप कमर ॥
कभी अमीरी कभी ग़रीबी, बादल-छाया सम आती।
नेक मनुष्यों की नीयत तो, नेकी पर ही जम जाती ॥
प्रलोभनों के सम्मुख झुकना, नहीं जानते हैं नर नेक।
चाहे नेक एक हो उसका, करना हमें यहां उल्लेख ॥
नेकी की शिक्षाएं देना, सन्तों का कर्त्तव्य पुनीत।
सुनो "पूणिये श्रावक जी" का, चन्दन' वर्णित शुभ संगीत ॥

'राजगृही' की महिमा

भारत में इक नगर मनोहर, 'राजगृह' कहलाता था।
जो भी आकर उसे देखता, अति अद्भुतता पाता था।।
अद्भुत शोभा बनी नगर को, आवासीय कतारों से।
उच्च चोटियां जिनकी लगतीं, करती बात सितारों से।।
चारों ओर स्वच्छता दिखती, ध्यान जिधर भी जाता था।
कीचड़ कूड़े करकट का बस, ढेर नहीं जम पाता था।।
गली मोहल्ले बाजारों में, रहती खूब सफ़ाई थी।
'श्रेणिक' नृप ने नगरपालिका, ऐसी सबल बनाई थी।।
पूर्ण प्रबन्ध प्रशंसा लायक, था बस सुलझे हाथों में।
समय गंवाते नहीं कभी वे, व्यर्थ विवादों-वातों में।।
जनता के सुख-दुख की चिन्ता, जिनको घेरे रहती थी।
इसीलिये तो अमन-चैन की, सरिता कलकल बहती थी।।

'पूणिया' श्रावक

एक 'पूणिया' नामक श्रावक, पुर में शोभा पाता था।
धर्म-ध्यान से अपना जीवन, जो नित सफल बनाता था।।
सुन्दर-सुन्दर सदा पूणिया, नित्य बनाता रूई से।
खर्च चलाने लायक पैसे, नेक कमाता रूई से।।

और दूसरे धंधों से वे, दूर हमेशा रहते थे।
उसे "पूणिया श्रावक" मानो, इसोलिये सब कहते थे ॥

□ संतोषी जीवन

कहते हैं धनवान बड़ा था, पहले किसी ज़माने में।
लेकिन लक्ष्मी सभी लुटादो, जग का कष्ट मिटाने में ॥
था संतोषी ऐसा अद्भुत, मत पूछो कुछ बात अरे!
निर्धनता में भी रहता था, मस्ती के ही साथ अरे!
अन्यायों से बचकर रहता, जितना भी बच पाता था।
महारंभ के, महा लोभ के, निकट नहीं वह जाता था ॥
त्रस-स्थावर जीवों की जयणा, प्रतिदिन करता अधिक-अधिक।
और अठारह पापों से भी, रहता डरता अधिक-अधिक ॥
तरुणावस्था होने पर भी, भारो शुद्धाचारी था।
वीर जिनेश्वर जी का सेवक, सच्चा दया पुजारी था ॥

□ सामायिक का प्रण

नित सामायिक करके ही वह, उदर-पूर्त्ति हित खाता था।
प्रण का ऐसा पक्का था वह, कभी न नागा पाता था ॥

काम- घरेलू पीछे, पहले- याद नियम-व्रत आता था।
पूर्ण ग़रीबी में भी उसका, सुख-से जीवन जाता था॥
सच तो है—सन्तोषी बनकर, जो सुख उसने पाया था।
कभी अमीरी में भी ऐसा, हरगिज़ नहीं लखाया था॥
चिन्ताओं से घिरा हमेशा, पहले तो वह रहता था।
बेफ़िकरी का सागर पर अब, उसके उर में बहता था॥

▭ 'श्रेणिक' का आगमन

इक दिन उसके घर के सम्मुख, राजा 'श्रेणिक' आया है।
निकला वह घर बाहर तत्क्षण, समाचार जब पाया है॥
खड़ा नृपति को देख सामने, मन में खुशियां भरता है।
कायिक वाचिक तथा मानसिक, स्वागत सस्मित करता है॥
मन ही मन से करता चेष्टा, पूरा पता लगाने की।
समझ न पाया लेकिन कुछ भी, वजह नृपति के आने की॥
विना निमन्त्रण दिये द्वार पर, 'श्रेणिक' नृप जो आये हैं।
किसी प्रयोजन से ही राजा, चरण यहां तक लाये हैं॥

▭ सामायिक करते हो ?

राजा बोला—क्या श्रावक जी ! 'सामायिक' नित करते हो ?
व्रताराधना के वैभव से, आत्म-कोष को करते हो ?

राजा बोला—क्या श्रावक जी ! सामायिक नित करते हो ?

राजा से सामायिक का यों, सुन कर के सारा वृत्तान्त।
वद्धाञ्जलि वन श्रमणोपासक, लगा सोचने आद्योपान्त॥

"सहज नहीं सामायिक करना, 'हां' कहते यों डरता हूं।
फिर भी जैसी वनती राजन्! मैं प्रतिदिन ही करता हूँ॥
नाश नर्क का करने वाली, स्वर्ग-मोक्ष दिखलाती है।
सामायिक वह समता वाली, मेरे मन को भाती है॥
छोड़ सभी कुछ सकता हूँ मैं, इसे नहीं सकता हूँ छोड़।
लाख प्रयत्न करे कोई पर, सकूं न इससे मुखड़ा मोड़॥
घर की सकल सम्पदा मैंने, इस पर हर्षित वारी है।
सर्व सुखों की मां सामायिक मुझे प्राण से प्यारी है।."

▫ एक सामायिक दे दो

तेरे एक 'सामायिकव्रत' को, आज हुई दरकार मुझे।
राजा वोले—वेच डालिये, करना मत इन्कार मुझे॥

यह कैसे हो सकता राजन्! विनय सहित श्रावक वोला।
राजा ने तव भाव हृदय का, साफ़-साफ़ सारा खोला॥
जो भी क़ीमत लोगे इसकी, देने से इन्कार नहीं।
मगर 'नहीं' की वात समझलो, श्रावक जी! स्वीकार नहीं॥

भोले-भाले मानव के भी, बात समझ में आती है।
सभी वस्तुएं केवल धन से, यहां खरीदी जाती हैं॥

▭ 'सामायक' का स्वरूप

बोला श्रावक—सुनिये राजन्, 'सामायिक' वह वस्तु नहीं।
क्रय-विक्रय के लिये अतः मैं, कह सकता हूँ 'अस्तु' नहीं॥
आत्मा ही होता 'सामायिक', आत्मा 'सामायिक' का अर्थ।
अर्थ समर्थ यही बतलाया, अन्य अर्थ सब समझो व्यर्थ॥
आत्म-स्वभाव जो है सामायिक, बेचूं मैं इसको कैसे ?
नहीं बेचने लायक कुछ भी, कैसे लूं इसके पैसे ?

बात 'पूणिया' की सुन 'श्रेणिक', दुविधा में पड़ जाते हैं।
बड़े प्रेम से घटना अपनी, ऐसे अब बतलाते हैं॥

▭ नरक टालने का मार्ग

'महावीर' प्रभु की मैं वाणी, अभी-अभी हूँ सुन आया।
प्रभु से अपने अगले भव का, मैंने पूर्ण पता पाया॥
प्रथम नरक का वास उन्होंने, मेरे लिये बताया है।
सुन करके मन मेरा इतना, इसीलिये घबराया है॥

कौन भला नरकों में जाकर, पीड़ा पाना चाहेगा ?
मार यमों की महा भयंकर, कैसे खाना चाहेगा ?
कष्ट-कल्पना द्वारा मेरा, मन भारी थर्राया जब।
'महावीर' प्रभु से ही सारा, मैंने पता लगाया तब ॥
जैसे टल सकती हो आफ़त, नरक लोक में जाने की।
वही उपाय दयामय भगवन ! दया करें बतलाने की ॥
नम्र निवेदन सुनकर मेरा, देरी नहीं लगाई है।
बड़े प्यार से प्रभु ने अंगुलि, तेरी ओर उठाई है ॥
मात्र एक 'सामायिक' यदि वह, तुम्हें बेच डाले राजन् !
लग जायंगे नरक लोक को, फ़ौरन तब ताले राजन् !
नहीं नरक में जाना होगा, कष्टों से बच जायेगा।
एक 'पूणिया' की 'सामायिक', अगर मोल ले आयेगा ॥

▭ मुफ़्त नहीं चाहिये

पड़ूं नरक में जाकरके मैं, नहीं आप भी चाहोगे।
अतः मुझे है आशा पूरी, दुख से मुझे बचाओगे ॥
जिसके शासन में रहते हैं, उसकी कुशल मनाते हैं।
वही नागरिक इस दुनियां में, कर्तव्य-निष्ठ कहलाते है ॥
यही भीख लेने को आया, आज आपके द्वारे पर।
नहीं नरक में धक्का देना, मुझको देख कगारे पर ॥

ग्रौर सुनो–'सामायिक' मैं फिर, मुफ़्त नहीं ले जाऊंगा।
जो भी उसकी क़ीमत होगी, फ़ौरन नक़द चुकाऊंगा॥
चाहे एक भिखारी मानो, मानो या व्यापारी तुम।
'सामायिक' देकरके ग्रपनी, बन जाओ उपकारी तुम॥
'सामायिक' देने से होगा, कोई भी नुक़सान नहीं।
आए हुए अतिथि का बोलो, क्या करते सम्मान नहीं?
तेरी 'सामायिक' पाकरके, दुःखों से बच जाऊंगा।
जन्म-जन्म में तव उपकृति के, गीत पूणिया! गाऊंगा॥

○ श्रावक का प्रश्न

बात निराली सुनकर श्रावक, मन ही मन मुस्काये हैं।
लेने को 'सामायिक' मेरी, ग्राज नृपति घर आये हैं॥
'हां' में उत्तर दूं मैं कैसे, कैसे कहदूं और 'नहीं।'
ऐसी बात अनोखी पहले, सुनी नहीं थी और कहीं॥

बोला–'अगर दास की सेवा, ऐसा ग्रसर अपार करे।
स्वामिन्! सेवक सेवाओं से, कैसे फिर इन्कार करे!
मात्र एक मेरी 'सामायिक', अगर आप लेलोगे जी!
उसके बदले मुझे ग्राप फिर, 'चन्दन मुनि' क्या दोगे जी?

○ कितनी क़ीमत ?

बात 'पूंणिया' की सुन करके, हर्षित हुआ नृपति का मन।
राजा बोला—'मैं क्या दूंगा ? दूंगा मैं मन चाहा धन ॥"

बोला श्रावक–'ज्यादा क़ीमत, नहीं आपसे लूंगा मैं।
उचित मूल्य लेकरके राजन् ! 'सामायिक व्रत' दूंगा मैं ॥

"बस बतलादो मोल आपका, 'श्रेणिक' नरपति बोल पड़ा।
यहां वस्तु के मालिक का ही, माना जाता बोल बड़ा ॥"

□ भगवान से पूछें

मुझे मूल्य का पता नहीं है, श्रावक जी यों बोले हैं।
प्रश्न रूप में राजा जी ने, अधर इस तरह खोले हैं ॥
तो फिर इसका प्यारे श्रावक ! मूल्य कौन बतलायेगा ?
उलझी हुई हमारी गुत्थी, भला कौन सुलझायेगा ?

श्रावक बोला–'वीर' जिनेश्वर, गुत्थी सुलझा सकते हैं।
'सामायिक' का सही मूल्य बस, वे ही बतला सकते हैं ॥

कोई भी अल्पज्ञ अन्य नर, शक्ति न ऐसी रखता है।
केवलज्ञानी से ही उत्तर, सही-सही मिल सकता है॥

तत्क्षण तब 'श्रेणिक' के मुख से, ऐसे शब्द निकलते हैं।
चलिये 'महावीर' प्रभुवर के, चरणों में ही चलते हैं॥

○ प्रभु का समवसरण

पैदल चल करके वे दोनों, 'समवसरण' में आते हैं।
नत मस्तक हो प्रभु-सेवा में, बैठ विनय से जाते हैं॥
घटना सारी प्रभु के सम्मुख, राजा जी ने खोल कही।
बोले—'हमें आप ही भन्ते! मोल बताएं सही-सही॥"
मूल्य चुकाकर 'सामायिक' का, दिल का हलका भार करूं।
मेरे लिये हमेशा भगवन्! बन्द नरक का द्वार करूं॥
कीमत लेने से श्रावक जी! कर सकते इन्कार नहीं।
मोल बिना 'सामायिक' लेना, मुझको भी स्वीकार नहीं॥

○ क्या देना है?

बोले 'वीर' जिनेश्वर—"श्रावक, व्रत की कीमत लेता है।
तू भी तो बतला अय श्रेणिक! कितना क्या कुछ देता है?

वह ही दूंगा जो कुछ मुझको, प्रभु जी का होगा आदेश।
आदेशों का पालन करना, सीखा, देखा, सुना हमेश॥

▭ तेरी शक्ति कहां ?

'महावीर' गम्भीर भाव से, तब तो यह फ़रमाते हैं।
तेरा सारा राज्य मोल में अपर्याप्त ही पाते हैं॥
कहां शुद्ध 'सामायिक' राजन्! राज्य कहां पर यह सारा।
राई और सुमेरु सरीखा, अन्तर हमने निरधारा।
'सामायिक व्रत' करने वाला, नहीं नरक की गति पाता।
चक्कर चोरासी वाला भी, आखिर उसका मिट जाता॥
'सामायिक' जो मोल ले सके, ऐसा नर धनवान् नहीं।
इसका मूल्य चुकाना समझो, बिल्कुल भी आसान नहीं॥

▭ भवितव्यता ही है

रहा चकित अब 'श्रेणिक' नरवर, सुनकर प्रभु की वाणी को।
बद्धाञ्जलि बन करके बोला, ऐसे केवलज्ञानी को॥
मुझ से मोल कभी भी जब यह, नहीं चुकाया जायेगा।
मतलब इसका, वास-नरक का, कभी नहीं टल पायेगा॥

ऐसा ही भवितव्य समझलो, साफ़-साफ़ बोले भगवान ।
राजन्! समता ग्रहण कीजिये, समता से होगा कल्याण ॥
वीतराग प्रभु पक्ष किसी का, नहीं कभी भी लेते हैं ।
सत्यबात होती है जैसी, वैसी वे कह देते हैं ॥
खेल शिकार नरक का नृप ने, जो बांधा है दृढ़ बन्धन ।
भव अगला है यही भूप का, बतला देते प्रभु "चन्दन" ॥

▭ ऐसा न होता

मिले 'अनाथी' मुनिवर जब, नृप- सच्चा दर्शन पाकरके ।
समकितधारी सत्य पुजारी, हुआ तभी हरषा करके ॥
पहले से ही सन्त-संग जो, पाया होता राजा ने ।
सुरा-मांस को नहीं कभी भी, खाया होता राजा ने ॥
समकित धारी बनकर लेकिन, धर्म दलाली की भारी ।
तीर्थंकर का पद पायेंगे, उसकी यह महिमा सारी ॥

▭ 'पूणिये' की महिमा

उधर 'पूणिया जी' को देखो, कैसा श्रावक लायक था ।
सही अर्थ में प्रतिदिन ही वह, करता व्रत सामायिक था ॥
उसकी सच्ची 'सामायिक' की हुई प्रशंसा यह भारी ।
'वीर' जिनेश्वर जी ने मुख से, कितनी महिमा विस्तारी ॥

▫ कथा-सार

'सामायिक व्रत' करने वाले, भारी सुख अपनाते हैं।
सिवा स्वर्ग के योनि दूसरी, कभो नहीं वे पाते हैं॥
क्रमशः मुक्ति कर्म से पाते, मिटता आवागमन सभी।
समता धारी इस दुनिया में, करता क्या परिभ्रमण कभी॥
तजता जो आसक्ति जगत की, वही विरक्ति निभा पाता।
कर अभिव्यक्ति शक्ति को 'चन्दन', गीत साम्य वाले गाता॥

▫ रचना काल

दो हज़ार उन्नीस विक्रमी, वर्ष निराला आया है।
शुक्ल पक्ष वैशाख मास में, यह संगीत बनाया है॥
'मोगा मण्डी' वाली जनता, अद्भुत प्रेम दिखाती है।
सुनने को व्याख्यान बड़ी ही, संख्या में आ जाती है॥
'चन्दन' भक्ति देख भक्तों की, फूला नहीं समाया है।
इसी भक्ति ने भक्त 'पूणिया' हमको याद दिलाया है॥

मेरे प्यारे पाठकों ! 'सामायिक' जग-सार।
इसके द्वारा पहुंचिये, भव-सागर से पार॥

○

० १७ ०

तीन बनिये

o

तीन वणिक की कथा मनोहर,
देती----कितना - --बोध -- नया ।
'चन्दन' फल उसका ही मिलता,
भला-बुरा जो किया गया ।

o

○ १७ ○

तीनबनिये

प्रचार का आधार

धर्म-प्रचार किया जाता है, जिससे होवें स्वच्छ विचार।
बने वृत्तियां निर्मल जिससे, शुद्ध बने आहार-विहार॥
निर्मल-मन मानव को मानव- बनने का देते उपदेश।
यही दिया था और प्रेम से, दिया करेंगे यही हमेश॥
मानव मानवता से वंचित, कभी कहीं न रह जाए।
मानव के हित मानव सारी, विपदाओं को सह जाए॥
एक समान इन्द्रियां होतीं, फिर भी हैं वे भिन्नाकार।
नेत्र खोल कर देखो 'चन्दन', भरा भिन्नता से संसार॥

सभी समान अगर हो जाएं, आदर किसका कौन करे।
नहीं मौन से अगर लाभ हो, भला कौन फिर मौन धरे ॥

एक गुणी निर्गुणी एक है, एक भला नर एक बुरा।
लोहे से बनते हैं लेकिन, एक कड़ाही एक छुरा॥
नहीं सदृश होते फल सारे, सारे फूल न एक समान।
एक समान नहीं हो सकते, एक वृक्ष के सारे पान॥
यही भावना काम कर रही, लिखो जा रही एक कथा।
कथा व्यथा हर बदला करती, पड़ी हुई जो बुरी प्रथा॥
कथा-कहानी द्वारा शिक्षा, जल्दी गले उतरती है।
बालक युवक तथा वृद्धों पर, असर त्वरित ही करती है॥
इसीलिये प्राचीन काल से, चली प्रथा यह आती है।
कहीं कहानी कहती नानी, दादी कहीं सुनाती है॥
सूत्र उत्तराध्ययनान्तर्गत, अद्भुत कथा सुनाता हूं।
और कथा के माध्यम से मैं, जीवन-तत्त्व बताता हूं॥

शिक्षा ढूंढ़ा करते सज्जन, दुर्जन अवगुण लेते ढूंढ़।
मन को मूंड नहीं सकते वे, क्या न शिष्य भी सकते मूंड?
पकने पर अंगूर काक का, सदा गला पक जाता है।
किस्मत में वह लिखा हुआ बस, कटुक निम्ब-फल खाता है॥

खा सकता बादाम नहीं खर, कुत्ता खाता शहद नहीं।
मक्खी को घी चखते देखा, कहो किसी ने कभी कहीं ?
कोयलिया की क़िस्मत देखो, आम्र-मंजरी खाती है।
मानो मुख में मिश्री घोली, बोली मधुर सुनाती है॥
कोयल बनकर उत्तम श्रोता, इसको सुने सुनायेंगे।
उत्तम से पुरुषोत्तम बन कर, स्थान निरापद पायेंगे।

□ कथा प्रारंभ

एक नगर में एक सेठ जी, सुख से समय बिताते थे।
वरद पुत्र श्री लक्ष्मी जी के, लोग उन्हें बतलाते थे॥
पत्नी परम सुशीला उनकी, सेवा बड़ी बजाती थी।
आज्ञा और इशारा पाकर, अपना पांव उठाती थी॥
कोई बड़ा भले हो छोटा, आदर सहित बुलाती थी।
नहीं किसी भी प्राणी को वह, कटु वाणी कह पाती थी॥
अप शब्दों को पढ़ा कोष में, लेकिन कोई याद नहीं।
याद कहां से रह सकता है, चखा गया जो स्वाद नहीं॥
तन से निर्मल मन से निर्मल, निर्मल चाल-चलन से है।
एक लक्ष्य है बचते रहते, सदा चरित्र-स्खलन से है॥
पतिव्रत्य से है चमकाती, पीहर का पति-गृह का नाम।
चाहे काम नहीं आता हो, नारी का यह पहला काम॥

तीन पुत्र जनमे थे सुन्दर, आज्ञाकारी परम विनीत ।
माता ही सिखलाया करती, चलती आती जो कुल-रीत ॥
मान उमर धन वैभव सब हैं, नहीं कमी की कोई बात ।
अच्छी सुनते अच्छी करते, नहीं गमी की कोई बात ॥

▭ सेठ के विचार

बैठे-बैठे सेठ सोचता, अपने मन से ऐसी बात ।
संकल्पों से बना हुआ मन, सोचा करता है दिन-रात ॥
पीत पात मैं बना हुआ हूं, पता नहीं कब गिर जाऊं ।
खाकर एक हवा का झोंका, विपदाओं से घिर जाऊं ॥
सारे घर का भार समझलो, पीछे कौन उठायेगा ।
मुझको, खुद को, घर को, जग को, रोशन कौन बनायेगा ?
पुत्रों में है योग्य कौनसा इसका होना चाहिए ज्ञान ।
किसी युक्ति से परख करूं मैं, नहीं उचित केवल अनुमान ॥
यही सोचकर तीनों को ही, अपने पास बुलाया है ।
मुख में मिश्री घोल प्यार की, उसने यों फ़रमाया है ॥

तुम्हें परखने का है मैंने, मन से सोचा सरल उपाय ।
नहीं पिता कर सकता 'चन्दन', अपने पुत्रों से अन्याय ॥

"यही सोच कर तीनों को ही, अपने पास बुलाया है"

तुम सारे प्यारे हो लेकिन, पाता चतुर पुत्र अति प्यार।
लाख-लाख मुद्राएं लेकर, जाकर करो कहीं व्यापार ॥

अलग-अलग जाना है घर से, अलग-अलग ही आना फिर।
रहना अलग-अलग शहरों में, धंधा अलग चलाना फिर ॥
अलग कमा करके दिखलाना, अलग-अलग अपना मति बल।
क्योंकि कर्म जब अलग-अलग है, अलग-अलग आयेगा फल ॥
अलग-अलग तुम अगर न होते, हो भी पाते तीन नहीं।
अलग-अलग होने की 'चन्दन', समझो बात नवीन नहीं ॥

एक वर्ष की अवधि पूर्ण कर, आजाना सब अपने घर।
बतला देना जो भी आओ- घाटा और मुनाफ़ा कर ॥
पहली बार सौंपता हूं मैं, पूंजी इतनी हाथों में।
नहीं छिपाई जाती लक्ष्मी, लिखी हुई जो खातों में ॥
जब तक जिम्मेवारी वाला, सिर पर आता काम नहीं।
तब तक काम नहीं आसकता, हो भी सकता नाम नहीं ॥

काम, काम सिखलाता आया, जावो अपना काम करो।
पढ़ो 'णमो अरिहन्ताणं' जय- जिनवर बोल प्रणाम करो ॥

डांड तुम्हारे हाथों में है, भली बुद्धि का हिम्मत का।
सकुशल पहुंच किनारे जाना, काम तुम्हारो क़िस्मत का॥
उठती हुई तरंगों से जो, भय न कभी भी खायेगा।
चक्कर से तूफ़ानों से जो, टक्कर लेता जायेगा।
सिन्धु-किनारा उसके हाथों, प्यारे पुत्रों! आयेगा।
जीवन का बस वही खिलाड़ी, सच्चा माना जायेगा॥
लंगर खोले बिना नाव पर, जो भैया चढ़ जाता है।
पड़ा वहीं पर ही रहता वह, कब आगे बढ़ जाता है॥
केवल डांड चलाने का तो, मोल नहीं कुछ पड़ना है।
लंगर खोले बिना स्थान से, नहीं नाव को बढ़ना है॥
लंगर नहीं खोलते कायर, केवल डांड हिलाते हैं।
पोतें बाक़ी निकल न पातीं, जब रोकड़े मिलाते हैं॥
कहीं नहीं हो कायर तीनों, आगे क़दम बढ़ावो बस।
घबराने का नाम नहीं, कुछ- बन करके दिखलावो बस॥

कहते जिसे जवानी बेटो! बेला यही बनाने की।
यही कमाने की है बेला, बेला यही गंवाने की॥

लायक बने जवानी में जो, गए बनाकर नाम अमर।
'रावण' सम बनकर नालायक, गए अनेकों नरक—नगर ॥

बालक क्या कर सकता बोलो, कर सकता क्या बूढ़ा नर।
युवक सभी कुछ कर सकता है, करना चाहे काम अगर ॥
चमको चन्दा जैसे बनकर, चमकाओ फिर अपना वंश।
समझ गए ही होंगे तीनों, मेरे कहने का यह अंश ॥

☐ पुत्र बोले

बात पिता जी की सुन करके, तीनों हर्ष मनाते हैं।
हाथ जोड़ कर बोले—बिल्कुल- सत्य आप फ़र्माते हैं ॥
घर में बैठ-बैठ कर ठाली, पीते हैं हम खाते हैं।
प्राप्त साधनों द्वारा सोई, क़िस्मत नहीं जगाते हैं ॥
अपनी-अपनी बुद्धि योग्यता, आज परखने जाना है।
लायक या नालायक हैं हम, हम को यह दिखलाना है ॥

लेने को आशीष पिता से, चरणों में झुक जाते हैं।
तीनों तीन दिशाओं में ही, अपने क़दम बढ़ाते हैं ॥

☐ पहला पुत्र

एक नगर में पहुंच बड़े ने, प्रतिभा-बल दिखलाया है ।
लेकर बड़ी दुकान वहां पर, कारोबार चलाया है ॥
रकम लगादी उसने सारी, खुला एक व्यवसाय बड़ा ।
अर्थ बढ़ाने वाला उत्तम, सोचा सही उपाय बड़ा ॥
अल्प दिनों में उस नगरी में, हुआ बड़ा व्यापारी आप ।
इतना द्रव्य कमाया जिससे, मिट जाएं सब जग के ताप ॥

☐ सात्विकता से स्नेह

यौवन है धन भी है पूरा, पूरा आप यहां आज़ाद ।
कभी-कभी आज़ाद व्यक्ति ही, हो जाया करते बरबाद ॥
एक बार जो भूल होगई, लिया गया जो उलटा पन्थ ।
वापिस उसे सुधरने में तो, कठिनाई आती अत्यन्त ॥
अच्छा यही हुआ करता है, पहले से ही रहना शुद्ध ।
संधि-काल वय का जब होता, होता क्या न मानसिक युद्ध ?
लेकिन इस लड़के को किंचित्, हुआ नहीं धन का अभिमान ।
धन अस्थिर यौवन अस्थिर है, गर्व किया करते नादान ॥
ज्यों धन बढ़ा झुका वह त्यों-त्यों, जैसे बादल सजल झुके ।
ज्ञानी पंडित झुकता जैसे, जैसे तरुवर सफल झुके ॥

सत्संगति में जाया करता, लाया करता गुन चुन–चुन ।
बिना पढ़े पण्डित हो जाता, 'चन्दन मुनि' प्रवचन सुन-सुन॥

सेवा, सत्य, सरलता का ही, तन पर था शृंगार भला ।
भार नहीं उठता हो जिससे, क्यों पहनेगा हार भला ॥
हित भाषी मित भाषी, सदगुण-राशि विकासी विश्वासी ।
विद्या, विनय, विवेक आदि का, था वह पूरा अभ्यासी ॥
किसी बात पर नहीं किसी ने, उसको घबराते देखा ।
जब भी देखा धैर्य शान्ति का, सत्पथ अपनाते देखा ॥
हलके और छिछोरे पन से, लेता बिल्कुल काम नहीं ।
डर लगता था उसे कभी मैं, हो जाऊं बदनाम नहीं ॥
दया दिखाता दीन दुखी पर, समता सुखी सयानों पर ।
इसीलिये ही छाप पड़ी थी, बड़े-बड़े धनवानों पर ॥
घृणा द्वेष से कपट क्लेश से, छद्म वेश से दूर हमेश ।
रहता, रहने का ही देता, निकट जनों को वह उपदेश ॥

परदेशी हो करके भी वह, बना स्वदेशी नर जैसा ।
घुल-मिल सके नहीं औरों में, वह व्यापारी नर कैसा ?
भेद-भावना रखा न करता, आने–जाने वालों से ।
मनुहारें करता तन–मन से, भरे दूध के प्यालों से ॥

आये हो तो पीओ-खाओ, स्नेह बढ़ावो जीवन का।
मिलने को आने वाला क्या, होता है भूखा धन का ?

नहीं किसी के लिये बनावो, ग़लत धारणाएं मन की।
मन की बात अलग होती है, बात अलग होती धन की ॥
चारित्रिक बल ऊंचा मिलता, बिरले ही धनवानों का।
इसोलिये डर रहता उनको, सदा जगत में प्रानों का ॥
युवकों! सही प्रेरणा लेलो, ऐसा हो ऊंचा जीवन।
जीवन-ज्योति जलादो 'चन्दन', आलोकित कर दो त्रिभुवन ॥

□ आज के युवक

युवक आज के कैसे होते, नहीं आप से छिपा कहीं।
पूर्ण अनास्थावान हो गए, श्रद्धा का कुछ काम नहीं ॥
खाना-पीना मौज उड़ाना, सार बताते जीवन का।
रंग राग से ही बस बेड़ा, पार लगाते जीवन का ॥
नरक नहीं है स्वर्ग नहीं है, ऐसी बातें करते हैं।
जो कुछ है बस सभी यहीं है, नहीं मृत्यु से डरते हैं ॥
प्रभु का नाम नहीं लेते वे, कहते—किसने देखा है।
इस युग के युवकों को देखो, बिगड़ रहा सब लेखा है ॥

बीता वर्ष, हर्ष से भर कर, आखिर घर को आता है।
अपने साथ बड़ा हो कुछ वह, लश्कर-मेला लाता है ॥
नौकर-चाकर घोड़ा-बग्घो, हीरे-मोती लाल-रतन ।
है अगानित सोनैयां लाया, लाया करके पूर्ण यतन ॥

समाचार आने के पाकर, पूज्य पिता जी उछल पड़े।
और हजारों लोग नगर के, स्वागत करने निकल पड़े ॥
सम्मुख जाकर मिले सेठ तब, खुशियों का क्या पार रहा।
गूंज उठा आकाश देखिये, ऐसा जय-जयकार रहा ॥
पिता पुत्र को लाया घर पर, वाद्यों की झनकारों में।
दौड़ गई शुभ लहर हर्ष की, नगरी के नर-नारों में ॥
चर्चा केवल यही हो रही, गलियों में बाजारों में।
बांटी गई मिठाइयां 'चन्दन', सारे रिश्तेदारों में ॥
असमय में दीवालो आई, कितने हो परिवारों में ।
जगमग-जगमग दीप जल रहे, सज कर भवन-कतारों में ॥

परदेशों से आने वाला, अगर कमाकर लाता है।
काम बनाता अपना, पर वह- सब के मन को भाता है ॥

▫ मंझला पुत्र

सुनली अब मंझले बेटे का, सुना रहा हूँ पूरा हाल।
उनका साल समाप्त हुआ ज्यों, बीत गया इसका भी साल ॥
एक नगर में जाकर उसने, कारोबार चलाया था।
कुछ भी नहीं कमाया है तो, कुछ भी नहीं गंवाया था ॥
जितना खाया-खरचा उतना, अर्थ कमाया हिम्मत से।
लड़ा नहीं जा सकता नर से, केवल अपनी किस्मत से ॥
पूंजी जितनी मिली पिता से, उसे सुरक्षित ले आया।
नहीं बढ़ाया नहीं घटाया, सुख पूर्वक पीया-खाया।

▫ प्रतिभा और परिश्रम

प्रतिभा और परिश्रम मिलकर, पैदा करते आए धन।
केवल श्रम से धन कब जुड़ता, घिस जाता है सुन्दर तन ॥
बौद्धिक श्रम का स्थान श्रेष्ठतम, कायिक श्रम होता है जड़।
जड़मति उसे न छोड़ा करते, एक बार जो लिया पकड़ ॥
श्रम करने वाला सुख पूर्वक, भर सकता है सब का पेट।
श्रमी व्यक्ति को कहीं आज तक, बना हुआ देखा है सेठ ?
इस लड़के को सम्यक् श्रम की, आई थी पहचान नहीं।
इसीलिये लौटा वैसे ही, बन पाया धनवान नहीं ॥

▫ पिता का हर्ष

मिलो सूचना सुत आने को, हुआ पिता के मन में हर्ष।
बीता वर्ष प्रतीक्षा में ही, मानो बीते हों सौ वर्ष ॥
आदि अन्त वृत्तान्त सुनाया, सौंप दिया जो लाया अर्थ।
बोला—अर्थ बढ़ाने में मैं, रहा सर्वथा ही असमर्थ ॥

पूज्य पिता जी बोले—'बेटा !, घबराने की बात नहीं।
घबराना तब होता जो तू, लाता पूंजी साथ नहीं ॥
धन लाया तन लाया अपना, मन से आया साथ भला।
प्राप्त अर्थ संभाल रखा है, यह भी एक विशिष्ट कला ॥
नहीं गंवाना भी तो समझो, होता अर्थ कमाना है।
आज नहीं तो कल समझेगा, 'चन्दन' नया ज़माना है ॥
परदेशों में जा करके तू, फंसा जाल में कहीं नहीं।
अच्छी तरह आगया घर पर, वरना रहता कहीं वहीं ॥
जन आवारा जो मिल जाते, ले जाते धन तेरा छीन।
भटका नहीं भले पथ से तू, सावधान तू बड़ा प्रवीन ॥
एक वर्ष तक बाहर रहना, खतरे से क्या था खाली ?
लेकिन तूने सावधान रह, आदत बुरी नहीं डाली ॥
भोला होता तो खो आता, हो जाता बदनाम कहीं।
इतना कर लेना क्या 'चन्दन', कहो कार्य अभिराम नहीं ?

□ तीसरा बेटा

पुत्र तीसरे की हालत का, वर्णन अब बतलाना है।
उसका जीवन सुन अपना मन, नफ़रत से भर जाना है ॥
धन यौवन ने मिल कर उसके, मन को चक्र चढ़ाया था।
भूल गया नैतिकता का जो, घर ने पाठ पढ़ाया था ॥
पूरे लाख नकद रुपये ले, किसी नगर में आया था।
तब से इसके चपल चित्त में, एक फितूर समाया था ॥
होता है परलोक लोक क्या, दिल से साफ़ भुलाया था।
पीना-खाना मौज उड़ाना, जीवन-लक्ष्य बनाया था ॥

□ बुराई की जड़

महा भयानक नरक कहीं है, कौन देख कर आया है।
जो कुछ है सो सभी यहीं है, बाक़ी मिथ्या माया है ॥
नहीं स्वर्ग भी कहीं और है, नहीं देवता लोग कहीं।
सज्जन जन सुर लोग सदृश हैं, जो कुछ भी है सभी यहीं ॥

ऐसे बुरे विचारों ने ही, मन में स्थान बनाया है।
रोम-रोम पर नास्तिकता ने, अपना रंग चढ़ाया है ॥

▭ उसने सोचा

सुरा पेय है मांस भक्ष्य है, क्यों मैं इससे दूर रहूँ।
अच्छा है खा-पी करके मैं, पड़ा नशे में चूर रहूँ॥
गणिका, परदारा का सेवन, व्यसन बताया है किसने ?
क्यों छोड़ेगा मेरे जैसा, पाया धन-यौवन जिसने॥
छेड़-छाड़ करने वाले में, शक्ति चाहिये तन-मन को।
वही मनाही करते जिनकी, हिम्मत नहीं ज़रा मन की॥

मैं परदेशी मानव मेरा, कैसा मान भला अपमान।
नहीं किसी के साथ यहां पर, मेरे कुल की कुछ पहचान॥
पैसा ही परमेश्वर मेरा, पैसा ही है सत्य सखा।
पैसों से ही नीलाम्बर को, जा सकता क्या कभी ढका ?
पैसे वालों के खातिर ही, बने हुए ये व्यसन बड़े।
जिसके पास नहीं हो पैसा, वह व्यसनों में नहीं पड़े॥
डर लगता जिसको इज्ज़त का, वह क्यों पीएगा बोतल ?
पीने को मिल जाया करता, उसको केवल शीतल जल॥

दुराचार के कारण उसको, आखिर ऐसी दशा हुई।
फटे चीथड़े सीने तक को, नहीं पास में बची सुई॥

घर जाने की सोची जिसदम, बहुत-बहुत पछताया है।
चारा नहीं रहा बेचारा, घर को क़दम बढ़ाया है॥
मैला और कुचेला केवल, फटा चीथड़ा तन पर था।
दुख का एक पहाड़ टूट कर, पड़ा हुआ बस मन पर था॥
स्थान-स्थान पर भीख मांग कर, काम चलाता आया है।
लगता था वह अश्रु-धार से, मानो आज नहाया है॥
निकट नगर के आकर घर पर, खबर नहीं भिजवाई है।
जाते हुए दिवस में घर पर, उसको लज्जा आई है॥
होने पर अन्धेरा काफ़ी, छिपता-डरता आया है।
कोई ले पहचान नहीं बस, मुख पर वस्त्र गिराया है॥

आखिर चलते-चलते घर पर, पहुंच गया है बेचारा।
रो पड़ता है चीख मार कर, अपनी किस्मत का मारा॥
क्या कुछ कहूं छुपाऊं क्या कुछ, उसे नहीं कुछ सूझ रहा।
किस्मत की अनबूझ पहेली, अपने मन से बूझ रहा॥

देख दशा घर वालों ने दुख, दिल में बड़ा मनाया है।
कहा—'मूल की पूंजी भी तू, हाय! गंवाकर आया है॥

▭ कथा समापन

तीनों पुत्र आगए घर पर, यात्रा की कर अवधि समाप्त।
इनको पूज्य पिता से होगा, एक प्रमाण-पत्र अब प्राप्त ॥
एक बढ़ा कर लाया पूंजी, एक गंवाकर आया धन।
एक मूल धन ले आया है, हुआ समाप्त यहीं वर्णन ॥

अब गृहपति के पद पर पहला, पुत्र बिठाया जाता है।
कर सन्मानित आज उसीको बड़ा बनाया जाता है ॥
इसकी सम्मति पा करके ही, क़दम उठाया जायेगा।
कारोबार और इस घर पर, शासन वही चलायेगा ॥
कहा पिता ने ऐसा सब से, बड़े प्यार के साथ सुनो।
कोषाध्यक्ष दूसरा लड़का, होगा मेरी बात सुनो ॥
इसने नहीं गंवाया कुछ भी, पूंजी सभी बचाई है।
द्रव्य सुरक्षित रख पायेगा, बात समझ में आई है ॥
पुत्र तीसरा घर से बाहर, अभी निकाला जाता है।
ऐसे को रहने देने से, निकल दिवाला जाता है ॥

एक पिता के तीन दुलारे, थी पर किस्मत अलग-अलग।
नहीं एक सम बन पाये वे, करके हिम्मत अलग-अलग ॥

यह दुनिया भी इस जीवन की, मण्डी ही कहलाती है।
लाख रुपये मानव तन की, क़ीमत मानी जाती है॥
पुण्य पिता की दया-मया से, मिली निराली पूंजी है।
बिना पुण्य के हाथ कहां यह, आने वाली पूंजी है॥
उत्तम योग्य प्रथम व्यापारी, वह जन माना जायेगा।
उभय लोक को मंगलकारी, सुखमय स्वयं बनायेगा॥
क्रोध, लोभ, मद, मोह, कपट में, जीवन नहीं गंवायेगा।
त्याग-तपस्या द्वारा अपनी, आत्मा को चमकायेगा॥
ऐसा प्राणी स्वर्ग मुक्ति का, ही अधिकारी होता है।
जाने पर दुनिया से उसका, स्वागत भारी होता है॥

स्वर्ग-मुक्ति पाने का जो जन, यत्न नहीं कर पाता है।
निश्छलता से सदाचार से, जीवन सदा बिताता है॥
नर तन तज कर नर तन को ही, फिर से वह पा जाता है।
ऐसा मानव दूजे सुत-सा, व्यापारी कहलाता है॥
सिद्ध नहीं सुर नहीं बना वह, रहा मनुज का मनुज बना।
यह भी नहीं अरे! कम अच्छा, मिला नहीं तिर्यञ्च पना॥

इसे कहेंगे उसने बिल्कुल, कुछ भी नहीं गंवाया है।
नर चोले से नर का चोला, फिर अनमोला पाया है ?

नरक और तिर्यंच योनि जो, मर कर मानव पाता है।
तीजे क्रम का ही व्यापारी, वह बस माना जाता है॥
नहीं जानता कौन इसे नर- काया सब से प्यापारी है।
इसे गंवाने वाला हारा- हुआ सुनो व्यारी है॥

पहला जीता और दूसरा, कहीं नहीं जीता हारा।
हारा हुआ तीसरा समझो, समझाया वर्णन सारा॥

---

1 दुल्लहे खलु माणुसे भवे,
चिंर कालेण वि सव्व पाणिणं
गाढा य विवाग कम्मुणो
समयं गोयम ! मा पमायए
—उत्तराध्ययन १०,१४

नरेषु चक्री त्रिदशेषु वज्री
मृगेषु सिंहः प्रशमो व्रतेषु
मतो महीभृत्सु सुवर्ण शैलो
भवेषु मानुष्यभवः प्रधानम्
—श्रावकाचार ११/२१

▭ उद्‌बोधन की कला

सुन कर सार कथा का पहले, क्रम पर जो नर आयेंगे।
वे नर यहां वहां पर भारी, शान्ति सौख्य ही पाएंगे॥
नहीं दूसरा दर्जा भी तो, ऐसा कोई घाटे का।
पता तीसरे को लग जाता, भाव दाल का आटे का॥

खड़ा हुआ प्रत्येक पुरुष है, देखो इस चौराहे पर।
सड़कें चार यहां से जातीं, ऊंची, नीची, इधर, उधर॥

एक सड़क तो स्वर्ग मुक्ति को, बिल्कुल सीधी जाती है।
नर-नगरी को सड़क दूसरी, शान्ति सहित पहुंचाती है॥
सड़क तीसरी लेने वाला, पशु की गति को पा जाता।
सड़क नरक की चौथी लेकर, मार यमों की है खाता॥
जिसका जिधर करेगा मन वह, अपने क़दम बढ़ायेगा।
लेकिन जो समझेगा पहले, 'चन्दन मुनि' सुख पायेगा॥

○ स्थान और आभार

लिखी कहानी यह भी मैंने, 'बरानाला' की मण्डी में।
लोग जहां पर क़दम टिकाते, दयाधर्म की डण्डी में॥

दोहज़ार विंशति विक्रम का, वर्ष निराला आया है।
'वीर जयन्ती' के अवसर पर, यह संगीत बनाया है॥
वीर जयन्ती महावीर की, पावन स्मृतियां लाई है।
'चन्दन' ने कर वन्दन प्रभु को, जय जय-कार बुलाई है॥

वरनाला
२०२० महावीर जयन्ती

□ १८ □

बड़ा कौन ?

नहीं आयु से किन्तु गुणों से,
बड़ा मानना बिल्कुल ठीक।
'चन्दन' सत्य व्यक्त करता है,
प्रस्तुत करके कथा-प्रतीक॥

० १८ ० बड़ा कौन ?

गुण-पूजा

अज्ञानी को बालक कह कर, सत्य सिद्ध कर देते शास्त्र।
लघु वय वाले ज्ञानी सज्जन, वृद्ध तुल्य पूजा के पात्र ॥
चार नेत्र जो ज्ञानी जन के, लेते भूत भविष्यत देख।
अज्ञानी अभिमानी रखता, केवल वर्तमान की टेक ॥
अमर नहीं पूर्वज होते तो, हम कैसे हो सकते थे।
काल अगर बलवान न होता, क्या उसको खो सकते थे ॥
शासन कर्त्ता के सम्मुख ज्यों, रहता सारा राज्य खड़ा।
बड़ा गुणों से जो होता है, होता है नर वही बड़ा ॥

ज्ञान वृद्ध पद वृद्ध सन्त का, वयोवृद्ध करते सम्मान।
अतः छोड़ कर ध्यान आयु का, गुण-प्रधान को हो दो मान॥
ज्ञान नहीं करता है 'चन्दन', नर-नारी में कोई भेद।
समदृष्टि के लिये जगत में, कहीं नहीं है कोई खेद॥

क्या न नारियां शक्तिमती हैं, पुरुषों का क्या ठेका जी?
सुनो कहानी इसी बात पर, कहीं नहीं जो देखा जी!

□ गुरु-शिष्य

'लीलावती पुरी' में आये, धर्माचार्य बड़े गुणवान।
सन्त शिष्य थे साथ अनेकों, शास्त्रों के विश्रुत विद्वान॥
सब से छोटे शिष्य यशस्वी, तेजस्वी आत्मा वाले।
आचार्यों का फर्ज प्राथमिक, लघु शिष्यों को संभालें॥
कुंभकार की कला बिना क्या, घट बन पाता माटी से?
गुरु बिन शिष्य न परिचित होता, आगम की परिपाटी से॥
जब व्याख्यान समाप्त होगया, हुई गोचरी की वेला।
भिक्षा के हित मांग रहा है, गुरु जी से आज्ञा चेला॥
भगवन्! भिक्षाहित जाने की, आज्ञा दें लावूं आहार।
शुद्धाहार-विचार संयमी– जीवन का है मूलाधार॥

□ मुनि और ईर्या

आज्ञा लेकर नवदीक्षित मुनि, चले गोचरी लाने को ।
मानो आज जा रहे हैं वे, सत्य तत्त्व समझाने को ॥
कहीं नहीं हो जाये हिंसा, चलते ऐसी सोधी चाल ।
ईर्यासमिति बिना कहो क्या, सन्त दोष सकते हैं टाल ?

□ सेठ का घर

चलते-चलते पहुंच गये हैं, एक बड़े दरवाजे पर ।
दरवाजे से ऐसा लगता, होगा किसी सेठ का घर ॥
घर के अन्दर जाकरके ही, भिक्षा लाते जैनी सन्त ।
बाहर से आवाज़ लगाना, नहीं सिखाता मुनि का पन्थ ॥
एषनीय आहार न होवे, किसी सचित्त वस्तु से स्पृष्ट ।
इसीलिये मुनि लेते भिक्षा, शुद्ध दृष्टि द्वारा जो दृष्ट ॥
दरवाजे के भीतर ही बस, बैठा बूढ़ा लेकर खाट ।
वृद्धावस्था में हो जाते, ऐसे ही शारीरिक ठाठ ॥
आंगन में देखा जो आगे, स्नुषा पकाती है खाना ।
मुनि को कभी न बोला जाता, आप नहीं आगे आना ॥
पुत्रवधू हर्षित हो करके, मुनि को देती है आहार ।
नज़र उठाकर देखा उसने, लघु मुनि जी का सौम्याकार ॥

□ गम्भीर प्रश्न

इस छोटी सी वय में दीक्षा, लेना कितना काम कड़ा।
"अभी सवेरा ही है" हे मुनि ! प्रश्न बहू ने किया खड़ा ॥

मुनि जी बोले—"काल न जाना", सुनकर बनी वधू है शान्त।
प्रश्नोत्तर के द्वारा ही तो, चित्त बना करता निर्भ्रान्त ॥
लघु मुनि जी ने समझा देवी, करती बड़ी ज्ञान की बात।
बात किया करते हैं खुलकर, ज्ञानी नर ज्ञानी के साथ ॥
ज्ञानी-ज्ञानी की बातों से, लोगों को मिलता आनन्द।
नहीं ज्ञान की बात समझते, महा मूर्ख मानव स्वच्छन्द ॥

मुनि बोले—हे बहन ! कहो तो, पूछूं मैं भी एक सवाल ?
अनुमति लेकर प्रश्न कीजिये, कहते हैं 'मुनि चन्दनलाल ॥'

बोली बहन बोलिये गुरुवर! दूंगी उत्तर बिल्कुल स्पष्ट।
प्रश्नोत्तर से मेरे मन को, नहीं पहुचता कोई कष्ट ॥

"क्या आचार तुम्हारे घर का," बहन ! मुझे बतलाना जी।
बोली देवी—'गुरुवर जी ! हम, खाते बासी खाना जी !

"मुनिबोले—हे बहन ! कहो तो, पूछूं मैं भी एक सवाल"

"तेरे सुत की, तेरे पति की, और श्वसुर जी की क्या वय?"
प्रश्नोत्तर संक्षिप्त हो रहे, क्योंकि नहीं है अधिक समय ॥

"सोलह बर्षों का सुत मेरा, आठ साल का प्राणेश्वर।
झूल रहे हैं पलने में ही, समझो शिशु हैं अभी श्वसुर" ॥

मुनि ने पूछा, कहा बहन ने, दोनों हुए परम सन्तुष्ट।
सरल और जिज्ञासु व्यक्ति कब, प्रश्नोत्तर से होते रुष्ट ॥

□ आहार-दान

बना हुआ जो भी था भोजन, भाव सहित वहराया है।
बारहवां व्रत निपजाना तो, बड़ा कठिन बतलाया है।
अज्ञातैषी और अलोलुप, मुनि लेते सात्त्विक आहार।
अपने लिये बनाया भोजन, मुनिजन कब करते स्वीकार ॥
भिक्षा के द्वारा ही मुनिजन, जीवन का करते निर्वाह।
सच्चे साधु हुआ करते हैं, जीवन के प्रति बे-पर्वाह ॥

लघु मुनि भिक्षा लेकर निकले, धीरे-धीरे उस घर से।
क्रुद्ध हो रहा वृद्ध पुरुष यों, लगता है आंखों पर से ॥

मुनि नें कुछ न कहा है उससे, उसनें कुछ न कहा मुनि से।
सोच रहा इस पुत्रवधू का, क्या सम्बन्ध रहा मुनि से ?

□ श्वसुर का रोष

मुनि जी के जाने पर उठ कर, घर में आया वृद्ध श्वसुर।
सुनी हुई सारी बातों पर, लगा उगलने बड़ा ज़हर ॥
"घर पर आये हुए साधु से, क्यों करती हो बात बड़ी।
बात बड़ी करने की तेरी, आदत कितनी बुरी पड़ी ॥
आटा लेने वाले को तुम, दे दो दो मुट्ठी आटा ।
भोजन लेने वाले को दो, भोजन यहां नहीं घाटा ॥
जैसा हम खाते हैं वैसा, साधु-सन्त भी ले जायें।
मुंह से नहीं, हमें आत्मा से, शुभ आशीषें दे जायें ॥
तू ने कहा—'सवेरा है मुनि !' "काल न जाना" मुनि बोले
पता नहीं कुछ पाया मैंने, तू भोली या मुनि भोले ॥

उससे आगे बढ़कर मुनि ने, पूछा जब घर का आचार।
"बासी खाना खाते हैं हम", बतला यह क्या है व्यवहार ॥
इतना तो है ज्ञात तुझे भी, क्या हम बासी खाते हैं ?
प्रतिदिन ही प्रत्येक समय का, खाना गर्म पकाते हैं ॥

हलवा-पूरी कभी खीर भी, बनते हैं मिष्टान्न अनेक।
उव को वासी बतला करके, प्रकट किया तूने अविवेक॥
जिस घर का खाती हो खाना, उसका तो कुछ मान करो।
झूठ बोल कर घर भर को मत, परेशान—हैरान करो॥
पढ़ी-लिखी विदुषी कहलाकर, ऐसी बातें करती हो।
घरवालों से और बड़ों से, नहीं ज़रा भी डरती हो॥

सुनता था मैं बैठा-बैठा, बहरे नहीं बने हैं कान।
घर का, सारे घर वालों का, तूने किया महा अपमान॥
भोली! इतना नहीं समझती, बोल रही हूं कैसे बोल।
ऐसे बोलों का वास्तव में, होता कभी न कोई मोल॥
श्वसुर झूलता जब पलने में, पुत्र कहां से आया जी!
पुत्र बिना तेरे को किसके, साथ कहो परणाया जी?
तेरा पति है आठ वर्ष का?, सुत है सोलह सालों का?
क्या गोरखधन्धा फैलाया, तूने वाणी—जालों का॥

नहीं अकेली ही तू भोली, मुनि भी था भोला-भाला।
तूने जो भी कहा साधु ने, मान लिया सच का प्याला॥
अगर समझता तो वह कहता, बनता है ताज़ा खाना।
दुनिया के सब व्यवहारों से, वह बिल्कुल था अनजाना॥

बांधी मुख पर मुखपत्ती पर, कैसे बोला करते हैं।
जैन साधु क्या शब्दों के यों, मोती रोला करते हैं?
मुख वे खोला करते पीछे, पहले तोला करते हैं।
रस-अस्वादी रसना द्वारा, अमृत घोला करते हैं॥
नहीं कभी भी स्वीकृत पथ से, किंचित् डोला करते हैं॥
महंगा मिला हुआ मानव का, पावन चोला करते हैं॥
नहीं उलझते शब्द–खाल में, सार टटोला करते हैं।
क्या न वितंडावादों से वे, टालमटोला करते हैं?

धूल मिलाई उसने इज्जत, लिये साधु के बाने की।
बोल रहा था—विद्या मानो, आती उसे ज़माने की॥

चपर-चपर करती तेरी भी, रसना चलती देखी है।
मुनि की मति से तेरी भी मति, मैंने हिलते देखी है॥

मुझ को अच्छा लगा न बिल्कुल, तुम दोनों का यह व्यवहार।
व्यवहारों के द्वारा ही तो, चलता है सारा संसार॥

सोचो, समझो, संभलो पहले, उलाहना क्यों खाना जी!
कोई बुरा बताये वैसे, पथ पर तो क्यों जाना जी!

घर की पुत्रवधू हो इससे, सीखो इज्जत से रहना।
रहना अगर तुम्हें आजाये, हमें नहीं कुछ भी कहना॥

कहना हमें तभी पड़ता है जब करती हो कोई भूल।
भूलें ही कुल-मर्यादा को, बना दिया करतीं हैं धूल॥

पता नहीं गुस्से में क्या-क्या, पुत्रवधू से वह बोला!
बूढ़े, बहरे, बालक, पागल, बोला करते अनतोला!

▭ पुत्रवधू का मन

छिपा स्वभाव नहीं था पहले, आज और भी परख लिया।
पुत्रवधू ने धैर्य न खोया, नहीं उपस्थित तर्क किया॥
वृद्ध और अल्पज्ञ पुरुष से, करना उचित न वाद-विवाद।
नीतिमती को नीतिसूत्र यह, भली भान्ति रहता था याद॥

नहीं समझने की ताकत जब, इनको कैसे समझावूं।
समझाना भी है आवश्यक, पंथ कौन सा अपनावूं॥
गए नहीं यह कभी आज तक, पूज्य साधु-सन्तों के पास।
इसीलिये हैं करते रहते, सदा साधुओं का उपहास॥
अपवस है उपयुक्त भेज दूं, आज इन्हें सन्तों के पास।
विना वृद्धि के क्या औरों को, उपजाया जाता विश्वास?

सविनय बोली—मैंने तो की, कोई अनुचित बात नहीं।
और कभी अनुचित बातों का, दिया आज तक साथ नहीं।।
बातें सच्ची अच्छी सारो, और ज्ञान से भरी हुई।
पुत्रवधू को समझ लिया क्या, कच्ची बच्ची डरी हुई?
कुल की शान, शान नारी की, शान साधु के बाने की।
ज्ञान भरे प्रश्नोत्तर द्वारा, कहीं नहीं वह जाने की।।

"अधिक तेज़ हो बूढ़ा बोला, क्या ऐसा भी होता ज्ञान?
मै झूठा हू तू सच्ची है, समझ रही मुझको अनजान"?

"आप बड़े हो मैं छोटी हूं, समझने में मैं असमर्थ।
सन्त-चरण में पहुंच पूछिये, वे बतला देंगे सब अर्थ।।

"मेरे प्रश्नों का उत्तर क्या, दे पायेगा लघु मुनिवर।
मुझे देख कर बड़े सन्त भी, कभी-कभी जाते हैं डर।।"

कहा वहू ने—'विनय मानिये, नहीं हठीपन अपनाएं।
सन्तों के चरणों में जाकर, समाधान निश्चित पाएं।।

बोला-श्वसुर अभी जाता हूँ, पूछूंगा मैं बड़े सवाल।
तेरी वा मुनि की बातों का, लाऊंगा सारांश निकाल ॥

☐ स्थानक में

घर से चला वृद्ध सजधज कर, जाने को मुनि-चरणों में।
सुने हुए प्रश्नों का उत्तर, पाने को मुनि-चरणों में ॥
बड़े "जैनस्थानक" में सीधा, पहुंचा वह सन्तों के पास।
अज्ञानी नर को भी होता, अपनी बातों पर विश्वास ॥
लोकाचार निभाने को ही, बैठ गया है वन्दन कर।
वन्दन करने से क्या 'चन्दन', बन जाता हैं छोटा नर ?

☐ शिकायत के स्वर

गुरु जी से बोला है बूढ़ा, मेरी एक शिकायत है।
जिसकी हुई शिकायत उसको, दी जाती न रियायत है ॥
मानें बुरा-भला चाहे जो, कहने को ही मैं आया।
अभी-अभी लघु शिष्य आपका, मम घर से भिक्षा लाया ॥
मेरी पुत्रवधू से उसने, बातें की हैं ऊल-जलूल।
ताजी बातें भूल न सकता, करनी होंगी सभी कबूल ॥

□ गुरुओं की भूल

विनय, विवेक, विचार शिष्य को, प्रथम चाहिये सिखलाना।
कर्त्तव्याकर्त्तव्यों का कुछ, पथ होता है दिखलाना॥
मगर खेद है मुने ! आपका, ध्यान इधर कम जाता है।
गुरु प्रत्येक शिष्य को पण्डित, ज्ञानी कहां बनाता है॥
सिर्फ़ सिखाकर 'प्रतिक्रमण' या, पच्चीे बोल सिखा करके।
कहते फ़र्ज़ होगया पूरा, प्यारा शिष्य बना करके॥
खाए-पीए बने आलसी, दिन भर वह आराम करे।
ज्ञान ध्यान स्वाध्याय शास्त्र का, नहीं सुबह या शाम करे॥

□ व्यक्तिगत विचार

मेरा कहने का मतलब है, योग्य व्यक्ति को दीक्षा दें।
दीक्षा देकरके भी उसको, भली भान्ति से शिक्षा दें॥
दीक्षा देने से पहले भी, उसको पूर्ण परीक्षा लें।
दीक्षार्थी के अभिभावक से, फिर श्री सद्गुरु भिक्षा लें॥
वय का प्रश्न नहीं है मेरा, जब भी मन वैराग्य उठे।
तभी साधना के सत्पथ पर, बढ़ने को ले शक्ति जुटे॥
कहीं नहीं स्खलना होने दे, मन को कभी न सोने दे।
सहनशील अध्ययन गहन कर, मन को कभी न रोने दे।

बहुत नहीं हों, भले एक हो, योग्य शिष्य होता उत्तम।
इन सारी बातों का लेकिन, रखा ध्यान जाता है कम॥

☐ फिर वहीं

शिष्य आपका छोटा उसको, भाषा का भी ज्ञान नहीं।
ऐसे शिष्यों को क्या दुनिया, कह सकती नादान नहीं ?
नहीं शिष्य को मुने ! आपको, उलाहना देने आया।
यां बातों का भेद जान कर, गुरुवर ! कुछ लेने आया॥

☐ गुरु जी का चिन्तन

सुनकर बातें वृद्ध पुरुष की, गुरु जी ने सन्तोष रखा।
सोचा—'गुस्से में होकरके, अंटसंट कुछ वृद्ध बका॥
मेरा कोई शिष्य न ऐसा, जो भोला अज्ञानी हो।
जिसके द्वारा जैनसघ की, मान-हानि अनजानी हो॥
हलकी और छिछोरी बातें, करते मेरे सन्त नहीं।
सन्त नहीं हो सकते हैं जो, बतलाते सत्पन्थ नहीं॥
मेरे शिशु मुनिवर पर मेरे- मन को पूर्ण भरोसा है।
देकर दोष रोष से नाहक, जिसको इसने कोसा है॥

बोले गुरु जी—'सुनो सेठ जी! बतलावो क्या बात हुई ।
बात नहीं क्या करने लायक, पुत्रवधू के साथ हुई ?

बोला वृद्ध-'बुलावो मुनि को, पुछवाऊंगा सारी बात ।
डांट-डपट कर पूछें उससे, बतलाएगा सारी बात' ।।

गुरु जी बोले—'अभी-अभी लो, बुलवाता हूं उसको पास ।
ऐसी कोई बात नहीं है, फिर कर लेगा शास्त्राभ्यास ।।
आये लघु मुनि गुरु-सेवा में, सविनय शीश झुकाया है ।
भंते! क्या आज्ञा है? कैसे- याद मुझे फ़रमाया है ?

''इस वूढ़े के घर पर क्या तुम, गये गोचरी लाने को ?
बातें जो भी हुई वहां पर, कहता मैं बतलाने को ।।''

बोला शिष्य—'सेठ थे बैठे, दरवाजे में डाले खाट ।
इनसे ही अब पूछा जाए, सुना इन्होंने जो भी पाठ ।।

बोले गुरु जी—'सुनो सेठ जी ! स्वयं पूछलें स बवृत्तान्त ।
अपने संशय आप मिटायें, समाधान सुन आद्योपान्त ।।

○ वृद्ध की बात

पूछा पुत्रवधू ने पहले, "अभी सवेरा है" मुनिवर।
"काल नहीं जाना" फिर ऐसा, दिया आपने था उत्तर॥
बतलायें गुरुदेव! आप ही, इन दोनों का कितना ज्ञान।
प्रज्ञाचक्षु व्यक्ति भी इससे, कहीं अधिक करता अनुमान॥
शिखर दुपहरी को भी उसने, "अभी सवेरा" बतलाया।
"काल नहीं जाना है मैंने", लघु मुनि जी ने फ़रमाया॥
कहीं बादलों या आंधी का, देखा नाम निशान नहीं।
सुबह दुपहरी का भी देखो, इन दोनों को ज्ञान नहीं॥
इन दोनों को मूर्ख नहीं तो, बुद्धिमान क्या बतलावूं ?
स्पष्टी-करण करें इसका ही, फिर आगे बढ़ता जावूं॥

□ गुरु समझ गये

बात शान्ति से सुन बूढ़े की, हर्षित हुए सुगुरु ज्ञानी, ।
भला बुद्धिमत्ता दोनों को, कैसे रह सकती छानी॥
वहां वृद्ध की बुद्धि न पहुंची, इसीलिये मन क्रुद्ध हुआ।
शुद्ध बोध भी क्या न क्रोध से, अपने आप अशुद्ध हुआ ?
अगर पूछता पुत्रवधू से, अगर सोचता भी मन से।
तो न बोलता आकर ऐसे, अपने अविवेकीपन से॥

उलटा अर्थ लगाकरके ही, दौड़ा-दौड़ा आया है।
आते ही बस लम्बा-चौड़ा, भाषण यहां सुनाया है ॥
मैं समझाऊंगा यदि इसको, तो फिर लेगा उलटा अर्थ।
अर्थ बदल डाला करते हैं, बुद्धिमान नर बड़े समर्थ ॥
मैं क्यों बोलूं, शिशु मुनिवर ही, इसका उत्तर देगा जी !
नहीं निरुत्तर करना केवल, ज्ञान अनुत्तर देगा जी !
हार-जीत का लक्ष्य न रखना, प्रश्नोत्तर से देना बोध।
हार-जीत का लक्ष्य बना कर, क्या न लिया जाता प्रतिशोध ?

बड़े स्नेह से गुरु शिशु मुनि से, बोले आशय स्पष्ट करो।
वृद्ध पुरुष की शंकाओं को, मूल सहित तुम नष्ट करो ॥

▭ शिशु मुनि का ज्ञान

शिष्य सुगुरु की आज्ञाओं को, शिरोधार्य करते आये।
प्रतिवादी से प्रतिभाशाली- पुरुष नहीं डरते आये ॥
"अभी सवेरा" "काल न जाना" प्रश्नोत्तर है यही सही ?
प्रगट अभी कर देता हूँ, जो, मूल भावना छिपी रही ॥
सुबह और मध्यान्ह, शाम ही, तीन अवस्थाएं दिन की।
बचपन यौवन तथा बुढ़ापा, तीन व्यवस्था जीवन की ॥

बचपन सुबह दुपहरी यौवन, वृद्धावस्था सायंकाल।
ऐसा सभी मानते हैं जी, वृद्ध युवा नर-नारी बाल॥
मेरी बाल्यावस्था पर ही, उसने कहा सवेरा है।
क्या देखा-भाला दुनिया का, अभिप्राय यह मेरा है॥
कठिन साधना का यह पथ क्यों, अभी-अभी से स्वीकारा?
भोग भरा जीवन क्यों मुनिवर! नहीं आपको है प्यारा?

"काल न जाना" कह करके ही, मैंने उत्तर स्पष्ट दिया।
स्पष्ट बात को स्पष्ट समझते, यदि होता कुछ कष्ट किया॥
बहन! काल का नहीं भरोसा, क्या जाने कब आजाये।
उसके भक्ष्य सभी संसारी, क्या जाने कब खा जाये॥
वृद्धों को ले जाता ही है, शिशुओं को भी ले-जाता।
जोधजवानों के जीवन पर, कभी तमाचा दे जाता॥
कभी जन्म लेने से पहले, मर जाते हैं शिशु उदरस्थ।
चेतन और अचेतन तक को, काल किया करता है ध्वस्त॥
नहीं बुढ़ापा आता जब तक, आता जब तक काल नहीं।
करलो धर्म, लगा हो जब तक, माया का जंजाल नहीं॥

जरा-जीर्ण काया होने पर, नहीं इंद्रियां करतीं काम।
काम धर्म का किया न जाता, लिया न जाता प्रभु का नाम॥

पीछे पछतावा करने से, हाथ नहीं आता अवसर।
करना कल वह करो आज ही, करना आज अभी वह कर॥
समझी बहन सत्य है शिशु मुनि, काल-चक्र है दुर्दमनीय।
इसीलिये यह दुनियादारी, मानी गई नहीं रमणीय॥
बोलो सेठ! समझते हो क्या, मेरे कहने का आशय?
प्रश्न और भी कर सकते हो, कहीं रहा हो यदि संशय॥

▭ सेठ का अहं

वृद्ध सेठ ने सुना अर्थ जब, चकित होगया मन ही मन।
मैं तो उलटा ही समझा था, मेरा यह अविवेकी-पन॥
अगर अभी स्वीकारूंगा तो, शर्मसार मैं होऊंगा।
बची-खुची भी बुद्धि स्वयं की, मुनि के सम्मुख खोऊंगा॥
ऐसे सोच-समझ कर बूढ़ा- बोला-इसको जाने दें।
आगे की ही बातों को अब, पहले आगे आने दें॥

☐ प्रश्नोत्तर दूसरा

प्रश्न द्वितीय किया था–"बाई! तेरे घर का क्या आचार?"
"खाते हैं हम बासी खाना," उत्तर मिला यही सुखकार॥

आवश्यकता है नहीं साधु को, ऐसी बातें करने की ।
वृत्ति नहीं उत्तम कहलाती, अपनी झोली भरने की ।।
नीम्बू आम मिरच का खट्टा- मीठा क्यों मांगे आचार ।
आज मिले आचार अमुक यह, साधु लोग क्यों करें विचार।
भाव सहित जो भी मिल जाये, महुग्घयं सम मुनि खाये ।।
पकवानों पर मिष्टान्नों पर, साधु नहीं मन ललचाये ।।
कोई दे तो ले ले चाहे, मांगे नहीं कभी मुनिवर ।
मांग-मांग कर लेने से गिर- जाता है मुनियों का स्तर ।।
रसना पर, काबू रखने को, रखा गया है व्रत अस्वाद ।
"बिलमिव पन्नग भूए" को मुनि, सदा किया करते हैं याद।।

मुनि बोले—मैं बोलू इसका, स्पष्ट अर्थ क्या होता है ?
स्पष्ट अर्थ ही श्रोताओं की, शंकाओं को खोता है।
"आचार: प्रथमो धर्म:" से, संबंधित यह प्रश्न उदार।
खाने का आचार न पूछा, पूछा जीवन का व्यवहार ।।

कहो सेठ जी! कल की रोटी, बासी होती या ताजा ?
बासी खाना क्यों खायेगा, मन का-धन का जो राजा ।।
कल की क्या प्रातः की रोटी, नहीं शाम तक भी ताजा।
ताजा खाना ही खाता है, मन का धन का जो राजा ।।

सुख पाया जो यहां आपने, यह किस करनी का है फल ?
पूर्व जन्म की करणी को ही, बासी समझो बात असल ।।

नरभव मिला, मिला उत्तम कुल, और पूर्ण आरोग्य मिला।
मिले हुए भोगों को सुख से, समय भोगने योग्य मिला ।।
दारा मिली, मिले सुत नाती, कीर्त्ति और यश मिला भला।
ऊंची मनोवृत्तियां पाईं, जीने की भी मिली कला ।।
इच्छाएं अवशिष्ट न रहतीं, मिलना था वह सभी मिला।
लेकिन खाते बासी खाना, उसका अर्थ यहां निकला ।।
धर्म किसे कहते हैं इतना, नहीं जानते सच्चा तत्त्व।
खाने-पीने में ही सारा, मानव-भव का नहीं महत्त्व ।।
मुनियों के घर आने पर ही, शीश झुकाते मुश्किल से।
दर्शन करने कभी न जाते, जाते शरमाते दिल से ।।
माला, सामायिक, सम्वर का, प्रतिक्रमण का काम नहीं।
कभी 'णमो अरिहंताणं का, लेते मुख से नाम नहीं ।।
दान नहीं है दया नहीं है, नहीं भलाई भी करते।
हाय कमाई ! हाय कमाई! हाय ! हाय ! करते मरते ।।

प्रातः से सायं तक का क्रम, मौज-शौक का है तैयार।
मरने को भी भूल गये हो, है दुनिया से इतना प्यार ।।

जैसे आये हो वैसे ही, क्या न कभी जाना होगा ?
कभी नहीं जाना होगा यों, मन से ही माना होगा ।।
किये बिना जो नहीं मिला तो, किये बिना क्या पाओगे ।
जाओगे जब पर-भव में तब, बतलावो क्या खाओगे ?
नित्य कमाते हो धन जैसे, धर्म कमाया जाये नित्य ।
क्या न अस्त होकरके भी फिर, उदयाचल आता आदित्य ?
धन की तरह धर्म का भी तो, रखिये अपना खाता डाल ।
'चन्दन' जो स्थायी पूंजी है, उसको क्यों न रखो संभाल ।।

पुत्रवधू के उत्तर में क्या, अब भी संशय रहता है ?
स्पष्ट मनः स्थिति यहां आपका, विस्मित आनन कहता है ।
प्रश्नोत्तर सच थे या तुम सच? हां नां में दे दो उत्तर।
क्या न हुए सन्तुष्ट अभी तो, पा करके यह प्रत्युत्तर ?
जीवन का यह लेखा-जोखा, नही छिपाया जा सकता।
सन्तों के ही सम्मुख जाकर, है रहस्य नर पा सकता ?

□ हार स्वीकार

बोला वृद्ध—'ज्ञान है गहरा, मैंने नहीं निकाला माप ।
गलत धारणा निकली मेरी, बिल्कुल सच हैं दोनों आप ।।

ठण्डा ही पड़ता गया, यों बूढ़े का जोश ।
'चन्दन मुनि' उसको मिला, उत्तर से सन्तोष ।।

बोला—प्रश्नोत्तर अगले में, हार आप ही खाओगे ।
देखूं मैं, उस पर क्या अपनी, युक्ति नवीन लगाओगे ।।
सुत की, पति की तथा श्वसुर की, आयु पूछ कर किया कमाल ।
पुत्रवधू ने उत्तर देकर भी, कर डाला था पूर्ण सवाल ।।
आयु आपने पूछी ही क्यों, कोई करना था सगपन ?
उत्तर देकरके दिखलाया, पुत्रवधू ने पागलपन ।।
सोलह का सुत, आठ वर्ष का- अपने पति बतलाती ।
श्वसुर भूलता है पलने में, बात मेल कैसे खाती ?
दुनियादारी क्या है होती, नहीं जानते हैं मुनि! आप ।
इसीलिये ही होते हैं क्या, छोटे सन्त अधिक निष्पाप ?

बोले मुनि जी सुनो सेठ जी! मुझे न करना था सगपन ।
इस दुनिया के सगपन ही तो, वास्तव में हैं पागलपन ।।
मैंने सोचा—बहन सुशीला--- जैसा है क्या कोई और ।
इसीलिये छेड़ा था मैंने, ऐसे जटिल प्रश्न का दौर ।।

धर्म-ध्यान में जो दिन जाते, वे जीवन-दिन कहलाते।
धर्म-ध्यान से रहित सभी दिन, समझो व्यर्थ चले जाते॥
सुत, पति, श्वसुर धर्म क्या करते? यही प्रश्न का है सम्बन्ध।
नाक बन्द होने से कैसे, ले सकता है व्यक्ति सुगन्ध॥

सुत की आयु बताई सोलह, उसका स्पष्ट यही है अर्थ।
जब से लगा समझने तब से, बना धर्म के लिये समर्थ॥
सुत के जीवन पर पड़ता है, माता का ही पूर्ण प्रभाव।
धार्मिक संस्कारों के खातिर, डाला जाता नहीं दबाव॥
जैसा मां करती है वैसा, छोटा शिशु भी करता है।
अगर डराए मां उसको तो, अन्धेरे से डरता है॥
माता घड़ती शिशु का जीवन, सोलह आने सच्ची बात।
शिशुओं का तन-मन जीवन-धन, घड़ना माताओं के हाथ॥
साक्षर संस्कारित माता के, सुत होते शालीन बड़े।
अच्छी माटी से जो बनते, होंगे अच्छे क्यों न घड़े?

आठ साल के पति हैं कैसे, इसका भी समझो मतलब।
अभी नहीं समझोगे तो फिर, सत्य तत्त्व समझोगे कब?
पुत्रवधू ने कहा—हुआ जब, उस घर में मेरा आना।
मेरे पति का सारा जीवन, था दुनिया का दीवाना॥

धर्म-कर्म की बातें सुनकर, चढ़ा लिया करते थे नाक॥
वास्तव में तो अन्तराय का, हुआ नहीं समझो परिपाक॥

मैं कहती कुछ धर्म करो, तब- कहते रखा धर्म में क्या ?
कौन बता सकता है सच्चा, मेरे लिखा कर्म में क्या ?
कर्म-धर्म कुछ वस्तु नहीं है, वस्तु वास्तविक है पुरुषार्थ ?
स्वर्ग-नरक की झूठी बातें, झूठे हैं सारे शास्त्रार्थ ॥
खाओ, पीओ, मौज उड़ावो, किसने देखा है परलोक।
डरते और डराते रहते, जो नर होते हैं डरपोक ॥
बल से नहीं बुद्धि से मैंने, समझाने का किया प्रयास।
आठ वर्ष से अब उनको भी, हुआ धर्म पर दृढ़ विश्वास ॥
सुबह "जैनस्थानक" में जाकर, मुनियों के दर्शन पाते।
दर्शन करने से पहले वे, पीते नहीं नहीं खाते ॥
जब भी होता हो स्थानक में, प्रवचन सुनने को जाते।
मंगल करने वाला मंगल— पाठ प्रेम से सुन आते ॥

चित्त दुखाते नहीं किसी का, नहीं बोलते कटु वाणी।
जिनवाणी का सार यही, सुखाभिलाषी हर प्राणी ॥
निन्दा करते नहीं पराई, नहीं बुराई भी करते।
करते सदा भलाई अपनी, और पराई भी करते ॥

जीवन-पथ पर आते जाते, नहीं बनाते बात फिजूल।
जीवन के हित बना लिये हैं, नियम धर्म के जो अनुकूल ॥
जीवन पहला व्यर्थ गंवाया, आठ वर्ष से लगी लगन।
सत्य शील में दया, दान में, रहते हैं वे सदा मगन ॥
इसीलिये प्रति आठ वर्ष के, समझ लीजिये प्रश्नोत्तर।
सच्चे जीवन से सम्बन्धित, होते हैं ये मुखरित स्वर ॥

"श्वसुर झूलते हैं पलने में, इसका समझ लीजिये सार।
जनमे जब से तब से अब तक, नहीं धर्म से कोई प्यार ॥
चेतन और अचेतन में वे, करते कोई भेद नहीं।
बुरा किसी का हो जाने पर, होता मन में खेद नहीं ॥
जाते नहीं कभी स्थानक में, दर्शन प्रवचन दूर रहे।
कहे किसी के द्वारा कोई, बोल न जाते कभी सहे ॥
जीते केवल धन खातिर वे, मरते हैं केवल धन पर।
धन ही धन छाया रहता है, 'चन्दन' प्रतिक्षण इस मन पर
खाना पीना और कमाना, रात पड़े तब सो जाना।
"मैं क्या हूं" यह याद न रहता, दुनिया में ही खो जाना ॥

आया हूं मैं अगर कहीं से, जाना होगा कहीं अवश्य।
मेरे साथी रहें न मेरा— रहना होगा नहीं अवश्य ॥

ध्यान नहीं आता इतना भी, ज्ञान कहां यह आयेगा।
जो सद्ज्ञान शून्य हो जीवन, वह शिशु सम कहलायेगा॥

▭ आप बोलिये

बोलो-तुमने कभी धर्म को, समझी है क्या परिभाषा?
बोलो-क्या पूरी कर पाये, भोगों की तृष्णाआशा?
बोलो-क्या स्थिर रह पाओगे, ले जावोगे धन को साथ?
जीवन और मृत्यु क्या होते, कभी किसी मानव के हाथ?
बोलो-यथा स्वार्थ है प्यारा, क्या प्यारा भी है परमार्थ?
बोलो-पुत्रवधू ने जो कुछ, कहा ज़रा भी क्या अयथार्थ?

▭ मानसिक पीड़ा

सुनकर सत्य विवेचन सारा वृद्ध होगया परम नरम।
खुली हवा में रख देने से, पानी रहता नहीं गरम॥
सुन कर सभी विवेचन मन में, लज्जा उसको आई है।
कर दी सब प्रत्यक्ष उन्होंने, जीवन की सच्चाई है॥
यह शिशु मुनि सच्चे है, मेरी—पुत्रवधू भी है सच्ची।
इन दोनों की सारी बातें, उत्तम ज्ञानमयी अच्छी॥

भोले बालक की बातों का, होता न ज्यों कोई अर्थ ।
बिना धर्म के जीवन को भी, वैसे माना जाता व्यर्थ ॥
बड़ी आयु होने से कोई, बड़ा नहीं कहलाता है ।
लघु वय वाला भी धर्मी जन, परम पूज्य बन जाता है ॥
सौ मन पत्थर एक ओर हो, लघु हीरा हो दूजी ओर ।
पर हीरे के महा-मूल्य का, पा न सकेगा पत्थर छोर ॥
शिशु मुनि का, शिशु मुनि के गुरु का, कितना है उपकार महान
इनके द्वारा ही पाया है, मैंने जीवन का विज्ञान ॥

□ प्रत्यक्ष स्तवना

ऐसे सोच समझ कर बोला, माफ़ करो मेरा अपराध ।
ज्ञानी पुरुषों के सम्मुख यों, मैंने किया वितंडावाद ॥
छोटा शिष्य आपका इतना, है विद्वान गुणी ज्ञानी !
हे गुरुदेव ! यहां आकरके, मैंने बात अभी जानी ॥
मैंने समझ रखा था इसको, क्या होगा आता-जाता ।
लेकिन लघु वय में ही सच्चे, तत्त्व ज्ञान का है ज्ञाता ॥

समझाने का ढंग विलक्षण, बड़ा विलक्षण उत्तम मन्त ।
स्थैर्य धैर्य गाम्भीर्य देखिये, ये उत्तम लक्षण अत्यन्त ॥

किया कमाल आपने भी तो, ऐसा योग्य बनाने में।
विरले आज आप-से होंगे, धर्माचार्य ज़माने में॥

मेरे से भी अधिक योग्य हों, मेरे प्यारे शिष्य भले।
भले धर्मगुरुवर के मुख से, भली-भली वाणी निकले॥
मेरा शिष्य नहीं रह जाये, कहीं निरक्षर भट्टाचार्य।
धर्माचार्य क्रिया करते हैं, ऐसा ही उद्यम व्यवहार्य॥
गुरु से शिष्य शिष्य से गुरुवर, कहलाते हैं सौभागी।
सौभागी की परिभाषा है, मुनि हो त्यागी वैरागी॥
मुनि का जीवन ही शिक्षा है, चाहे कोई करे ग्रहण।
पार लगाने के हित नद में, बहते रहते सदा प्रवहण[1]॥
मैंने मेरे बड़े भाग्य से, अच्छे दर्शन पाये आज।
आज जमा करलो खाते में, क्यों खोया जायेगा ब्याज॥
चली गई उसको जाने दो, रही-सही से लेना काम।
सही यही है प्रेम भाव से, बस प्रभुवर का लेना नाम॥

☐ सम्यक्त्व दीजिये

छुड़वाकर मिथ्यात्व, दीजिये- श्री सम्यक्त्व धर्म-सोपान।
चौथा गुणस्थान यह उत्तम, शुरू यहीं से होगा ज्ञान॥

१ बेड़े

श्री अरिहन्तदेव, सद्गुरु को, दयाधर्म को दो पहचान।
नव तत्त्वों का, षड द्रव्यों का, शुरू यहीं से होगा ज्ञान॥
सम्यग्दर्शन द्वारा बनते, बहिर्दृष्टि से सम्यग्-दृष्टि।
धर्माङ्कुर फूटा करते हैं, या प्रभु-गुरु की करुणा-वृष्टि॥

▫ गुरु की गुरुता

गुरु बोले—अपराध न मानो, यह जिज्ञासा भाव बड़ा।
तुमने चाहे उलटा बोला, उलटा नहीं प्रभाव पड़ा॥
छोटा शिशु क्या समझा करता, करूं प्रणाम पिता जी को।
करूं वही क्या काम भले जो- लगते काम पिता जी को॥
चांटा लगा दिया करता है, बालक क्या न पिता जी के।
कभी खींच भी लेता अक्सर, बालक कान पिता जी के॥

जब वह बालक समझ पकड़ता, तब करता है पितृ-विनय!।
बाल-क्रियाओं को क्या कोई, माना करता कहीं अनय?

अब तुम समझ गए हो तब क्या, बोलोगे फिर अविनय से?
हमें ज्ञान देने से मतलब, जय से नहीं पराजय से॥

आने वाला ही समझेगा, सन्तों की सद्-वाणी को।
समझाया कैसे जा सकता, घर-घर जा कर प्राणी को॥
आप नहीं आते तो कैसे, मिलता बोलो जीवन-तत्त्व?
कहते स्थानक में आने का, 'चन्दन मुनि' है बहुत महत्त्व॥

☐ खमत खामणा

श्री सद्गुरु के चरणों में अब, वन्दन करता बारम्बार।
श्रद्धा भक्ति प्रकट होने को, खोल दीजिये मन के द्वार॥
खमतखामणा कर सद्गुरु से, लघु मुनिवर से बारम्बार।
बूढ़ा अपने घर आया है, नहीं हर्ष का कोई पार॥

पुत्रवधू से लगा खिमाणे, हाथ जोड़ कर बारम्बार।
गुरु का, लघु मुनि का, या मानूं- पुत्रवधू! तेरा आभार?
तू है धन्य! धन्य! है तेरा, यह उत्तमतम जीवन-ज्ञान।
तू क्या आई, आई लक्ष्मी, आई आज मुझे पहचान॥

पुत्रवधू ने कहा—'धर्म का, 'चन्दन' सारा भला प्रताप।
धर्म बड़ा है इस दुनिया में, मैं न बड़ी हूं, बड़े न आप॥

□ कथा सार

हुई समाप्त कथा छोटी-सी, देती लेकिन ज्ञान बड़ा ।
नहीं आयु का स्थान बड़ा है, मानो गुण का स्थान बड़ा ॥
'चन्दन' सत्य तथ्य अपनाकर, जीवन में व्यवहार करो ।
सम्यग्दर्शन द्वारा अपना, बेड़ा भव से पार करो ॥

'दो हजार तेवीस, विक्रमी, आषाढी पूनम सुखकार ।
'बरनाला' नें संगीतों की 'चन्दन' लाया नई बहार ॥

बरनाला
२०२३ आषाढ़

- १६ -

सच्चा फ़क़ीर

८

धन न लिया करते हैं 'चन्दन',
पहुंचे हुए फ़कीर यहां ।
पढ़िये आप प्रेम से पहले,
छोटी एक नज़ीर यहां ॥

१६ सच्चा फ़क़ीर

एक दिन नृप एक ऐसे, बोलते हैं—अय वज़ीर !
बांट आओ मोहरें ये, जो मिले तुमको फ़क़ीर।

हाथ में थैली थमादी, नृपति ने तब प्यार से,
'जो हुकम" यों बोल मंत्री, चल पड़ा दरबार से

शाम को वापस हुआ है, घूम कर सारा नगर,
थी भरी की ही भरी वह, हाथ में थैली मगर,

देख कर थैली नृपति अब, चित्त में चकरा गये,
पूछते हैं–किस लिये वापिस लिये घर आगये ?

मोहरों को बांटने का, कर न पाये काम क्यों ?
व्यर्थ पुर में घूम कर, कर दी सुबह की शाम क्यों?

धीरता से वीरता, से जोड़ करके हाथ वह,
कह रहा है बात गहरी, ज्ञान के ही साथ वह।

गीतिका की ध्वनि

"ह्राथ में थैली घमादी, नृपति ने तब प्यार से"

□ मिला ही नहीं

खोज की मैंने फ़कीरों की नगर में घूम कर,
कह रहा हूं ठीक मुझको, मिल न पाया एक पर।
नृपति तब बोले—अरे! क्या, बक रहे हो इस तरह?
मानलूं मैं यह तुम्हारी, बात सच्ची किस तरह।
है भला घाटा फ़कीरों का कहीं इस शहर में,
बह रहे हो, क्या पता, मन्त्री स्वयं किस लहर में।
देख तेरी शकल-सूरत, यह अक्ल हैरान है,
दसों बीसों सैंकडों से नृपति की पहचान है।
घूमने जब भी निकलता हूं सुबह या शाम मैं,
देखता हूं तब फ़क़ीरों, को नगर में आम मैं।
और फिर बाहर नगर के भी कमी क्या कुछ भला
क्या नहीं देखा वहां पर, काफ़ले का काफला ?

□ यह बात है

तब कहा-- राजन्! सही यह, आपकी तो बात है,
सन्त सच्चा मोहरों को, कब लगाता हाथ है।
जब लगा देने, उन्होंने कर दिया इन्कार तब,
समझने में आ गया है सत्य का कुछ सार अब।

सन्त सच्चे थे नहीं वे, मांगते थे बेशुमार,
इक फ़कीरों को लुटाना, आपका था सद् विचार।
आगई अतएव थैली, आपको वापस हज़ूर !
माफ़ करदें आप मेरा हो अगर इस में कसूर।
बात सुन कर अब नृपति को, सब समझ में आगया,
है फ़कीरी त्याग में ही, भेद सच्चा पागया।
जो नहीं त्यागी विरागी, खाक है वह फिर फ़कीर,
भूल में था एकदम मैं, सत्य है मेरा वज़ीर।
कर रहा है नृप सचिव का प्रेम से सत्कार अब,
प्यार करता ही रहा है, सत्य से संसार अब।
'शेखसादी' ने 'गुलिस्तां', में लिखी यह बात है,
देखलो 'चन्दन' फ़कीरी, त्याग के ही साथ है।

'युग्महजार वीस' विक्रम का, मास चढ़ा वैसाख भला[1]।
कथा पुरानी को कहने की 'चन्दन मुनि' की नई कला॥
चाहे जैसे मथिये लेकिन, निकलेगा दधि से नवनीत।
"चन्दन मुनि' शिक्षा देता है, नये बना करके संगीत॥
पढ़ो पुस्तकें अच्छी, सच्ची- सच्ची बातें लेना चुन।
पढ़ने को जो समय नहीं हो तो लो 'चन्दन मुनि' से सुन॥

---

१ लावनी छन्द

० २० ०

धर्मप्रकाश

□

एक कुटुम्ब मर्म-वाणी से,
ख़त्म हो गया क्षण भर में।
'चन्दन मुनि' माधुर्य भरोगे,
निज जीवन में निज स्वर में।

□

२० मर्म-प्रकाश

वाणी एक विशेष गुण

शब्द-शक्ति को दिव्य शक्ति से, बढ़कर बतलाते विद्वान ।
औषधियों से जो न बच सके, शब्द-शक्ति से बचते प्राण ॥
ओष्ठ कपाट युगल जैसे हैं, मुख है कोट समान बड़ा ।
शब्द-रत्न अनमोल खज़ाना, रसना में है भरा पड़ा ॥
शब्दों द्वारा अपने मन के, भाव प्रकट कर सकता नर ।
वाणी से विश्वास दिला कर, प्रेम-भावना सकता भर ॥
सुख कह सकता, दुख कह सकता, दे सकता उपदेश भला ।
इसीलिये बतलाई जाती, "वचन बोलना" एक कला ॥

पशु दुख पाता नहीं बोलकर, बोल-बोल नर दुख पाता।
ज्ञान बोलने का हो जिसको, वही यहां पर सुख पाता ॥
पशु प्यासा मर जाए लेकिन, मांग नहीं सकता पानी।
और सभी कुछ पाया उसने, एक नहीं पाई वाणी ॥

□ बोलना सीखो

पहले तोलो पीछे बोलो, दिल खोलो जो देखो स्थान।
वाणी-संयम को कहते हैं, नीतिकार दैवी वरदान ॥
बहुत बोलना बहुत बुरा है, बोलो एक सुनो दो बात।
सुनने से तो आधा बोलो, जीभ एक श्रुति दो साक्षात ॥
सुनो इधर की, सुनो उधर की, इसीलिये पाए दो कान।
दोनों से सुन लेने पर ही, खोली जाए एक ज़बान ॥
रसना में रस-विष रहते हैं, सोच निकालो चीज़ भली।
विष को सुधा बनाने वाली, वाणी में तजवीज़ भली ॥

जीभ जोड़ती जीभ तोड़ती, जग के ये रिश्ते-नाते।
बुरा बोल कर छिपती रसना, दान्त मार खा गिर जाते ॥
अच्छा खाती अच्छा पीती, अच्छा लेती स्वाद भला।
अच्छा वचन बोलना क्यों फिर, जीभ न रखती याद भला?

जीओ, मरो बोलने से क्या, जीता, मरता कोई नर ?
विश्लेषण कर देखा जाए, एक सुधा है एक ज़हर ।।
क्या बोला, कब बोला कैसे- और किसलिये बोला जी !
मितभाषी जन इन प्रश्नों में, करें न टालमटोला जी !

शक्ति क्षीण होती आत्मा की, अधिक बोलने वालों की।
ढेरी शीघ्र खत्म हो जाती, शीघ्र तोलने वालों की।।
काम निकलता अगर एक से, तो दो शब्द न बोलो जी !
हल्के हैं या वज़नी हैं ये, ज़रा उठाकर तोलो जी !
शब्दों पर पैसे लगते हैं, तार लगाया जाता जब।
आवश्यक हो उससे ज्यादा, नहीं लिखाया जाता तब।।
कम शब्दों में अधिक भाव हो, ऐसे वाक्य जंचालो जी !
काम इशारे से हो जाए, तो मत शब्द निकालो जी !

□ वाणी के गुण दोष

चुग़ली, निन्दा झूठ बोलना, गाली देना शीघ्र निकाल।
कर्कश वाणी, मर्म-प्रकाशन, वाणी के छः दोष विशाल।।
हित, मित, सत्य, सरल, सुखदायी, मीठी, कोमल, हो प्यारी
अष्ट गुणान्वित वाणी सुन्दर, बोला करते नर-नारी ।।

काया पाप किया करती कम, करती बहुत अधिक वाणी।
उससे कहीं अधिक करता मन, कहते यों केवलज्ञानी ॥
बाणों से भी बढ़कर करती, वाणी अपना तीक्ष्ण प्रहार।
हथियारों से कब लड़ते हैं, वाणी से लड़ता संसार ॥

वाणी से भी खानदान की, हो जाती पहचान कभी।
नहीं गंवारों जैसी भाषा, बोलेगा विद्वान कभी ।
'आंधा' बाबा[1]' कहने वाला, जाति-हीन नर था गोला।
'सूरदास जी! राम-राम है, राजपूत ऐसे बोला ॥
होती क्यों बदनाम 'केकई', अगर बोलती प्यारे बोल।
मुंह भी खारा हो जाता है, जब भी बोलो खारे बोल ॥
रूप, राग, रुपया तीनों, जग में जादू कहलाते।
सोचो सुन्दर पहला जादू, कौन और कैसे पाते ॥
वाणी का उपयोग जिन्हों ने, किया नहीं होगा खोटा।
उन्हें सुरीले स्वर का 'चन्दन' भला रहेगा क्यों टोटा ॥

---

१ एक गोला और राजपूत जा रहे थे, रास्ते में सूरदास बाबा मिले। गोले ने कहा—आंधिआ बाबा! राम राम। तब सूरदास जी ने कहा—गोलणा भाई! राम राम। पीछे से राजपूत बोला...'सूरदास जी महाराज! राम-राम" सूरदास जी बोले—ठाकरां! राम-राम। ठाकरों ने पूछा—आप प्रज्ञाचक्षु हैं गोला और ठाकुर को कैसे जाना? सूरदास जी बोले—वाणी से।

कोई नहीं मांगता तुम से, दे दो हमें खज़ाना खोल ।
वचनों में दारिद्रय न रखिये, मीठे-मीठे बोलो बोल ॥
अपनी वाणी को सम्भालो, कर्म-बन्ध मत होने दो ।
तुम बोओ मत, कोई कांटे- बोए उसको बोने दो ॥

□ ऐसा हो तो ?

कोई मूढ़ अनाड़ी तुम से, कटु वाणी यदि बोले तो ।
छिपी तुम्हारी बातें सारी, सब के सम्मुख खोले तो ॥
सोने से तुलने वाले तुम, लोहे से यदि तोले तो ।
कितना धीरज रख सकते हो, बात यही टंटोले तो ॥
वही सामने पीछे होकर, ज़हर हलाहल घोले तो ।
एक-एक करके सब छिलके, अगर प्याज के छोले तो ॥
नहीं आपका दोष, आपके- सर पर लाकर ढोले तो ।
धोकर हाथ आपके पीछे- पीछे कोई डोले तो ॥
उन्हें पूछने पर बन जाएं, बालक जैसे भोले तो ।
जिस दिन सिर मुंडन हो उस दिन, पड़ जाएं यदि ओले तो॥
शक्ति आप में है क्या इतनी, सारी बातें सहने की ?
सहने की ही बात कठिन है, सरल बात है कहने की ॥
सहन-शक्ति के बिना बताओ, सही नहीं जाती चोटें ।
नहीं घुटावो हाथ पकड़ कर, तो बालक कैसे घोटें ॥

▭ अधीरता का परिणाम

तोप-तीर-तलवार-तमंचा, सहने वाले लाखों हैं।
सर्पों, सिंहों, रीछों में भी, रहने वाले लाखों हैं॥
मार वचन की लेकिन कोई, सह सकता है विरला वीर।
देखे सुने हज़ारों हमने, मरे वचन का खाकर तीर॥
कही किसी ने बात ज़रासी, विष की पुड़िया खा लेते।
कट जाते इंजन के नीचे, फांसी गले लगा लेते॥
तेल छिड़क लेते निज तन पर, माचिस तुरत दिखा लेते।
नहीं जानता हो जो मरना, मरना उसे सिखा देते॥
ऊपर से गिर कर मर जाते, कूएं में भी गिर जाते।
मृत से भी बढ़कर हो जाते, चिन्ताओं से घिर जाते॥
और नहीं तो घर से ही बस, भाग खड़े हो जाते हैं।
मिलें ठोकरें खाने को जब, शीश पकड़ पछताते हैं॥

○ सहनशील बनो

कुंभकार की चोटों द्वारा, मिट्टी से घट बन जाता।
भूषण बन जाते सोने के, सोना जब चोटें खाता॥
शिष्य सुगुरु की चोट सहन कर, बन जाता है विद्यावान।
सच्चा सहनशील सेवक ही, स्वामी से पाता सम्मान॥

सहनशील सत्पुत्रों को ही, पितृ-उपार्जित मिलता धन।
'चन्दन' चोटें सहने से ही, सोना बन जाता कुन्दन ॥

सहना सीखो रहना सीखो, कहना सीखो शान्ति-वचन।
भार वहन करना सीखो यदि, बनना चाहो पुरुष-रतन ॥
कटुक न बोलो पहली शिक्षा, कटुक वचन सुन सहन करो।
यही दूसरी शिक्षा सुन्दर, 'चन्दन' विषय न गहन करो ॥
दर्द भरी पर शिक्षा-दायक, कथा सुनाई जायेगी ।
बुरी आदतें कथा सुनाकर, क्यों न छुड़ाई जायेंगी ॥

▭ कहानी के नायक

एक नगर में एक सेठ था, भाग्यवान धनवान बड़ा।
बड़े-बड़े धनवान सेठ भी, देते थे सम्मान बड़ा ॥
स्थान बड़ा हो, मान बड़ा हो, दान बड़ा हो ज्ञान बड़ा।
बड़े-बड़े धनवानों से भी, होता है गुणवान बड़ा ॥
उसका था व्यापार बड़ा जो, बहुतों से भी प्यार बड़ा।
जितना उसको प्यार स्वयं से, औरोंसे भी प्यार बड़ा ॥
परदेशों में भी चलता था, कारोबार बड़ा भारी।
पूर्वोपार्जित पुण्य-क्रिया का, प्रतिफल रहता आभारी ॥

◻ घटना पर ध्यान

बैठा एक दिवस महलों में, गन्धी लेकर आया इत्र।
इत्र लगाने वाले करते, आस-पास का पवन पवित्र॥
सौ-सौ रुपये तोले वाली, भरी शीशियां थी सारी।
इन्हें लगाने से ही मानों, कट जाती है बीमारी॥
शीशी एक हाथ में लेकर, देख रहा है सेठ बड़ा।
इतने ही में हुआ अचानक, स्वयं झरोखे बीच खड़ा॥
शीशी गिरी सड़क पर जाकर, सेवक दौड़े लाने को।
सेवक उत्सुकता दिखलाते, सेवा मिले बजाने को॥
शीशी साबत ले आये वे, सारे बोले—बात बड़ी!
फूटी नहीं कांच की शीशी, ऊंचे से जो भूमि पड़ी!!
भाग्य सेठ का बहुत तेज़ है, होते सारे उत्तम काम।
काम श्रेष्ठ होने से लेते, केवल क़िस्मत का ही नाम॥

◻ अनुमान

सुन कर सेठ हो गया चिंतित, नहीं हर्ष का नाम निशान।
अपनो भावी का करता है, इस घटना द्वारा अनुमान॥
अगर फूट जाती यह शीशी, तो हो जाता उत्तम फल।
फल न भला निकलेगा इसका, आप सभी देखोगे कल॥

पुण्यों की भी हद होती है, आयेगा अब सुख का अन्त ।
चिन्ह शुभाशुभ पहले होते, ज्ञान सूक्ष्म होता अत्यन्त ।।

बोले सभी उपस्थित सज्जन, श्रेष्ठिन्! ऐसा मत बोलो ।
शीशी की घटना से अपना, भावी जीवन मत तोलो ।।
सब कुछ अच्छा होगा, जैसा- आज सभी कुछ अच्छा है ।
बुरा नहीं है शकुन ज़रा भी, मानो कहना सच्चा है ।।

बोला सेठ—'नहीं है चिंता, होगा जो होने वाला ।
सुख में फूला अगर नहीं मन, दुख में क्यों रोने वाला ।।
अनुमानों पर आधारित है, एतद्विषयक मेरा ज्ञान ।
नहीं मानता मैं अपने को, कोई एक बड़ा विद्वान ।।
चला गया गन्धी ले पैसे, चले गए हैं सेवक जन ।
किन्तु सेठ का आज होगया, इस घटना से चिन्तित मन ।।
कभी-कभी अनुमान ज्ञान भी, फल दिखला देता प्रत्यक्ष ।
सूर्योदय होते ही ऐसे, पत्र आ रहे सेठ समक्ष ।।

□ पहला पत्र

लिखा पत्र में—'डूब गया है, भरा माल से बड़ा जहाज़ ।
एक लाख की हानि होगई, ऐसा किया अभी अन्दाज़ ।।

कोई पता नहीं मिलता है, बचे नहीं अवशेष कहीं !
बुरा बहुत हो जाए जो हम, दें सच्चा सन्देश नहीं ॥
लाभ-हानि का विवरण देना, काम हमारा माना है।
आप सेठ, हम सेवक, हमको- दाना-पानी खाना है ॥

☐ दूसरा पत्र

पत्र दूसरा मिला शाम को, भाग गया है बड़ा मुनीम।
पहले ही था कटु करेला, और चढ़ गया फिर वह नीम ॥
गया रुपये लाख चुराकर, कहां गया कुछ पता नहीं।
जिसे बताया नहीं गया हो, सकता है वह बता नहीं ॥
था विश्वासी बहुत पुराना, उस पर जिम्मेवारी थी।
नहीं समझ में आता उसने, क्यों ऐसी मक्कारी की ?
वेतन पूरा, भागीदारी, था सेठों जैसा सम्मान।
क्यों ऐसा कर डाला उसने, लगा नहीं सकते अनुमान ॥

सूचित कर देने का हमने, पूर्ण किया है अपना फ़र्ज़।
काम चलाने को पेढी का, लेना पड़ जाएगा क़र्ज़ ॥
भेजो रक़म देश से अथवा, पेढ़ी करदी जाए बन्द ?
जैसी आज्ञा होगी वैसा, हो जाएगा शीघ्र प्रबन्ध ॥

□ तीसरा पत्र

पत्र तीसरा आया जिस में, लिखा-'लगी है भारी आग।
गोदामों में बचा नहीं कुछ, हम भी निकले ज्यों-त्यों भाग॥
बहुत प्रयत्न किया सब ने पर, शान्त नहीं हो पाई आग।
हानि होगई है लाखों की, कहता यों राष्ट्रीय विभाग॥
हम सब आ जायें या ठहरें ? देना शीघ्र हमें आदेश।
क्योंकि यहां पर बचे नहीं हैं, भवन हाट के कुछ अवशेष॥
लेना भी डूबेगा सारा, कागजात जब जले सभी।
देना तो देना ही होगा, पाप पुराना फले जभी॥
दर्द-दुःख का अन्त नहीं है, लिखने में भी आती लाज।
आकस्मिक दुर्घटना का क्या, हो सकता है कहीं इलाज ?

□ चौथा पत्र

चौथा पत्र मिला है जिस में, लिखा आगई मन्दी जी !
क्योंकि राष्ट्र ने कर डाली है, यहां पूर्ण हदबंदी जी !
माल नहीं बाहर जा सकता, इसीलिये ये भाव गिरे।
भाव गिरे क्या व्यापारी सब, बुरी तरह से आज घिरे॥

आज रुपय्या बना चवन्नी, समाचार ताज़ा डाला।
शीघ्र रुपय्ये भेजो वरना, यहां लगा देंगे ताला ॥

□ एक और आतफ़

सेठ पत्र पढ़ता है सारे, लगा खोदने गड़े निधान।
गाड़े जहां निधान हाथ से, मानो बदल गया वह स्थान॥
आज सोनैयों के बदले में, मिले कोयले-पत्थर अब।
सेठ सोचता—'मर जाऊं क्या, आज इन्हीं के नीचे दब ॥
क्या भेजूं परदेश रक़म मैं, नक़द यहां कुछ पास नहीं।
नहीं उधारा लिया कभी भी, मिलने का विश्वास नहीं ॥
नहीं मांगने से धन मिलता, मिलता अपना ही धन, सांस।
नहीं रक्त की बूंद निकलती, अगर कहीं से काटो मांस ॥
किस से कहूं कौन सुनता है, सुख के साथी होते सब।
कोई नहीं किसी को रोता, स्वार्थों को ही रोते सब ॥

पैसे बिना दिशावर का यों, बन्द होगया सारा काम।
काम-धाम चलता हो जब तक, तब तक चलता रहता नाम ॥

□ देना दिया

फैली हवा नगर में सारे, लेने वाले आए लोग।
किया नाक में दम सबने मिल, बुरे ग्रहों का प्रकटा योग ॥

सेठ! रुपय्ये सब लौटा दो, व्याज सहित जितने होते।
आज समय पर जान गए हैं, शीश पकड़ कर फिर रोते॥
देना देने के खातिर अब, बेचे गहने और मकान।
धन का स्थान नहीं होता है, होता है इज्जत का स्थान॥
बरतन बेचे कपड़े बेचे, बेचा सब भारी सामान।
पाई-पाई चुकती करदी, बचा लिया अपना सम्मान॥

□ लेना नहीं आया

जिससे लेना था वे कहते, दे देंगे धन होने पर।
रुपय्ये मिला नहीं करते हैं, रुपय्या रुपय्या रोनेपर॥
अगर खटाव नहीं था तो क्यों, दिये उधारे लोगों को।
हम न समझते नहीं जानते, आकस्मिक संयोगों को॥
लेना है, लेकिन लेना क्या, सरल बात होती बोलो ?
लेने जाने वालों की क्या, नहीं घात होती बोलो॥
अभी नहीं कल आना, आना- परसों तरसों अगले वर्ष।
चला नहीं यह वर्ष आपको, देंगे व्याज समेत सहर्ष॥
व्याज नहीं है मूल-मूल है, आधा है, चौथाई है।
ले जावो यदि लेना है तो, लिख जावो भरपाई है॥
हालत नाजुक वर्तमान की, 'चन्दन' ने कड़ियां बोलीं।
सुनो अगर सुन सकते हो तो, टनटन कर घड़ियां बोलीं॥

८ सेठ की दशा

गई हवेली हाट बगीचे, ठाठ रईसी चले गए।
नहीं किसी से छले गए थे, किस्मत द्वारा छले गए॥
गए नगर से बाहर तृणमय, एक झोंपड़ी बांधी है।
इसमें ही रहते हैं चाहे, गरमी वर्षा आंधी है॥
खाने को रूखी-सूखी है, वह भी दोनों वक्त नहीं।
समय बुरा आ जाने पर नर, हो सकता है मुक्त नहीं॥
धरती सोना नहीं बिछौना, नहीं खाट है नहीं पलंग।
नहीं राग है नहीं रंग है, लेकिन हिम्मत अभी अभग॥
हिम्मत हारी नहीं सेठ ने, सेठानी ने साथ दिया।
मानो गिरते समय किसी ने, थाम धैर्य से हाथ लिया॥
खोना और कमाना धन का, खोना क्यों मन का विश्वास।
उन्मन होना नहीं ज़रा भी, घटे न मन का वीर्योल्लास॥
देशों में परदेशों में था, जिसका इतना कारोबार।
आज उधार नहीं देता है, उसी सेठ को यह बाज़ार॥
कल सेवक सेवा में रहते, सेवा मिलती आज नहीं।
आंख चुरा लेते हैं सज्जन, आती उनको लाज नहीं॥
कल धन था इतना जिसको तो, गिनना भी होता भारी।
आज अनाज तभी मिलता है, लाए लकड़ी की भारी॥

धन का क्या अभिमान बतावो, छाया है यह बादल की।
कल की चिन्ता रखने वाले, ख़बर नहीं पाते कल की॥
बड़ों-बड़ों को हो जाती है, इससे भी अति बुरी दशा।
बुरी दशा के बिना उतरता, नहीं किसी का यहां नशा॥
बनते और बिगड़ते देखो, नये-नये रोज़ाना खेल।
खेलों से से भी इस जीवन का, क्यों न बिठाया जाए मेल॥
बनते नये. पुराने गिरते, रहते यहा मकान सदा।
छोटो-छोटी बातों पर भी, देते रहना घ्यान सदा॥
कितने गाव उजड़ जाने पर, नगर एक होता आबाद।
बड़ा एक बनता है जब लघु- जन अनेक होते बरबाद॥
बनने और बिगड़ने का क्रम, सदा-काल से चलता है।
कितनी कोशिश की जाए पर, नियम न टाला टलता है॥
आरी बिना काष्ट कब कटता, बिना बात कब कटता काल।
कष्ट काटने का साधन है, धर्म धैर्य प्रभु दीनदयाल॥
कर्म बांधते समय बांधते, हंस-हंस करके लोग अजान।
रो-रो करके करना पड़ता, उनको कर्मों का भुगतान॥
रोओ मत, खोओ मत धीरज, होओ निष्ठावान विशेष।
सोओ मत, जागो अय चेतन! सुनते हो, उपदेश हमेश॥

कष्ट-काल में हो जाते हैं, बुद्धि-विवेक-ज्ञान-बल लुप्त।
खोल-खोल समझाई जाये, जो हो ऐसी बातें गुप्त ॥
अनुभव-गम्य ज्ञान जीवन का, रखो विवेक सहित संभाल।
याद भूत को करने से ही, उठती बड़ी दुःख की ज्वाल॥
गए काल को भूलो, आशा- करो न कल के जीवन की।
वर्तमान पर ध्यान दीजिये, शांति चाहिये जो मन की ॥
ऐसा था, ऐसा था कल तो, आज नहीं है कुछ भी पास।
ऐसे चिन्तन से ही होता, सच्ची शान्ति कान्ति का ह्रास ॥
ऐसा होगा, ऐसा होगा, चाहे आज नहीं है पास।
केवल भावी अभिलाषा से, जीवन का कब सधा विकास॥
जो कुछ है उस में से ही अब, सुख पाने का करो प्रयत्न।
इससे बढ़ कर क्या हो सकता, 'चन्दन' नूतन चिन्तन रत्न ॥

१२ सेठ की भावना

नाम जिनेश्वर का जपता है, रखता है समभाव सभी।
ज्यादा जल्दी करने से है, भर जाता क्या घाव कभी॥
हिम्मत बंधवाती सेठानी, धीरज रखने को कहती।
कष्ट समय में महिलाओं की, हिम्मत बहुधा कम रहती॥
नहीं एक-सी सभी नारियां, सिंहनियां रहती वन में।
पुरुषों को क्या वे बल देंगी, ग्रन्थिल नहीं जिन के मन में॥

तन अशक्त हो जाने पर भी, मन अशान्त मत होने दो।
रोने लगता हो जो कोई, 'चन्दन' उसे न रोने दो ॥

□ हिम्मत का अन्त

समय आगया ऐसा, हिम्मत- टूट गई सेठानी की ।
रखो आग पर फिर शीतलता, रह पाती क्या पानी की ?
बोली—हे पतिदेव! कष्ट का, कहीं नहीं दिखता है अन्त।
कष्ट दूर करने का मुझ को, सूझ गया है सुन्दर पन्थ ॥
आप चलो सुसराल आपको, वहां न होगा कोई कष्ट।
कष्ट-नष्ट होने का सुन्दर, मैंने बतलाया पथ स्पष्ट ॥
यहां नहीं है कोई अपना, मिलता पैसा नहीं उधार।
पैसे बिना दुखी जीवन से, कैसे हो सकता उद्धार ॥
काम अनेक आपको आवे, पैसे बिना न होता काम।
काम बिना पैसा कब आता, पैसे बिना नहीं आराम ॥
वहां काम करने को पैसा, मेरे मात-पिता देंगे।
दे सहायता मेरे भाई, दुख सारे ही हर लेंगे ॥

□ सेठ का संयश

पति बोला—'इस कष्ट-काल में, जाया जाए क्या सुसराल ?
"सुख में ही सुसराल जाइये," नीति-ज्ञान है यही विशाल ॥

ऐसे कोई धन देता तो, होते ही क्यों हम निर्धन ।
नहीं किसी को मिलता है धन, धन को ही मिलता है धन ॥
नहीं मांगना उचित किसी से, ऋण लेना भी ठीक नहीं ।
मर जाएंगे चाहे भूखे, उचित कभी भी भीख नहीं ॥

□ स्त्री का विश्वास

बोली—'पिता और भ्राता का, माता का है मुझ पर स्नेह ।
वे सहयोग अवश्य करेंगे, इसमें नहीं कहीं सन्देह ॥
हम न मांगने जाते हैं, हम- लेंगे उनसे कुछ पैसा ।
बुरा नहीं माना जा सकता, अगर करे कोई ऐसा ॥
मानों अगर नहीं भी देंगे, परख लिया जाएगा प्यार ।
और दूर भी हो जाएगा, मेरे मन का भ्रम-संसार ॥
हठ मत तानो कहना मानो, चले-चलो सुसराल अभी ।
एक समान नहीं रहता है, हाल और दुष्काल कभी ॥

□ हठ का स्थान

पति है ना में, पत्नी हां में, प्रतिदिन होता वाद-विवाद ।
वाद-विवाद घटा देता है, अच्छे भोजन का भी स्वाद ॥

नारी शिशु नृप योगी का हठ, नहीं कभी भी हटता है।
कोशिश करो हटाने को तो, सदा और भी बढ़ता है॥
भला-बुरा चाहे सो हो फिर, इसका ज्ञान नहीं होता।
काम नहीं होता है जब तक, तब तक मन रहता रोता॥

▫ कौन छोड़े

अड़े हुए हों दोनों ही जब, झुक जाया करता है एक।
अगर एक भी नहीं झुके तो, हो जाता है यह अविवेक॥
ज्यादा खींच-तान से देखो, रस्सी भी जाती है टूट।
कहीं खेंचने वालों का भी, गिरने से सर जाता फूट॥
अगर छोड़ने वाला छोटा- होता है तो होने दो।
सरल नहीं होता समझौता, भार एक को ढोने दो॥
मैं क्यों छोड़ूं यही भावना, मूल कलह का माना है।
पछताना हो नहीं बाद में, इसीलिये समझाना है॥

▫ सेठ माना

आखिर कहा सेठ ने—'तेरी, इच्छा है तो चलो चलें।
दोनों यही चाहते हैं हम, आए दुर्दिन शीघ्र टलें॥

भला नहीं होगा तो होगा, इस से फिर क्या अधिक बुरा।
कर्म बैठने कब देते हैं, देते मन को घुमा-फिरा॥
क्या लादें, क्या बांधें बोलो, है भी कुछ सामान नहीं।
ताला मारें, संभला जाएं, ऐसा निजी मकान नहीं।
चोरी का डर हो जाता है, जर-जेवर यदि जाएं छोड़।
छोड़ गए जर-जेवर हमको, स्नेह पुराना सारा तोड़॥
आएं कभी नहीं भी आयें, हानि-लाभ क्या होना है।
जहां मिलेगी रोटी खाकर, वहीं शान्ति से सोना है॥
अचल सम्पदा होवे जिसकी, आना पड़ता वापिस घर।
अपना कुछ भी नहीं यहां पर, इसीलिये है नहीं फिकर॥

छोटी-सी गठड़ी में सारा, बांध लिया अपना सामान।
बिना महूर्त्त दिखाए ही अब, 'चन्दन' किया गया प्रस्थान॥

▭ पैदल यात्रा

गाड़ी नहीं, नहीं है बग्घी, कोई नहीं सवारी है।
पैदल चलने की ही करते, हिम्मत से तैयारी है॥
नहीं आज तक कभी चले थे, ये दोनों प्राणी पैदल।
पैदल चलने वालों में तो, 'चन्दन' पूर्ण चाहिये बल॥

ज्ञान दिशा का होने पर ही, राही सकता भटक नहीं।
ज्ञान राह का होने पर ही, राही सकता अटक नहीं॥
अनजाने राही को राही, दिखा दिया करते हैं राह।
कभी नहीं हो सकता राही, राही के प्रति बे-परवाह॥
राही-राही होते भाई, मिल कर काटा करते राह।
इसीलिये क्यों होगा राही, राही के प्रति बे-परवाह॥
सुख-दुख की बातें भी करते, करते छाया में विश्राम।
और पूछ लेते आपस में, स्नेह-सहित जाति कुल नाम॥

अपरिचितों के साथ न खाना, जाना नहीं कहीं परदेश।
कभी-कभी धोखा होने का, 'चन्दन' रहता है अन्देश॥

▭ मानसिक दौर्बल्य

दो ही कोस चले थे दोनों, आया निर्जन वन भारी।
चलते-चलते सेठानी को, लगी पाप की बीमारी॥
मन कहता है ऐसे पीहर, जाने से आयेगी लाज।
सहेलियां बोलेंगी सारी, ऐसे क्यों आई तू आज?
निर्धन पति अपनी नारी को, ऐसे नहीं कर सकता है।
सुख तो रहा किनारे, पूरा- पेट नहीं भर सकता है॥

अपना भाग्य बांध कर नर से, नारी ने क्या भला किया।
मूर्ख मनुष्यों ने ही ऐसा, नियम आज तक चला दिया॥
छुटकारा जो पति से पाऊं, जीऊं होकर पूर्ण स्वतन्त्र।
ऐसा ही अब करना होगा, मन्त्र यन्त्र या कोई तन्त्र॥

कूंआ एक सामने आया, सेठानी को सूझा पाप।
पापोदय होने पर कोई, नहीं किसी को करता माफ़॥

□ पानी की मांग

ऐसा[1] सोच कपट की वानी, बोली है सेठानी।
सूखी जाती जीभ प्यास से, ज़रा पिलाओ पानी॥
'चन्दन' चला नहीं अब जाता, प्यास बनी है वैरिन।
कमल फूल सम ओष्ठ गुलाबी, सूख रहे हैं जल बिन॥
देखो तो पड़ रही किस तरह, कोमल काया काली।
हवा होगई गोरे तन की, मन मोहक वह लाली॥
नहीं निकाले से भी मुख से, निकल रही है वाणी।
नहीं चाहिये और मुझे कुछ, मात्र चाहिये पानी॥
चातक नहीं चाहता होगा, स्वाती जल को इतना।
मांग रहा है मेरा मनुवा, तृषा-विकल जल जितना॥

---

१ इसे "सार छन्द" की ध्वनि में पढ़िये

देख सामने आया कूंआ, प्यास और भी फड़की।
मानो भोजन देख सामनें, भूख और भी भड़की ॥
एक पांव भी आगे चलना, मुझे हो गया भारी।
मुझे फ़िक्र है मर जाऊंगी, यहीं प्यास की मारी ॥
तीय-तृषा पर तरस करो तुम, नहीं अधिक तड़पाओ।
इस कूएं का शीतल पानी, प्यारे! अभी पिलाओ ॥

□ पानी-सो वाणी

सुनी सेठ ने सेठानी की, सारी प्यास-कहानी।
कहा—कूप पर चलो प्रिये! मैं- अभी पिलाऊं पानी ॥
पहले मुझको अगर बताती, इतना क्यों अकुलाती।
लाता दौड़ कहीं से पानी, पीकर प्यास बुझाती ॥
फिर भी अच्छा बहुत हुआ जो, कूप मिला इस वन में।
वरना हम पछताते प्यासे, दोनो मन ही मन में ॥
जलो कूप का पानी पीकर, पहले प्यास बुझायें।
और ज़रा-सा बैठ वहीं पर, छाया में सुस्ताएं ॥
कूप-किनारे कितना सुन्दर, वृक्ष खड़ा लहराता।
झूम-झूम शाखा के द्वारा, मानो हमें बुलाता ॥
इसके नीचे सुखद दुपहरी, बोलो क्यों न बिताएं।
दिन ढलते ही 'चन्दन' आगे, अपने कदम बढाएं ॥

अधिक दूर अब नहीं यहां से, पीहर रहा तुम्हारा ।
चार घड़ी में कठिन नहीं कुछ, जाना पहुंच हमारा ॥

८. कुंआ या मौत

ऐसा कह कर सेठ कूप पर, होकर हर्षित आया ।
कंधे से ले डोरी लोटा, कूएं में लटकाया ॥
विकट बनाए रूप खड़ी थी, निकट वहीं सेठानी ।
मांग रही थी प्यारे पति से, पुन-पुनः जो पानी ॥
अवसर देख एक ही उसने, धक्का बड़ा लगाया ।
अपने पति को निज हाथों से, कूएं बीच गिराया ॥

९ क्या नहीं होता ?

कोमल[1] हृदया नारी से क्या, होते पाप कठोर नहीं ?
पुरुष चोर होते हैं तो क्या, नारी होती चोर नहीं ?
करता पुरुष नहीं करती नारी, पाप कौनसा है ऐसा ?
कार्य सभी ही करते आये, भला-बुरा चाहे जैसा ॥
घृणा पाप करवाया करती, प्रेम रोकता पापों से ।
सिद्ध यही होता है 'चन्दन,' दैनिक क्रिया-कलापों से ॥

---

१ लावनी तथा ताटंकछन्द

लौंगिक रचना द्वारा होता, केवल नर-नारी का भेद।
जाति देखने से दोनों में, स्थापित होगा पूर्ण अभेद ॥
करते समय नहीं होता है, होता पीछे पश्चाताप।
यह क्या किया! नहीं करने का, काम कर दिया है चुपचाप ॥
क्रोध विवेक साथ कब रहते, क्रमशः जाते आते हैं।
सन्ध्या के आने पर सहसा, सूर्य स्वयं छिप जाते हैं ॥

किया हुआ दुष्कृत्य स्वयं का, देख नहीं सकता नर आप।
ढकने की चेष्टाएं करता, लगा सत्य की सुन्दर छाप ॥
ऐसा क्या हो सकता है यों, नहीं सोचना भी उत्तम।
पापी के हाथों से जितना, हो जाए उतना है कम ॥

◻ सेठानी भगी

रख[1] कर सिर पर पांव वहां से, सेठानी फिर भागी।
पत्थर से भी सख्त हृदय में, भय की ज्वाला जागी ॥
गया न देखा एक बार भी, उस से पीछे फिर कर।
अगर दौड़ती गिरी कहीं तो, उठी तभी वह गिर कर ॥
कोई देख नहीं ले मुझको, होकर शंकित ऐसी।
चारों ओर देखती जाती, हिरन चोकड़ी जैसी ॥

---
१ सार छन्द

□ क्या दोष था ?

भाग रही थी यही सोचती, मैंने क्या कर डाला ।
धक्का दे डाला कूएं में, क्या देखा क्या भाला ॥
दोष भला क्या इस में उनका, अगर आगई तंगी ।
बात कभी भी लेकिन मुझ को, कही न मन्दी-चंगी ॥
कभी सोचती—'चलो होगया, जो भी था कुछ होना ।
व्यर्थ दुखाना दिल को अब क्यों मन ही मन क्यों रोना ॥
उस दुविध से नहीं रही थी, मुझको सुख की आशा ।
ठीक हुआ जो खत्म होगया, सारा आज तमाशा ॥
जीवन भर दुख पाने से तो, अच्छा यह दुख पाना ।
नहीं किसी का लेना-देना, सुख से पीना-खाना ॥

□ क्या कहूंगी

चलते-चलते इतने ही में, पीहर दिया दिखाई ।
वहां कहूंगी क्या मैं जाकर, मन में चिन्ता छाई ॥
पीहर वाले भोले भाले, पूछेंगे ही सारे ।
आये साथ नहीं क्यों बोलो, जामाता जी प्यारे ?
भाई-बहन सभी पूछेंगे, कहां गए हैं जीजा ?
क्या उत्तर दे पाएगा मन, जो पापों से भीजा ॥

कह दूंगी वे कूंए में से, खींच रहे थे पानी।
फिसला पांव कूप में गिर कर, खतम हुई जिन्दगानी॥
कर लेंगे विश्वास एकदम, मेरे पीहर वाले।
छल-बल का क्या काम सभी हैं, सीधे भोले-भाले॥

कहा चित्त ने यह उत्तर तो, कभी न ठीक रहेगा।
कूएं से शव लाने को ही, जन-जन बात कहेगा॥
हो सकता है किसी तरह से, बैठे हों वे जिन्दा।
आकर कथा सुनादें सारी, भारी होगी निन्दा।
वैसे जीवित रहने का तो, कारण खास नहीं है।
क्योंकि सुरक्षा करने वाला, कोई पास नहीं है॥
शव लाने को दौडेंगे ही, जन मेरे पीहर के।
देंगे तरह-तरह के ताने, सारे लोग नगर के॥
पाकर पता पुलिस आकरके, कितना तंग करेगी।
झूठे-सच्चे दोष लगा कर, सुख में भंग करेगी॥
इसीलिये परदेश गमन की, गढलूं नई कहानी।
कपट कमाती जाती है यों, कुटिल बुद्धि सेठानी॥
नहीं शान्ति है झूठे मन में, मन ही मन पछताती।
पहुची आखिर अपने पीहर, कठिन बनाकर छाती॥

▭ पीहर का मन

आई देख अकेली उसको, दंग सभी घर वाले।
विस्मित होकर लगे सोचने, दिल के भोले-भाले ॥
चित्त-वृत्तियां उसमें तो हैं, क्रोध भरी ही पाई।
आई होगी साथ उन्हीं के, करके अतः लड़ाई ॥
गलती की जो हमने इसको, वहुत निकट परणाया।
झगड़ी-लड़ी ज़रासी फ़ौरन, पीहर क़दम बढ़ाया ॥

पूछा पीहर वालों ने तव, बोली वह छल-बल से।
मुझे छोड़ कर सेठ कमाने, गए हुए हैं कल से ॥
जाते-जाते बोल गए थे, मन में मत घबराना।
पैसे चार कमाकर जल्दी, वापिस मुझको आना ॥
घर पर दिल न लगे तेरा तो, जाना अपने पीहर।
ले आऊंगा आते ही मैं, फ़िक्र न करना तिल भर ॥
ऊब अतः एकाकी-पन से, राह इधर की ले ली।
निकट नगर की आई प्यारी, मेरे साथ सहेली ॥
उसको अपने प्यारे पीहर, मिलने को था आना।
अपने लिये पिता जो ! मैंने, अवसर सुन्दर माना ॥
उतर गई यों गले सभी के, उसकी कपट-कहानी।
लगी विताने सुख में दुख में, समय वहां सेठानी ॥

अच्छा पीती–अच्छा खाती, अच्छा सुनती कहती।
फिर भी पति की हत्या उसके, दिल में चुभती रहती॥

□ मन की वेदना

उसके दिल से बेचैनी अब, नहीं किनारा करती।
सोते-जगते चलते-फिरते, यही विचारा करती॥
किया अनर्थ व्यर्थ ही मैंने, क्या सोचा क्या भाला?
भोले-भाले अपने पति को, क्यों कूएं में डाला?
एक दिवस पर पाप भयानक, भरना होगा मुझको।
पता नहीं फिर बुरी मौत से, मरना होगा मुझको॥
सरल मार देना औरों को, मरना सरल नहीं है।
हाथ-कमाए कर्मों का फल, भरना सरल नहीं है॥
पाप छिपा लेने से देखो, बनता नहीं बिगड़ता।
पाप भोगते समय हज़ारों-, गुना भोगना पड़ता॥
होकर तब तो इकदम अन्धी, सोचा नहीं विचारा।
कांप रहा है लेकिन मेरा, अब तो अन्तर सारा॥

सोती हूँ पर नींद पास में, आती है कब मेरे?
चिन्ता निशि में, चिन्ता दिन में, चिन्ता सांझ–सवेरे॥

लगता है चिन्ता से पीछा, छूटेगा अब मर कर।
चिन्ता में ही डूबी रहती, सेठानी यह दिन भर॥
अब रोने से गया हुआ क्या, समय हाथ आ सकता।
पहले मनो नियन्त्रण करती, क्यों मन ऐसा करता॥
किसी जीव का चित्त दुखाना, पाप शास्त्र ने माना।
मार गिराना अपने पति को, अघ का कहां ठिकाना॥
आज नहीं तो कल को होगा, मुझे बहुत पछताना।
कहीं चले जाओ पर होगा, कर्मों का फल पाना॥
अगर कमाए कर्म जीव को, फल न यहां दिखलायें।
फिर इस जग की [illegible] गति-विधियां, और–और बन जायें॥

□ सेठ वच [illegible]

ज्यों ही [illegible] सेठ कूएं में, प्रभु का स्मरण किया है।
सेठानी [illegible]ने धक्का मारा, अवगुन नहीं लिया है॥
थोड़ा पानी [illegible] कूएं में, बिल्कुल चोट न आई।
आयु बड़ी [illegible] अतः यह घटना, मृत्यु न बनने पाई॥
मेरी किस्मत ने ही समझो, कूएं बीच गिराया।
लगता है [illegible] तो ऐसा, अन्त दुःख का आया॥
दुःख में दुःख [illegible] में सुख आता, बात कही है सच्ची।
गिर कर [illegible] बचा हुआ मैं, मेरी किस्मत अच्छी॥

अब समाप्त है दुख की सीमा, अब सुख का क्रम आया।
कल से दिन बदलेंगे मेरे, मन में निश्चय पाया॥

जो कुछ हुआ हुआ सब अच्छा, बुरा नहीं मैं मानूं।
सेठानी ने मुझे गिराया, मैं क्यों ऐसा जानूं॥
मेरी किस्मत अच्छी होती, तो वह सेवा करती।
ऐसा निंद्य काम करने से, पहले ही वह डरती॥
मैंने सोचा प्यासी होगी, मांग रही है पानी।
मेरी किस्मत बदली तब ही, बदली वह सेठानी॥
मेरा ही बस भाग्य बुरा है, बुरी नहीं सेठानी।
सेठानी ने धक्का मारा, मानेगा अज्ञानी॥
अगर मारती सेठानी तो, गला घोंट भी देती।
देती ज़हर मिला खाने में, प्राण पलक में लेती॥
वह तो एक निमित्त मात्र है, पापोदय था मेरा।
भाग्योदय के साथ शीघ्र ही, होगा नया सवेरा॥

बैठा-बैठा कूएं में भी, ध्यान धर्म का धरता।
स्मरता है 'नवकार मन्त्र' भी, नहीं मृत्यु से डरता॥
भले दुःख हो नहीं दुःख में, धर्म-ध्यान को छोड़ें।
याद धर्म को रखने वाले, 'चन्दन' जन हैं थोड़े॥

कुछ ही क्षण बीते इतने में, एक सौदागर आया।
करने को विश्राम काफला, कूप-निकट ठहराया॥
डाला डोल कूप में उसने, पीने को जब पानी।
'मुझे बचाओ' दर्द भरी यों, कहीं सेठ ने वानी॥
भूलूंगा उपकार कभी क्यों, मुझे बचाने वालो!
मानव मानव का रक्षक है, बाहर मुझे निकालो॥

दर्दी दुखिया के थे सारे, देर भला क्यों करते।
संभल-संभल कर उसे निकाला, सबने डरते - डरते॥
मत छूटे मत टूटे डोरी, यही भावना मन में।
कार्य सिद्ध होने से फूले, नहीं समाए तन में॥
व्यापारी ने पूछा—बोले, आप यहां पर कैसे?
कैसे गिरे? बचे फिर कैसे? पूछ रहे हम ऐसे॥

☐ बात पर पर्दा

नहीं सुनाई गई सेठ से, अपनी असल कहानी।
बोला—कूएं पर आया था, मैं लेने को पानी॥

जाता था परदेश कहीं पर, पैसे चार कमाने।
फिसला पांव गिरा कूएं में, आये आप बचाने॥
जीवित बच करके भी मेरा, अन्त यहीं पर होता।
आश्रय हीन इसी कूएं में, मृत्यु-सेज पर सोता॥
दया आप लोगों के मन में, बसी हुई है भारी।
बना रहूँगा इसीलिये मैं, जीवन भर आभारी॥

सारी बातें सुनी सेठ से, व्यापारी हरषाये।
लेकर अपने साथ सेठ को, आगे चरण बढ़ाये॥

सौदागर को आवश्यकता थी, कुशल गणक[1] मिल जाए।
सेठ कार्य चाहे था ऐसा, जिससे भोजन पाये॥
आवश्यकता दोनों की हीं, पूर्त्ति हो गई इससे।
इससे बढ़कर काम दूसरा, क्यों पूछें फिर किससे॥
खाना-पीना आज्ञा-पालन, रहना हिल मिल करके।
दिल से काम किया जाता जब, दिल रहता खिल करके॥
घुल-मिल गया सभी लोगों में, सेठ स्वयं कुछ ऐसा।
स्नेहसना हरएक उसे था, लगता अपने जैसा॥

---

(१) मुनीम।

भूल गया बेगानापन वह, होता है क्या कैसा।
जोड़ लिया कुछ ही वर्षों में, उसने काफ़ी पैसा॥

जिसने अपनी सेठानी के, साथ सदा दुःख पाया।
सौदागर–दल संग वही अब, फूला नहीं समाया॥

कहते हैं सब सज्जन--'जो भी, संग बुरों का पाते।
अच्छे-अच्छे उनके दिन भी, बहुत बुरे बन जाते॥

और अगर दुर्जन भी कोई, संग भलों का पाता।
बुरा समय उसका भी जल्दी, बहुत भला बन जाता॥

द्रुत गति से जीवन की सरिता, उसकी बढ़ती जाती।
किसी तरह की चिन्ता अब तो, उसको नहीं सताती॥

सभी समझते उसको अपना, और सभी को वह भी।
सब से करता स्नेह सदा वह, सेठ सभी कुछ सह भी॥

सदाचार प्रामाणिकता का, वह था बड़ा पुजारी।
इसीलिये सारे सौदागर, आदर देते भारी॥

□ बराबर हिस्सा

सौदागर ने निपुण सेठ को, भागीदार बनाया।
बोला—'धन बढ़ता है मेरा, है जब से तू आया॥

बड़े भाग्यशाली हो लाला ! आधा हिस्सा तेरा।
जितना लाभ वणज में होगा, आधा हिस्सा मेरा ॥
मेरे-तेरे में कोई भी फर्क नहीं है राई।
मानो मुझे बड़ा लघु चाहे, मैं हूं तेरा भाई ॥
तेरे आने से ही मेरा, यहां इज्जती पाई।
बहियां उलझी हुई पड़ी थीं, तूने सब सुलझाईं ॥
लेना-देना साफ़-साफ़ सब, नजर आ रहा भाई।
आज धन्य हूं पाकर तुझ-सा, मानव उत्तरदायी ॥

□ सेठ का दिल

बोला सेठ—'आपकी इच्छा, आप बड़े मैं छोटा।
बिना आपके पड़ा मैं रहता, ज्यों कूएं में लोटा ॥
स्थान दिया सम्मान दिया है, धन भी बहुत दिया है।
जीवनदान दिया बतलावो—, क्या कुछ नहीं किया है ?
आप सरीखे उत्तम सज्जन, होंगे जग में थोड़े।
जिसने मेरी विपदाओं के, सारे बन्धन तोड़े ॥
दोनों ऐसे प्रेम दिखाते, रहते खुश-खुश मन में।
'चन्दन' रखा प्रेम में सब कुछ, रखा नहीं कुछ धन में ॥

□ घर को याद

बहुत दिनों के बाद सेठ को, याद आगई घर की।
घर की याद नहीं क्यों आये, स्वाभाविक जो नर की ॥
घर है कहां कहां घरवाली, कहां रहा घर वाला।
जन्म भूमि भी रही कहां पर, जिसने जनमा पाला ॥
सुख से दुख, दुख से सुख पाया, कर्मों की यह-माया।
इसीलिये कहते हैं ज्ञानी, माया बादल-छाया ॥
जांऊं लाऊं घरवाली को, जिससे की थी शादी।
घरवाली के बिना घरों की, हो जाती बरबादी ॥

□ सौदार के सन्मुख

ऐसे सोच-समझ कर मन में, सौदागर से बोला।
नहीं आजतक खोला लेकिन, आज हृदय है खोला ॥
आज्ञा दो, घर जाऊंगा अब, बात बनी है ऐसी।
सौदागर बोला—ओ भाई! बात सुनाते कैसी ?
आधा नहीं पौण लो हिस्सा, पड़ें न फिर पछताना।
लेकिन मेरा साथ छोड़ कर, नहीं कहीं भी जाना ॥
तुम मालिक मैं सेवक होकर, आज्ञाएं मानूं सारी।
लेकिन तेरे जाने पर तो, होगा दुख अति भारी ॥

आंखों में आया है पानी, नहीं निकलती वाणी।
बोला-सेठ कभी था मैं भी, मेरी थी सेठानी॥
बाट देखती होगी वह भी, मेरा मन भी डोला।
धन तो आता-जाता रहता, सत्य तथ्य सब खोला॥

"सौदागर ने कहा प्रेम से, जावो अपने घर पर।
करो हिसाब शुरू से लेकर, जावो लखपति बनकर॥
हिस्सा कर सौदागर बोला, हिस्सा यह स्वीकारो।
इतना तो लेना ही होगा, यह निश्चय मन धारो॥
जब हिस्सा होता तब लड़ते, देखो दुनिया वाले।
सौदागर ने सौनैयों के, मुट्ठे भर-भर डाले॥
हुई विदा की वेला जिस दम, आंखें भर-भर रोए।
दोनों थे अति खिन्न हो रहे, दोनों खोए-खोए॥
प्रेम इसे ही कहते हैं हम, याद रहे दोनों को।
साथ-साथ रहने-करने का, स्वाद रहे दोनों को॥

इधर या उधर

घर जाना या घर वाली को, पहले लेने जाना।
धन मन देकर उसको पहले, शीघ्र मना कर लाना॥

उसके कृत्यों पर तो मुझको, ध्यान नहीं देना है।
हाथ पकड़ कर लाया जिसको, अपना उसको लेना है॥
ओछे से ओछापन करता, जो नर होता ओछा।
मुझे उसे ले आना घर पर, मैंने यह ही सोचा॥
भूल सदा इनसानों से ही, जग के अन्दर होती।
भूलों को जो नहीं देखता, है वह मानव मोती॥
मोती नहीं बनूं तो घोंघा, अच्छा कौन कहेगा।
अच्छा मानव वही जगत में, जो समभाव गहेगा॥

□ सुसराल पहुँचा

मन से ऐसा निश्चय करके, श्वसुरालय में आया।
हुए मुदित सब, पर पत्नी का, तन मन है थर्राया॥
कैसे जीवित बच आये ये!, अति है हक्की-बक्की।
लगी सोचने-हा! क़िस्मत ने, उलट चलादी चक्की॥
रहा अधूरा, कैसे, मैंने- काम किया जो नक्की।
उस पर तुर्रा, करके आये, कितनी बड़ी तरक्की!!

आखिर कर संकेत एक अब, अपने पास बुलाया।
आंखों ही आंखों में सारा, दिल का दर्द बताया॥

हवादार चौबारे में तब, ऊपर जा ठहराया ।
लगी बहाने नीर नयन से, कर तिरिया की माया ॥

८ क्षमा कीजिये

कहा—'कहीं की नहीं रहूंगी, अगर कहोगे इन से ।
सत्य मानिये मैं भी रोती- रहती हूं उस दिन से ॥
पता नहीं क्या नशा चढ़ा जो, मैंने पाप कमाया ।
भ्रष्ट हुई थी क्यों मति मेरी, समझ नहीं कुछ आया ॥
नहीं क्षमा के लायक हूं मैं, भूल भले हीं मेरी ।
फिर भी क्षमा कीजिये प्रियतम! समझ चरण की चेरी ॥
सपने में भी नाथ न अब मैं, ऐसी भूल करूंगी ।
सोच-समझ कर निश्चय पूर्वक, चरणन शीश धरूंगी ॥
पति के बिना नहीं पत्नी का, कोई अन्य सहारा ।
कितनी हूं मैं नीच कि मैंने, खुद ही धक्का मारा ॥
जगते - सोते रोते - धोते, गया समय है सारा ।
आकुल-व्याकुल मन रहता था, ज्यों थाली में पारा ॥

चलो हुआ अज्ञान—पने में, जो भी पाप हुआ है ।
क्या बतलाऊं कितना मुझको, पश्चाताप हुआ है ॥

□ भूल जावो

कहा सेठ ने मेरे मन में, बिल्कुल खेद नहीं है।
प्रिये! समझ लो तुझ में मुझ में, कोई भेद नहीं है॥
धूल भूल पर डालो देवी ! दिल को शान्त बनाओ।
रो-रो करके नयनों द्वारा, मत आंसू बरसाओ॥
होनहार होकर रहती है, जो भी हुआ भुलाओ।
चलो साथ में मेरे अपना, प्यारा गेह बसाओ॥

क्षमा मांग कर पत्नी खुश है, देकर खुश हैं लाला।
ऐसे ही पीया जाता है, यहां ज़हर का प्याला॥
दिल को बड़ा बनाने से हो, बड़ा आदमी बनता।
छोटे को भी बड़ा बना दे, भोली है क्या जनता?

○ सुसराल में स्वागत

हुआ सेठ का स्वागत भारी, बहुत दिनों में आये।
खुशियां क्यों न मनाई जाएं, आप कमा कर लाये।
आप रहे हैं स्वस्थ ? बताओ, बीता हाल पुराना।
धन-अर्जन में इतने, डूबे, भूल गए जो आना॥

जल्दी करें नहीं जाने को, ठहरो कुछ दिन तक तो ।
जामाता को ठहराने का, रखते हैं हम हक़ तो ॥
आते और चले जाते हो, क्या है बात बतावो ।
जावो अगर अकेले जाना, खाना स्वयं पकावो ॥
आने-जाने से हीं रहती, सच्ची रिश्तेदारी ।
मिलने और मिलाने से ही, दुनिया लगती प्यारी ॥

बोला सेठ—'आपकी मरज़ी, ठहरालो मन भरके ।
नहीं दूसरे आप सभी हैं, हैं मेरे ही घर के ॥

मनुहारों से रहना ही तो, रहना माना अच्छा ।
मनुहार तन्तु में ही गुंथता है, प्रेम-प्रीति का लच्छा ॥
खाना-पीना काम न करना, मौज मारना मन की ।
श्वसुरालय में शान्ति बड़ी है, चाहे हो इक दिन की ॥

▫ अपने नगर में

कुछ दिन रहकर पत्नी के संग, सेठ आगया घर पर ।
कितने ही बोझे होते हैं, इसी अकेले नर पर ॥
वही हवेली छुड़वाई है, जो थी रखी अड़ाने ।
धन दौलत हिम्मत पर सारे, आंखें लगे गड़ाने ॥

आये सेवक सभी पुराने, मांग रहे हैं माफी।
कहा–'आपके बिना सभी ने, कष्ट उठाया काफी॥
नहीं आप-सा सेठ दूसरा, धन का मन का लाला।
हमें आज तक मिला न कोई, प्यार लुटाने वाला॥

कहा–सेठ ने—'आओ अपना, काम संभालो सारा।
'चन्दन' चमक उठा सेठों का, वापस तेज सितारा॥
डूबी थी जो बाकी सारी, लगी पुरानी आने।
आने लगे लोग घर बैठे, व्याज समेत चुकाने॥
मूल-मूल लो व्याज छोड़ दो, कृपा कीजिये इतनी।
आधा, चौथाई हो देंगे, शक्ति देखले कितनी॥

ले लो जो जितना दे सकता, तंग नहीं करना है।
धन के लिये प्रेम का नाता, भंग नहीं करना है॥
मन-मुटाव हो जाए ऐसा, ढंग नहीं करना है।
भाई-भाई हैं मानव सब, रंग यही भरना है॥
लाखों रुपये आए सहसा, धन में धन बढ़ता है।
उदय हुआ जो सूर्य भाग्य का, गगनांगन चढ़ता है॥
पहले से भी दुगुना-तिगुना, काम बढ़ा अति भारी।
'चन्दन' मन में समझ रहा है, धन की महिमा सारी॥

▭ सुखी जीवन

खुश-खुश सेठ और सेठानी, करते जीवन यापन।
धन होने का कभी न करते, कोई भी विज्ञापन॥
धन भी नहीं बताती दुनिया, मन भी नहीं बताती।
दोनों की ही छाया मुख पर, स्वयं उभर कर आती॥

एक वर्ष के बाद सेठ घर, गूंज उठी शहनाई।
चन्दा-सा सुत जन्मा, पुर में, बंटने लगी बधाई॥
पाल-पोस कर पढ़ा-लिखा कर, उसकी करदी शादी।
पुत्रवधू जो आई घर में, मानो थी शहज़ादी॥
दो से देखो चार होगए, घर में अब वे प्राणी।
पुत्र, पुत्र की वधू समझलो, सेठ और सेठानी॥

▭ वधू का आतंक

सुत की मां से सुत-पत्नी थी, लड़ने में अति आगे।
जिसके पीछे पड़ जाती वह, बेचारा डर भागे।
चाहे छोटी-सी थी लेकिन, चाल मगर वह चलती॥
उसके आगे सेठानी की, दाल नहीं थी गलती॥

ऐसा कुछ आतंक बनाए, रखती थी वह घर में।
घुले जा रहे थे वे तीनों, नमक डली सम डर में॥
सास-बहू में पटा न सौदा, छिन भर को भी 'चन्दन'।
एक दूसरी को करती थीं, दूर दूर से वन्दन॥

□ दोनों तटस्थ

सेठ दुखी था पुत्र दुखी था, सुखी नहीं था कोई।
सास-बहू दोनों ने देखो, लाज-शर्म सब खोई॥
छोटी-छोटी बातों पर भी, हो जाता था झगड़ा।
भूल न जाए, एक दूसरी- को वह देतीं रगड़ा॥
एक दूसरी की वे करतीं, निन्दा - चुगली ऐसे।
नहीं वासता हो इस घर से, दोनों का ही जैसे॥
पिता-पुत्र बेचारे दोनों, खड़े देखते रहते।
और भड़कती ज्यादा ज्वाला, अगर कभी कुछ कहते॥
कहना या सुनना-समझाना, इनने छोड़ दिया था।
अपने को कुछ नहीं बोलना, मन को मोड़ लिया था॥

जब भी समझाया तब उलटी, उलझी देखी तानी।
चुप्पी साध लिया करते हैं, इसीलिये ही ज्ञानी॥

□ एक दिन की बात

सेठ एक दिन भोजन करने, घर पर चल कर आया।
भक्ति-सहित सेठानी जी ने, आसन पर बिठलाया॥
बढ़िया-बढ़िया भोजन से फिर, कंचन - थाल सजाया।
देख सजावट देव-भोज्य भी, यानी आज लजाया॥
थाल रख दिया ला पट्टे पर, रखा पास में पानी।
और पास में बैठ गई है, स्नेह सहित सेठानी॥
प्रेम सहित भोजन करवाना, कार्य प्रथम नारी का।
मन से बोझ उतर जाता है, इससे संसारी का॥
ले लो रखा पड़ा है खाना, खालो जो मन भाये।
पत्नी ऐसे कहदे पति से, मुझ से उठा न जाये॥
बच्चे हो क्या पास बैठ कर, तुम्हें कराऊं भोजन ?
ऐसे वचन श्रवण कर 'चन्दन', कैसे होगा खुश मन॥

□ पुरानी स्मृति

तड़प रही थी दुनिया, गरमी- का था गरम महीना।
इस गरमी से सेठ-भाल पर, चमका तभी पसीना॥
कष्ट सेठ का देख चित्त में, सेठानी घबराई।
बन्द देख कर कमरे का वह, खोल झरोखा आई॥

धूप पड़ी सीधी थाली पर, पत्नी का मन धड़का।
लगा सेठ के मुंह पर पड़ने, तेज थाल का तड़का॥
दाएं-बाएं हाथों से दो, पंखे तभी उठाए।
पवन झुलाती एक एक से, आती धूप हटाए॥
दृश्य अनोखा देख सेठ को, हंसी एकदम आई।
नीतिज्ञों ने नारी को तो, अद्भुत जाति बताई॥

८ सेठ के मनोभाव

इसने ही अपने हाथों से, था कूएं में डाला।
आज धूप से बचा रही है, करती लाला लाला॥
जहां पसीना पड़ता मेरा, लोहू वहां बहाती।
जाती नदी इधर बहने को, ये ले कहां बहाती॥
पत्थर जैसा और कमल-सा, मन होता नारी का।
पता नहीं है क्या प्रियजन तन, धन होता नारी का॥
शेरों के सम्मुख हो जाती, डर जाती चूहों से।
शैलों पर तो चढ़ जाती है, डरती छोटे ढूहों से॥
तर जाती सागर की लहरें, तालों में मर जाती।
काम अनोखे ही यह नारी, इस जग में कर जाती॥
अबला भी है सबला भी है, जैसा बाजे तबला।
कोई नहीं समझ पाता है, नारी है क्या घपला॥

हंसी रोक कर खाना खाया, चले गए हैं लाला।
इसी हंसी ने सर्वनाश का, आज बीज बो डाला॥

☐ पुत्रवधू का पाप

"पुत्रवधू ने हंसते देखा, आज ससुर प्यारे को।
उलटा-सीधा सोच चित्त से, गरम किया पारे को॥
मेरी किसी भूल पर ही है, हंसी ससुर को आई।
पता नहीं क्या गलती ऐसी, भोजन में रह पाई॥
पता लगाए बिना न मुझ को, भायेगा अब खाना।
हाय! होगया मेरा जीवन, इतना अब बेगाना॥
हो सकता है साग-पात में, दोष रहा हो कोई।
सारो की सारी ही अथवा, रद्दी हुई रसोई॥
हंसते रहते नहीं, बताते- सारी त्रुटियां मेरी।
त्रुटियां दूर हटाने में मैं, नहीं लगाती देरी॥
बेटी नहीं मानते हैं ये, फूहड़ जान रहे हैं।
तभी उड़ाकर हंसी इस तरह, खुशियां मान रहे हैं॥"

झगड़ालू इस पुत्रवधू ने, मन से बुरा मनाया।
इतने ही में करने भोजन, उसका पति है आया॥

देख रही थी बाट बहू भी, उनकी उत्सुकता से।
आते ही ले गई किनारे, वैसे भूखे—प्यासे ॥
सारी कथा सुना कर बोली, पूछ पिता से आओ;
मेरे मन की उलझी गुत्थी, अभी-अभी सुलझाओ ॥

पति का उत्तर

हैं गम्भीर धीर गुण धारी, पूज्य पिता जी भारी।
त्रुटियां नहीं देखने वाले, कोई कभी तुम्हारी ॥
इतनी अपनी आयु देखलो, उनके पास गुजारी।
कभी छिछोरी बात किसी को, सुनी नहीं उच्चारी ॥
पहुंचे कष्ट किसी को या दुख- पाये कोई प्राणी।
कभी नहीं वे बोला करते, मुख से ऐसी बाणी ॥
दोष देखने को भी उनकी, बिल्कुल बान नहीं है।
समभावी उन सम हो कोई, ऐसा ध्यान नहीं है ॥
दोष देखना दुष्टों का है, काम नजर में उनकी।
उनके लिये सोचना ऐसा, बात बड़ी बचपन की ॥

होगा कोई कारण यूं ही, हंसने का साधारण।
व्यर्थ पिता जी से करवाना, शंका अतः निवारण ॥

□ स्त्री का दुराग्रह

अड़ी रही अपने ही हठ पर, नहीं बात इक मानी।
पता लगाए बिना नहीं मैं, अब पीऊंगी पानी॥
रोटी नहीं खिलानी हरगिज़, नहीं मुझे भी खानी।
भूखी-प्यासी ख़त्म करूंगी, अपनी यह ज़िन्दगानी॥

□ पिता जी से प्रश्न

देखा और न चारा तब वह, पुत्र पिता ढिग आया।
बड़ी झिझक के साथ पिता को, सारा हाल सुनाया॥
चकित होगए इकदम ही वे, सुनकर बात कंवर की।
है विनाश की वेला आई, अब तो अपने घर की॥
कहा पिता ने दुख से, यह मत- पूछो पुत्र! कहानी।
नहीं तुम्हारा उससे मतलब, है यह बात पुरानी॥

□ पुत्र के तर्क

पुत्र एक ही हूं मैं प्यारा, क्यों न मुझे बतलाओ?
घर की, पर की, दुनिया भर की, बातें सब समझाओ॥

किसे कहोगे यह तो बोलो, उसको ही ले आऊं।
भेद बात का लेने को मैं, कहो कहां पर जाऊं॥
कभी न खाना कभी न पीना, अड़चन सख्त लगादी।
अड़ी हुई बैठी है इस पर, घर पर वह शहज़ादी॥
खाती नहीं खिलाती मुझको, इससे पहले खाना।
बात पूछने को तत्क्षण ही, पड़ा मुझे है आना॥
मन की बात जानने को यों, ज़िद्द नहीं लेता मैं।
ज़िद्द नहीं लेती यदि वह तो, छोड़ यहीं देता मैं॥
घर की हालत आप जानते, इसीलिये बतलाएं।
होगा सो देखा जायेगा, अब तो आप सुनाएं॥

□ बात कह दी

सेठ सोचता सुन कर मन में, होनहार अब आई।
रखी समाई सदा, आज क्यों- हंसकर बात गंवाई॥
नहीं कहूं तो अगर कहूँ तो, हानि-हानि है भारी।
सांप छछूंदर वाली स्थिति है, मेरी सन्मति हारी॥

भावी का बल प्रबल जान कर, सारी कथा सुनादी।
मन ही मन में सोचा अब तो, होगी ही बरबादी॥

समय हाथ से, नीर नयन से, मुख से निकली वाणी।
हाथ नहीं फिर आते तीनों, बोल गए यों ज्ञानी॥

बेटा! टाल सके तो ज्यों-ज्यों, बात टाल देना है।
बात सुना कर गले सभी के, जाल डाल देना है॥
सास-बहू के झगड़े से ही, सर्वनाश होना है।
होना सम्मुख नजर आ रहा, इसीलिये रोना है॥

बेटा बोला—'पूज्य पिता जी, करें न बातें ऐसी।
ऐसी बातों पर से भावी, लगे सोचने कैसी॥

⊡ पुत्र पर प्रभाव

"तेरी मां ऐसी है" आया, अब आंखों में पानी।
निभा रहे हैं पूज्य पिता जी, बन कर ऊंचे ज्ञानी॥
पत्नी मिली मुझे भी ऐसी, शान्ति नहीं जीवन में।
किसे पता है क्या-क्या होता, छिपा हुआ इस मन में॥
पत्नी को सच बतलाना तो, कलह लगाना घर में।
हो जाएगा मुश्किल फिर तो, आना-जाना घर में॥

C पत्नी का दबाव

घर आकर पत्नी से बोला, कर तू कोप निवारण।
पूज्य पिता जी के हंसने का, अरी! और था कारण॥
मगर नहीं है बिल्कुल भी वह, बात बताने वाली।
माता जी के मन को बातें, सख्त दुखाने वाली॥
खड़े होगए कान उसीदम, दोनों रानी जी के।
धोकर हाथ पड़ी वह पीछे, अपने प्यारे पी के॥
कहा— 'बतानी होगी मुझको, बात खोल कर सारी।
नहीं खिलाड़ी कहला सकता, बाज़ी जिसने हारी॥

वरना पता तुम्हें है मेरा, तज कर पीना-खाना।
चढ़कर सारे घर के सिर पर, मुझे अभी मर जाना॥

चाल चलो मत कोई, कुछ भी, मुझ से नहीं छिपाओ।
जो भी है वह साफ़-साफ़ सब, अभी-अभी बतलाओ॥

यह मत समझो खेली हूं मैं, कोई गोली कच्ची।
सुन करके ही छोड़ूंगी मैं, सारी घटना सच्ची॥

जब तक नहीं कहोगे तब तक, तुम्हें न जाने दूंगी।
नहीं आपको किसी काम में- हाथ लगाने दूंगी॥

यह मत समझो चिकनी-चुपड़ी, बात बनाने दूंगी।
सच्चाई के सिवा न सुनने, और सुनाने दूंगी॥

इधर-उधर के बिल्कुल चलने- नहीं बहाने दूंगी।
भेद बात का नहीं ज़रा भी, आज छिपाने दूंगी॥
रोब सहूंगी नहीं लाल भी, आंख दिखाने दूंगी।
पक्ष सास का ज़रा न करने, और कराने दूंगी॥
खाऊं-पीऊं नहीं, नहीं मैं- पीने खाने दूंगी।
धर्म उठावोगे तो भी मैं, नहीं उठाने दूंगी॥

□ रास्ता बदला

पति बोला—'मैं नहीं बताता, करना है सो कर तू।
मैं भी मरजाऊंगा भूखा, जायेगी यदि मर तू॥
मुझे नहीं डर लगता इतना, किसे दिखाती डर तू।
डर दिखला कर सारे घर के, चढ़ी हुई सिर पर तू॥
हठ ने हठ करना है डटकर, हट कर कहीं न जाना।
शठ से शठ बनने पर ही शठ, झट से करता माना॥

तब उसने पथ बदल लिया है, बोली मीठे स्वर से।
ऐसा नहीं दुराग्रह मेरा, प्यारे प्राणेश्वर से॥
मैं हूं दिल की रानी फिर क्यों, करते आनाकानी।
कहो कहानी आदि अन्त तक, मिट जाए हैरानी॥

मेरे और आपके दिल में, जब दीवार नहीं है।
रखने में फिर पर्दा प्यारे! कोई सार नहीं है॥
मैंने किया समर्पित जीवन, प्यारे पति-चरणों में।
स्नेह नहीं पनपा करता है, ऐसे आवरणों में॥
दिल देने से दिल मिलता है, और नहीं पथ कोई।
आप बतायें या न बताएं, मैं पद-दासी होई॥
'प्राण-वल्लभा' कहने वाले, प्राण लुटा देते हैं।
प्रिया-मनोरथ पूर्ति हेतु वे, जगत उठा लेते हैं॥
आप बात भी नहीं बताते, बात कमाल यही है!
नीतिशास्त्र अनुकूल बात यह, मैंने सही कही है॥

□ सुनो सुनो

पिघल गया प्यारे पति का मन, सारी बात सुनादी।
इसका अर्थ यही होता है, मानो हुई मुनादी॥
सुन कर हंसकर बोली-'प्रियतम! बात यही है इतनी!
जिसे सुनाने में ही देखो, देर लगादी कितनी॥
चलो, उठो खाएं-पीएं' अब, नियम होगया पूरा।
पूरा प्रेम आपका मुझ पर, मानूं नहीं अधूरा॥

"रखना गुप्त किसे मत कहना, सुनो सयानी रानी!
तूने जानी मैंने जानी, नहीं अन्य ने जानी॥"

"ऐसी बातें कहने की कब, होतीं प्यारे बालम !
ऐसी बाते करने वाले, होते हैं जन ज़ालम ॥
मात्र जानने के ख़ातिर ही, पूछी जाती बातें ।
बातें अगर नहीं होती तो, कैसे कटती रातें ॥

□ लड़ाई छिड़ी

बीते होंगे तीन-चार दिन, सास बहू में खड़की ?
भला चूकती अब वह कैसे, बबरशेरनो भड़को ॥
बाण अचूक हाथ में ऐसा, अनायास था आया ।
बिना विचारे आज सास पर, उसने तीर चलाया ॥

"बोल रही हो क्या मुंह लेकर, शर्म नहीं कुछ आती ।
फेंका पति को अंध-कूप में, पतिव्रता कहलाती ॥
इतने दिन तो बहुत रही तू, तीखे तीर चलाती ।
तान सकेगी मेरे सम्मुख, अब किस बल पर छाती ?
अपने याद कुकर्मों को कर, जो थे कभी कमाए ।
लाख छिपाए लेकिन फिर भी, क्या वे छिपने पाए ?
मैंने मेरे पति को अब तक, नहीं कूप में डाला ।
तेरे से तो अच्छी ही हूं, तू है विष की ज्वाला ॥

छोटी-छोटी बातें तेरी, सारी जान रही हूं।
इसीलिये यह सोना तेरे, सम्मुख तान रही हूं।।
बोल और कुछ बोल दूसरा, बाण चलावूं सारा ?
तेरा जो भी जीवन है वह, खोल दिखावूं सारा ?
बहू बुरी है, बहू बुरी है, सास बड़ी अच्छी है !
कितनी अच्छी कितनी सच्ची, दूधमुंही बच्ची है।।
बच्ची! फिर भी बोलेगी तू, आया मुंह पर ताला।
ऐसे बाण पड़े हैं कितने, पहला आज निकाला।।

सेठानी की मौत

लगी हुई पग-शूल-नोक का, सरल नहीं जब सहना।
वचन-शूल की तीव्र वेदना, सहने का क्या कहना।।
मधुर वचन तो मन को उतना, अरे! नहीं सहलाते।
काट-कुरेद हृदय को जितना, मर्म वचन ये जाते।।
मर्म वचन के आगे कैसी, कैंची कैसा भाला।
मर्म वचन-सी इस दुनिया में, है क्या कोई ज्वाला ?
मर्म वचन दोपहरी में भी, देता दिखला तारे।
बड़े-बड़े भी वीर-बहादुर, इसके आगे हारे।।
मर्म वचन का अन्य वचन सब, डरते भरते पानी।
ध्यान लगाकर सुनो सज्जनों! बाकी बची कहानी।।

काटो तो बस खून नहीं है, सेठानी घबराई।
एक शब्द भी पुत्रवधू से, नहीं बोलने पाई।।
मेरी बीती बातों का जब, पता बहू को सारा।
जीना है बेकार आज ही, मुझको मरना प्यारा।।

ऊपर जा चौबारे में बस, फांसी गले लगाई।
एक पलक में उसने अपनी, प्यारी जान गंवाई।।

□ सेठ की मौत

भोजन करने सेठ जिस समय, चल कर घर में आया।
गेहस्वामिनी सेठानी को, नहीं कहीं पर पाया।।
आखिर उसने ऊपर जाकर, देखा है चौबारा।
कांप उठा मन कोमल उसका, सहसा भय का मारा।।
नीचे का दम नीचे 'चन्दन', ऊपर का दम ऊपर।
पांव तले से धरती खिसकी, अक़ल खागई चक्कर।।
महा दुखित था महा चकित था, आग लगी लख घर में।
गगन धरा सब डोल रहे थे, उसकी आज नज़र में।।
सघन घटा में बिजली जैसे, कौंध उठे इक क्षण में।
समझ गया वह सारी घटना, अब तो मन ही मन में।।

"सास बहू में युद्ध ज़ोर का, छिड़ा आज ही होगा।
और उसी में वही पुराना, खुला राज़ भी होगा॥
यही निमित्त बना हत्या का, कोई और नहीं है।
मेरे लिये कहीं पर भी अब; कोई ठौर नहीं है॥
अगर बताता नहीं पुत्र को, घटना घटी पुरानी।
फ़न्दा डाल गले में क्यों यह, मरती रे! सेठानी॥
दागी दुर्भागी मेरे-सा, कोई होगा प्राणी।
लगता है ले डूबेगी, इस- कुल को कलह-कहानी॥"

दुख में और न सूझा उसको, नीचे लाश उतारी।
रस्सी वही गले में अपने, अपने हाथों डारी॥
खत्म होगई एक मिनट में, सरल जिन्दगी प्यारी।
ले डूबी यों साथ नाथ को, निरी निकम्मी नारी॥

८ पुत्र की मौत

सेठ-पुत्र भी खाना खाने, उसी समय घर आया।
पूज्य पिता को नहीं देख कर, वह भारी घबराया॥
नहीं पधारे अभी हाट पर, दिखते नहीं यहां हैं।
नहीं मार्ग में मिले कहीं भी, आखिर गये कहां हैं?

घबरा करके सारे घर को, उसने देखा भाला ।
फिर भी नहीं कहीं पर उसको, पाया प्यारा लाला ॥
आखिर पूछा पत्नी से ही, पूर्णतया बन भोली ।
लापरवाही से ही पति से, बोली ऐसी बोली ॥

"अभी-अभी तो डोल रहे थे, उधर सास के पीछे ।
देख लीजिये यहीं कहीं वे, होंगे ऊपर नीचे ॥
मैं क्या जानूं और कहां हैं, क्या कुछ हैं वे करते ।
पूछ-पूछ कर मुझ से थोड़े, कदम कहीं हैं धरते ?
देखो, पीछे-पीछे उनके, कभी न डोला जाता ।
आप टटोलें मेरे मे तो, नहीं टटोला जाता ॥

पत्नी की ये तीखी-तीखी, बातें सुन घबराया ।
और ढूंढता मात-पिता को, चौबारे में आया ॥
अति दुख भरा दृश्य जब उसने, जाकर वहां निहारा ।
सिहर उठा बेचारा सहसा, वह किस्मत का मारा ॥
मूर्च्छित होकर गिरने को था, गिरते-गिरते संभला ।
हे मेरे भगवान ! मचा क्या, आज अचानक घपला ?
चकराते सर को हाथों से, खड़ा दबोच रहा है ।
किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना वह, मन में सोच रहा है ॥

इन दोनों के मर जाने का, कारण एक बना हूं।
भाड़ फोड़ने वाला समझो, मैं ही एक चना हूं ॥
बात पिता से पूछी थी जो, अगर न उसे सुनाता।
दृश्य भयानक यह जीवन में, देख कभी क्या पाता ?

कहा पिता जी ने था, मत यह- पूछो पुत्र ! कहानी।
लाभ नहीं कुछ हो पाएगा, होगी हानि उठानी ॥
नहीं आज की घटना है यह, है यह बात पुरानी।
हठ छोड़ो मन मोड़ो अपना, उचित नहीं नादानी ॥
कहा मान लेता जो उनका, क्यों फिर यह गुल खिलता।
दोनों का ही प्यारा जीवन, क्यों माटी में मिलता ॥
बात हाथ कब आ सकती है, जो की बिना विचारे।
मेरी ही करनी ने सचमुच', माता-पिता हैं मारे ॥
सहा नहीं जायेगा मुझसे, अब भारी यह दुखड़ा।
दिखलाने के योग्य नहीं अब, रहा कलंकित मुखड़ा ॥
दूर न होगा मेरे सिरसे, ऐसा भारी पातक।
सभी कहेंगे मुझको ही अब, माता-पिता का घातक ॥

जिस पथ से भी मैं निकलूंगा, देगी दुनिया ताने।
भान्ति-भान्ति के वचन कहेगी, सब जनता मन-माने ॥

देखो-देखो दुनिया वालो, बेटा हो तो ऐसा।
मार दिया रे ! मात-पिता को, लेने को सब पैसा ॥
आयेगा जो जिसके जी में, मुख से वहीं कहेगा।
तीखी-तीखी तीरों जैसी, बातें कौन सहेगा ?

ऐसा सोच पिता के शव को, नीचे तभी सुलाया।
और हाथ से फ़ौरन फंदा, अपने गले लगाया ॥
तड़प-तड़प कर आख़िर ठण्डा, वह भी वहीं हुआ है।
आस-पास में पता किसी को, लेकिन नहीं हुआ है ॥

□ मैं सावधान हूं

उधर बनाती बहू रसोई, मन ही मन घबराई।
क्यों न किसी ने ऊपर से आ, अब तक शकल दिखाई !!
कब की बैठी बाट देखती, ठंडी पड़ी रसोई।
भला नहीं क्यों तीनों में से, आया अब तक कोई !!
एक बात यों आती मन में, एक बात यों जाती।
धड़क रही है पल-पल उसकी, चिन्ता द्वारा छाती ॥
जो भी गया रहा ऊपर क्यों ? सोचे मन को मारे।
करते क्या हैं आख़िर सारे, चढ़े-चढ़े चौबारे ?

इतनी देर होगई ऊपर, नहीं उतर कर आते
मेरे कहीं विरुद्ध वहां पर, हों न जाल रचाते ॥
लाख करें वे कोशिश चाहे, चाल न चलने दूंगी।
तीनों की ही किसी तरह से, दाल न गलने दूंगी ॥
चुपके-से जाकरके देखूं, करते हैं क्या मिलजुल।
कलह-काल में गफ़लत रखना, उचित नहीं है बिल्कुल ॥

▭ कोई नहीं बोलता

चढ़ी सीढ़ियां धीरे से पर, हाथ नहीं कुछ आया।
मरघट जैसी नीरवता का, राज वहां पर पाया ॥
आखिर कमरे तक जा पहुंची, धीरे कदम टिकाती।
अपने प्यारे गति-कौशल पर, मन ही मन मुस्काती ॥
सोच रही है—मेरा-चढ़ना, कितना अधिक भला है।
तीनों को ही नहीं अभी तक, कुछ भी पता चला है ॥
नाम इसी का है दुनिया में, चालाकी — हुशियारी।
सुन लूंगी मैं अन्दर की अब, उनकी गिटपिट सारी ॥
कमरे के उस भित्ति भाग से; अपना कान लगाया।
अन्दर से तो नहीं अभी तक, शब्द एक भी आया ॥
तो क्या सभी इशारों से ही, होंगे बातें करते।
अपनी पुत्रवधू से सारे, मन ही मन में डरते ॥

अथवा लगे सोचने होंगे, भेद खोल रहे हैं।
अपने अन्दर-अन्दर ही बस, विष ही घोल रहे हैं॥
बड़ी कुशलता से वह आखिर, निकट द्वार के आई।
पहले से भी नीरवता पर, अधिक वहां पर पाई॥
साहस करके तब तो गर्दन, आगे ज़रा झुकाई।
दृश्य देख कर कमरे का वह, है सहसा घबराई॥

तीनों गए

देखा उसने सास-ससुर तो, नीचे मरे पड़े हैं।
मेरे प्यारे पति प्राणेश्वर, फांसी हाय ! चढ़े हैं॥
बड़ी कठिनता से वह संभली, चक्कर खाती-खाती॥
मारे दुख के फटी जा रही, सहसा उसकी छाती।
सास-ससुर के मरने का तो, अधिक नहीं कुछ ग़म था।
पति की मृत्यु देखकर लेकिन, निकला जाता दम था॥

पश्चाताप का स्वर

सोच रही थी—'कितनी पापिन, मैं निर्भागिन नारी।
मेरी एक बात के कारन, सास मरी बेचारी॥
नहीं खोलती मर्म अगर मैं, अपनी सासू जी का।
होता आज वियोग भला क्यों, मुझको मेरे पी का॥

पूज्य श्वसुर भी आज मर गए, गले लगा कर फन्दा।
कितना कुछ सह सकता है यह, आखिर तो है बन्दा॥
दोष मगर मन! पापी मेरे, इसमें नहीं किसी का।
अपने आप लगाया माथे, कालख का यह टीका॥
सब कुछ सीखा मैंने लेकिन, नहीं बोलना सीखा।
आग लगे इस रसना को जो, वचन बोलती तीखा॥
महा मूर्खिनी बनकर मैंने, हिंसा-होली खेली।
किस्मत मारी नारी सब में, मैं हूं आज अकेली॥
काम नहीं आ सकते मेरे, ये घर हाट हवेली।
साथ नहीं दे सकती कोई, प्यारी सखी — सहेली॥
खुली हुई आंखों से कुछ भी, गया न देखा-भाला।
पता नहीं क्या भूत चढ़ा जो, लगा अक्ल पर ताला॥
बना-बनाया व्यर्थ सभी कुछ, गुड़ गोबर कर डाला।
दिखलाऊंगी अब मैं कैसे, दुनिया को मुंह काला॥

□ वधू का भी अन्त

उसने अपने पति के शव को, तुरत उतारा नीचे।
लटक गई है खुद फांसी पर, उन तीनों के पीछे॥
चली गई खुद छोड़ गई पर, अपनी पाप-कहानी।
एक वचन से मरे देखलो, कुनबे के छः प्राणी॥

एक वृदन से मरे देखलो, कुनवे के छः प्राणी ।

सास बहू दोनों ही देखो, मां थीं बनने वाली।
अल्प काल में सुन्दर बालक, दोनों जनने वाली॥
एक वचन से चार पुरुष, दो- मरी नारियां देखो।
बिना विचारे मर्म वचन की, खूब ख्वारियां देखो॥

▭ समापन और शिक्षा

सत्य अणुव्रत द्वारा आगम, तत्त्व यही समझाते।
मर्म वचन मत बोलो, धर्मी- कहलाने के नाते॥
मर्म वचन के कहने वाले, होते लोग अनाड़ी।
अपयश पाते, पैठ गंवाते, बनते मूक अगाड़ी॥
मीठी भी है कड़वी भी है, क्या है चीज बतावो।
वाणी अमृत तथा ज़हर है, ज्ञान विवेक जगाओ॥
पहले तोलो, पीछे बोलो, कटुक न बोलो बानी।
अदभुत शिक्षाएं देती है, 'चन्दन' सरस कहानी॥

दो हज़ार तेवीस विक्रमी, फाल्गुण मास सुहाया।
'बरनाला' में रचना करके, 'चन्दन'-मन हरषाया॥
जय हो श्री अरिहन्तदेव की, श्री सद्गुरु की जय हो।
जय हो, जय हो करने वाला, 'चन्दन' मन निर्भय हो॥

बरनाला
२०२३ फाल्गुण

□

दो नौ-कों का फेर समझ में,
आता माना क्या आसान ?
इसीलिये तो सुखी नहीं हैं,
महा दुखी देखा धनवान।

□

□ २१ □ निन्नानवें का फेर

किसी गांव में था बड़ा, सेठ एक धनवान।
धनवानों को आजकल, मिलता ऊंचा स्थान॥

□ धन और धनवान

धनवानों के स्थानों पर ही, लगता पहरा चारों ओर।
तन में नहीं, हुआ करता है, धनवानों के धन में ज़ोर॥
धन भी बड़ा विचित्र स्वभावी, धन जाता है धन के पास।
स्थान ज़रूर मुझे धन देगा, धन का धन को दृढ़ विश्वास॥
तन पर छाता, मन पर छाता, जीवन पर छा जाता धन।
इसीलिये जब आता है धन, आंख मीच कर आता धन॥

ऊपर से भी, नीचे से भी, अगल-बगल से आता धन।
इधर-उधर से आ-आ करके, एकत्रित हो जाता धन॥
कैसे आया ? कैसे आया ? और कहां से आया धन।
ऊपर से भी नीचे से भी; अगल-बगल से आता धन॥
प्रश्न नहीं पूछा करता है, धन से धनवानों का मन॥
काला हो उजला हो चाहे, चाहे जैसे हो आया।
धनवानों के मन में घर में, धन ने स्थान सदा पाया॥
जब भी आता हो धन उसको, आने देते सेठ बड़े।
धन का अभिनन्दन करने को, 'चन्दन' रहते सेठ खड़े॥

अभी नहीं फिर आना, ऐसे, धन से कहते सेठ नहीं।
और नहीं खावूंगा कहता, ज्यों पेटू का पेट नहीं॥
तन से मन से; जीवन से भी, धन को देते ऊंचा स्थान।
तन-मन-जीवन-वान न होते, होते वे केवल धनवान॥

□ सेठानी का सवाल

सेठानी ने कहा—'आपका, क्यों है इतना दुर्बल तन ?
तन-मन दुर्बल कैसे होता, जब घर पर है इतना धन ?
बादामी हलवा खाते हो, पीते काली गौ का दूध।
फिर भी आप जवानों जैसे, बतलाओ क्या सकते कूद ?

दूध, मलाई, मक्खन ताजा, दही और घृत बिल्कुल शुद्ध।
खाने वाला लड़ सकता है, एक बार मल्लों से युद्ध ॥
आसव, चूर्ण, चटनियां, भस्में, पिष्टि और अवलेह लिया।
रस ने रस न बनाया किंचित, शक्तिमान क्या देह किया ?

सुश्रूषा के लिये हमेशा, मैं रहती हूं खड़ी-खड़ी।
जो आज्ञा करते वह तत्क्षण, हाजर होती उसी घड़ी ॥
फिर भी भूख न लगती पूरी, पूरी नींद नहीं आती।
हाथ-पांव दुखते रहते हैं, दुखने लग जाती छाती ॥
कमी नहीं है, गमी नहीं है, फिर भी नहीं जीवनोल्लास।
कारण नहीं समझ में आता, क्यों धुंधला-जीवन-आकाश ?

ज़रा-पड़ोसी का तो देखो, कितना है मजबूत शरीर।
मजदूरी करने वाला है, फिर भी बिल्कुल नहीं अधीर ॥
रूखी-सूखी मोटी-मोटी, केवल दो रोटी खाता।
तुम से तगड़ा पड़ता देखो, मोटा भी होता जाता ॥
औषधि लेता नहीं कभी भी, देखो यह बीमार पड़ा।
तन से सुखी सुखी जीवन से, अपने से भी बहुत बड़ा ॥
उसके पास नहीं है कुछ भी, सुख-साधन हैं अपने पास।
लेकिन वह खुश रहता हरदम, हम क्यों रहते नित्य उदास ?

टूटो-फूटी एक झोंपड़ी, टूटो-फूटी खाट पड़ी।
सोता सुख की नींद हमेशा, मानो कोई लाट पड़ी॥
वह क्यों सुखी दुखी हैं हम क्यों? कारण मुझको जतलाएं।
मर्म स्वास्थ्या का सुखका उसके, नाथ! मुझे भी बतलाएं॥

सेठ का उत्तर

कहा सेठ ने सेठानी से, मुझको चिन्ता है धन की।
मन की चिन्ता खा जाती है, शक्ति समूचे जीवन की॥
अर्थ कमाने की चिन्ता फिर, चिन्ता उसको रखने की।
उसे बढ़ाने की चिन्ता फिर, बात नहीं क्या थकने की?
बाजारों की उथल-पुथल से, असंतुलन होता मन का।
नहीं हमारा फिक्र हमें है, फिक्र हमें है बस धन का॥
अच्छा खाते अच्छा पीते, फिर भी बनता रक्त नहीं।
बड़े-बड़े धनवानों को तो, खाने का भी वक्त नहीं॥
असमय खाना, असमय सोना, होना क्यों बीमार नहीं।
धन से प्यार होगया मन को, जीवन से कुछ प्यार नहीं॥

नहीं अभी तक उसे लगा है, निन्नाणूं का फेर बड़ा।
इसीलिये सेठानी जी! है, वह काया से बड़ा कड़ा॥

८. समझी नहीं

"निन्नाणूं का फेर" बला क्या, समझावो इसका मतलब।
मतलब नहीं समझ में आये, क्यों की जाए हां-हां तब॥"

"कहा सेठ ने—समझाने के- लिये उठाना है नुक़सान।"
"कभी-कभी नुकसान उठाकर, पाया भी जाता है ज्ञान॥"

नोली में रुपये निन्नाणूं, पूरे गिनकर डाल दिये।
सेठानी के सम्मुख अपने, मन के प्रगट खयाल किये॥

८ नोली डाली

तभी पड़ोसी घर में नौली, रात्रि-काल में दी है डाल।
इससे पूरा हो जाएगा, सेठानी का कठिन सवाल॥
नोली गिरते रुपये बोले, फिर भी नींद न पाई टूट।
अगर टूटती नींद न उठकर, ले लेता क्या द्रव्य अटूट?

गहरी नींद न टूटा करती, चाहे कोई हो आवाज।
नींद टूटती यदि तुम चाहो, अमुक समय पर जगना आज॥

□ बचत शुरू हो गई

हुआ सवेरा उठा पड़ोसी, देखी नोली पड़ी हुई।
कभी आज तक नहीं हुई यह, बात आज क्यों बड़ी हुई !!
किसने रुपय्ये डाले मेरे- आंगन में नोली भर कर !
क़िस्मत खुलने को ही कहते, फाटा अम्बर या छप्पर ॥

नोली खोली गिने रुपय्ये, सौ में कमती एक रहा।
बार-बार रुपय्ये गिनता, बार-बार ही देख रहा ॥
निन्नाणूं तो हैं ही पूरे, एक डाल कर सौ करना।
मेरा है कर्त्तव्य प्रथम इस- खाली नोली को भरना ॥

पहले जितना खाता उतना, खा-पीकर करता पूरा।
जोड़ा नहीं एक भी पैसा, उदर प्रथम भरता पूरा ॥
अब जितना लाता उसमें से, प्रतिदिन करने लगा बचत।
बचत नहीं हो सकती अगर न, बदली जाए कुछ आदत ॥

एक बचाकर रुपय्या उसने, नोली का मुंह बन्द किया।
पूरी नोली भर जाने से, मन में अति आनन्द लिया ॥
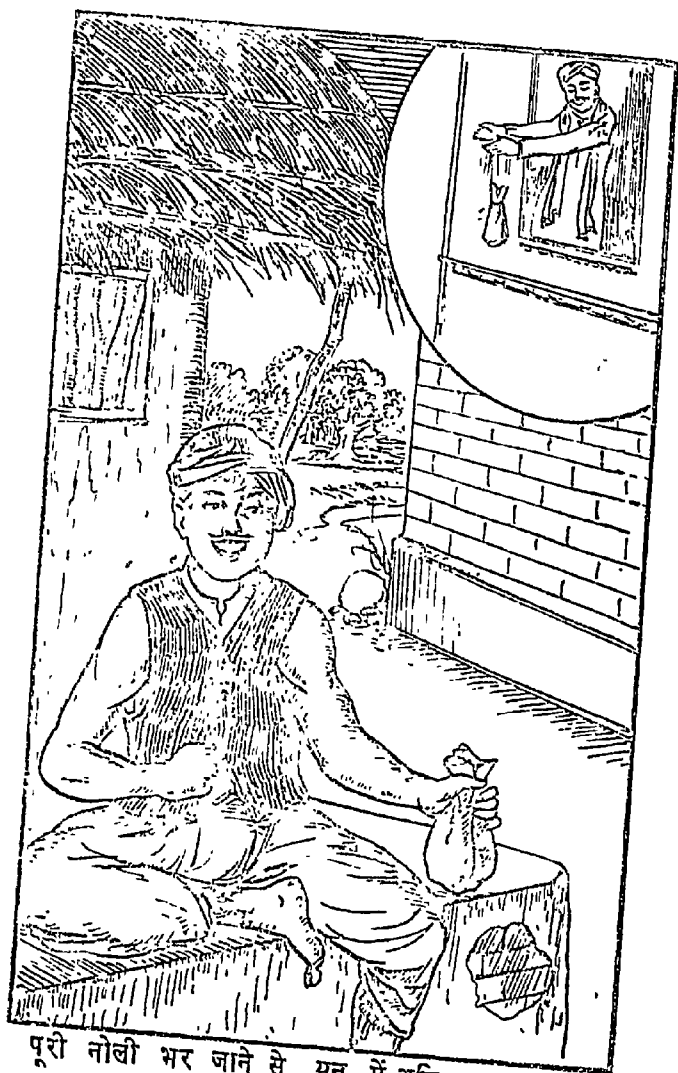
पूरी नोली भर जाने से, मन में अति आनन्द लिया।

□ दूसरी नोली

एक सैंकड़ा पूरा करके, भर कर रखदी है नोली।
नोली भरूं दूसरी ऐसे, बचत-योजना भी खोली॥
अधिक बचाने की नीयत से, हुई कटौती भोजन में।
कैसे अधिक बचाया जाए, यही सोचता है मन में॥
नहीं दूध लूं नहीं दही लूं, नहीं चाय भी पीऊंगा।
केवल रोटी खाऊंगा तो, क्या मैं कमती जीऊंगा?
रोटी भी दो वक्त न खाकर, एक बार ही खाऊंगा।
इधर कमाऊंगा ज्यादा मैं, अधिक बचत कर पाऊंगा॥

अधिक बचत करते रहने से, सारा सूख गया है रक्त।
पहलवान-सा लगने वाला, लगता नर का ढांचा फ़क्त॥
चिन्ता-मुक्त चित्त की चर्या, इसे नहीं अब याद रही।
जीने का अब स्वाद नहीं है, धन का आया स्वाद सही॥

□ नया आदेश

घर वालों से भी कहता है, कम खाओ कम खर्च करो।
नोली जल्दी भर जाए बस, इस हिसाब से खर्च करो॥

भर कर रखो नौलियां धन की, काम समय पर आएंगी।
वेला और कु-वेला में से, ये ही हमें बचाएंगी॥
टूटी-फूटो झौंपड़ियों की, जगह बनेगा चौबारा।
बिना नौलियों के जीवन में, क्या हो सकतो पौबारा॥
कपड़े होंगे-लत्ते होंगे, होंगे भूषण सोने के।
बिना नौलियां मन के चाहे, काम नहीं कुछ होने के॥
खाया हुआ निकल जाता है, रहता सदा बचाया धन।
सुबह बचावो शाम बचावो, यही लगाने लगा रटन॥
तन पर ध्यान नहीं देके अब, धन पर ध्यान दिया जाता।
भोजन को भी स्थान न देते, धन को स्थान दिया जाता॥

एक महीने में ही पोले, ढोले पड़े सभी के अंग।
बदल गया है रंग संग में, बदल गया जीने का ढंग॥

◻ यह उत्तर है

सेठानी से कहा —'सेठ ने, अब देखा है इसका हाल।
पूछ रही थी मेरे से जो, आज समझलो वही सवाल॥
निन्नाणू रुपय्यों ने इनको, अब डाला है चक्कर में?
पहले खा भी लेते, अब क्या, घी खाते हैं शक्कर में?

धन एकत्रित करने की धुन, सिर पर अगर सवार हुई।
जीत नहीं हो सकती है फिर, एक बार जो हार हुई ॥

□ कथा-सार

समझ गई सेठानी अब तो, समझ गए होंगे सब आप।
धन एकत्रित करने को ही, करने पड़ते सारे पाप ॥
धन है जहां वहां तन-मन का, जीवन का सुख कभी नहीं।
"चन्दन' अपरिग्रह धारी को तो, हो सकता दुख कभी नहीं ॥
जीने की आवश्यकताएं, आसानी से होती पूर्ण।
मन की आवश्यकताओं का, कहीं नहीं बन सकता चूर्ण ॥
कल की बात सोचते लाला, पल की खबर नहीं पड़ती।
वही ढला करती है छाया, जो दिन में तो है बढ़ती ॥
निन्नाणू का फेर छोड़ कर, धारण करलो मन सन्तोष।
खाली हो जाया करते हैं, चक्रवर्त्तियों के भी कोष ॥
असंतोष से बढ़कर कोई, हो सकता सन्ताप नहीं।
'चन्दन मुनि' समझाने बैठा, क्या समझोगे आप नहीं ?

दो हजार चौबीस विक्रमी, बरनाला में चातुर्मास।
संगीतों से शिक्षा लेकर, भरो हृदय में धर्मोल्लास ॥

२०२४ विक्रम
बरनाला

२२

दलित

“दंतिल” कितना ताकत वाला,
मान गया आखिर दीवान।
दीवानों! दिल खोल देखलो,
एक समान सभी इनसान।

○ २२ ○ दन्तिल

□ समानता के स्वर

करो नहीं अपमान किसी का, छोटा है इनसान नहीं।
छोटा समझा अगर किसी को, तो क्या यह अभिमान नहीं?
"सभी बड़े हैं" ऐसा समझो, रहकर अपने-अपने स्थान।
अणुओं से ही महा स्कन्ध का, 'चन्दन' होता है निर्माण॥
भरे कलश में कर सकता है, छोटा सा कंकर भी छेद।
नोक तीर की लग जाने से, हो जाता ज्यों राधा-वेध॥
हाथी को भी मार डालती, चींटी एक अकेली ही।
महल बड़ा यदि कहलाता है, छोटी नहीं हवेली ही॥

मोती-हीरे अगर क़ीमती, तृण की भी क्या क़ीमत कम।
तृण की अगर न क़ीमत करते, यही भूल करते हैं हम॥

हीन समझना किसी व्यक्ति को, निजी हीनता बतलाता।
महानता है इसी बात में, जोड़ लिया जाये नाता॥
बड़ा दुःख पाना पड़ता है, छोटों को दुख देने से।
सुख मिल जाता अपने को भी, छोटों को सुख देने से॥
दुख देने से दुख मिलता है, सुख देने से सुख मिलता।
'चन्दन' बात समझने की है, मन खिलने से मुख खिलता॥

सुनो कहानी शिक्षा-प्रद यह, बात स्पष्ट हो जायेगी।
मैल अहं का चढ़ा हुआ यदि, यह उसको धो जायेगी॥

○ 'दन्तिल' भंगी

एक नगर में एक रह रहा, 'दन्तिल' हरिजन युवक भला
करता था धंधा जो अपनी, परंपरा से उसे मिला॥
सेवा में थी श्रद्धा जिसकी, स्वाभिमान था जिसका धन।
हीन नहीं था दीन नहीं था, हरिजन होने पर भी मन॥

बचपन से ही सेवा का व्रत, उसे बहुत ही प्यारा था।
सेवा-व्रत पर अपना तन-मन, जीवन मानो वारा था॥

□ सेवा धर्म

साहस से हो होती सेवा, सेवा करना खेल नहीं।
सिंह हरिण सम सेवा सुस्ती- का तो बिल्कुल मेल नहीं॥
निकल नहीं सकता रेती से, जैसे किंचित् तेल नहीं।
महा आलसी दुर्व्यसनी की, चढ़ती मांढे बेल नहीं॥
विषयानन्दी स्वच्छन्दो के, रहती नाक नकेल नहीं।
खाक करेंगे सेवा वे जो, संकट सकते झेल नहीं॥
नहीं पहनते वस्त्र रेशमी, मलते इत्र-फुलेल नहीं।
ऐसे सच्चे सेवक जन ही, होते हरगिज़ फेल नहीं॥
टीप-टाप के करने वाले, सेवा से कतराते हैं।
सेवा करने से तो उनके, वस्त्र मलिन हो जाते हैं॥

□ समय की पाबन्दी

राजमहल के शौचालय की, करता वही सफ़ाई था।
मुख्य सचिव का भी ऐसे ही, सेवक वह सुखदाई था॥

यथा-समय ही सूर्योदय पर, पहुंच काम पर जाता था।
काम किये बिन पूरा हरगिज़, नहीं लौट घर आता था ॥
करते-करते काम कभी जब, काफ़ी वह थक जाता था।
वहीं कहीं उपयुक्त स्थान पर, बैठ ज़रा सुस्ताता था ॥

उसकी प्यारी पत्नी भी तो, उसका हाथ बंटाती थी।
उसके साथ सुबह से ही जो, पहुंच काम पर जाती थी ॥
कहीं लगाता झाड़ू वह तो, वह भी कहीं लगाती थी।
बिखरी कोई वस्तु कहीं पर, कभी न रहने पाती थी ॥
नहीं कभी दुर्गन्ध किसी भी, नाली में से आई थी।
बड़े ध्यान से उसके द्वारा, होती पूर्ण सफ़ाई थी ॥
पूर्णतया ईमानदार जब, "बन्दा जी" बन जायेंगे।
किये हुए अपने कामों में ही, तब क्यों दूषण पाएंगे ॥
कामचोर के कामों में ही, कमियां बाकी रहती हैं।
खुशी हवा हो जाती है सब, ग़मियां बाकी रहती हैं ॥

▢ 'दन्तिल' की शोभा

उसके काम-काज से लेकिन, सारे ही खुश रहते थे।
नहीं निकाला दोष कभी कुछ, सभी वाहवा ! कहते थे ॥

कहते थे सब-सेवक सच्चा, हो तो कोई ऐसा हो।
बड़ा साहसी दिल का अच्छा, हो तो कोई ऐसा हो ।।
किसी काम में कभी न कच्चा, हो तो कोई ऐसा हो।
मात-पिता का प्यारा बच्चा, हो तो कोई ऐसा हो ।।

शोभा पाने वाला हीं तो, बेटा प्यारा होता है।
मात-पिता के नैनों का वह, तेज सितारा होता है।।

▭ विवाह का अवसर

मुख्य सचिव अब मुख्य पुत्र का, विधि से व्याह रचाते हैं।
रोगन-रंग-कली से सारा, अपना भवन सजाते हैं।।
तोरण-द्वार अनेकों अद्‌भुत, सुन्दर-सुन्दर खड़े किये।
रंग-विरंगे फूल-झण्डियों, द्वारा मोहक बड़े किये ।।
लाल वस्त्र से लिपटे मंगल- कलश कहीं पर सजते थे।
कहीं कनातें ताने तम्बू, वाद्य अनेकों बजते थे ।।
गीत मांगलिक सधवाओं के, सदा गूंजते रहते थे।
एक तरह से मन्त्री के घर, निर्झर सुख के बहते थे ।।
चहल-पहल चहुं ओर हो रही, महल बना था स्वर्ग सदन।
टहल रहा था अहलकार-दल, दहल रहा था गठिया-मन ।।

पूर्ण व्यवस्था देख-देख कर, विस्मित रिश्तेदार हुए।
जो भी आए हर्षित-गदगद, सारे ही नर-नार हुए॥

नये बनाए छत्र-चंवर थे, एक बनाई ध्वजा नई।
ऐसे ही उपकरण अनेकों, और बनाए गए कई॥
व्यंजन विविध बनाए जाते, हलवा-पूरी पूड़े-खीर।
खाने और खिलाने में थे, तत्पर साथी बड़े वज़ीर॥
नित्य सैंकड़ों और हज़ारों, नगर निवासी खाते थे।
सब का समुचित स्वागत करके, मुख्य सचिव हरषाते थे॥

□ 'दंतिल' का काम

कार्य-दिनों में 'दंतिल' भी कम, सावधान था नहीं अरे!
पत्तल और सकोरे जूठे, पड़ें रहें क्यों कहीं अरे!
इधर-उधर जो बिखरे दिखते, फ़ौरन उन्हें उठाता वह।
सेवा में अपनी तत्परता, पूर्णतया दिखलाता वह॥
कभी निकम्मी वस्तु कहीं पर, रहने देता नहीं पड़ी।
पता नहीं क्यों करके ऐसा, होती उसको खुशी बड़ी॥
सावधान हो इधर-उधर वह, दौड़ा फिरता घड़ी-घड़ी।
कुत्ते बिल्ली कौओं पर भी, रखता अपनी नज़र कड़ी॥

□ एक समय

एक दिवस कुछ अधिकारी गण, भोजन करने आये थे।
बड़े मान-सम्मान हर्ष से, सभी गये बिठलाये थे ॥
एक ओर की पंक्ति कभी की, चली गई थी खा करके।
नई पंक्ति वाले जन बैठे, अभी-अभी थे आ करके ॥
तभी सफ़ाई करने 'दन्तिल, दौड़ा-दौड़ा आता है।
बिना झिझक-संकोच काम में, आते ही जुट जाता है ॥
पड़ी नज़र जो मन्त्री जी की, गिरे ग़जब के गोले हैं।
लगे ज़ोर से उसे डांटने, अहंकार से बोले हैं ॥

□ दंतिल' का अपमान

है यह कौन अछूत यहां पर ! भीतर कैसे घुस आया ?
समझ लिया क्या ? उसने मेरा, ख़ौफ़ नहीं कुछ भी लाया ॥
अभी भला सरदार लोग ये, खाना खा कब पाए हैं।
पहले ही जूठन लेने को, इनके मन ललचाए हैं ॥
नहीं नीच को समझ ज़रा भी, और तमीज़-विवेक नहीं।
खाने को जो बैठे उनको, बिल्कुल सकता देख नहीं ॥
क्या न आंख में सुरमा तू रे ! सोते समय लगाता है।
ठीक दुपहरी में भी तुझको, ठीक नज़र नहिं आता है ॥

भाग यहां से जल्दी वरना, डण्डे मारे जायेंगे !
होश-हवास तभी हो तेरे, ठीक ठिकाने आयेंगे ॥

▭ स्वाभिमान पर चोट

डांट-डपट यों 'दन्तिल' पाकर, नैनों में जल लाता है।
मुख लटका कर उलटे पांवों, लौट वहां से जाता है ॥
मन्त्री जी का तर्जन-गर्जन, मन को बहुत कचोट गया।
बहुत समय तक हरी रहे जो, ऐसी कर कुछ चोट गया ॥
बना न कुछ भी करते-धरते, दशा होगई विकल बड़ी।
आंखों में भर आए आंसू, लम्बी आहें निकल पड़ी ॥

▭ क्या इनसान नहीं ?

क्या कर्त्तव्य-परायणता का, पुरस्कार है यहां यहीं ?
डांट-डपट दिखलाना ऐसे, तिरस्कार है यहां यहीं ?
अन्त्यज हूं तो इससे क्या मैं, नेक एक इनसान नहीं ?
अन्त्यज हूं तो सज्जनता से, क्या मेरी पहचान नहीं ?
अन्त्यज हूं तो इससे मेरा, क्या कोई ईमान नहीं ?
अन्त्यज हूं तो फिर क्या मेरे, सिर पर भी भगवान नहीं ?

खेला नहीं खेलने का भी, जूए का है ध्यान नहीं।
खाऊं मांस सुरा पीऊं जो, ऐसा भी नादान नहीं ॥
पर नारी की ओर ताकना, ऐसी खोटी बान नहीं।
दोष अगर है मेरा कोई, बहुत बड़ा श्रीमान नहीं ॥
आज संभाली मन्त्री जी ने, अपनी तभी जबान नहीं।
कुत्ते का भी कोई करता, ऐसे तो अपमान नहीं ॥

□ कुत्ते का सम्मान

मन को मारे ज्यों ही उसने, आगे कदम बढ़ाया है।
'मोती' जिसको थे सब कहते, श्वान नजर वह आया है ॥
बिछा हुआ था नीचे गद्दा, आगे प्याला दूध भरा।
अधिकारी गण बैठा उससे, करता था आमोद जरा ॥
पूंछ खींचता कोई, कोई- चुटकी लेता कानों की।
लेकर कोई उसे गोद में, तान छेड़ता गानों की ॥
नील गगन में चमके चन्दा, मंगल का या तारा है।
प्राणों से भी बढकर समझो, हमको मोती प्यारा है ॥

कोई उसे खिलाने चूरी, देसी घी की लाया था।
भरे पेट मोती ने उसको, मुख भी नहीं लगाया था ॥

□ घाव पर नमक

दृश्य देख यह दौड़ा 'दन्तिल,' क्षण भर को जा ठहरा था।
उसके मन का घाव और भी, हाय ! हो गया गहरा था ॥
"समझ रहा था अपने को मैं, सेवा-धर्म प्रवीण हुआ।
आज गर्व वह मेरे मन का, क्षण में तेरह-तीन हुआ ॥
बनी अंगारा उसकी आंखें, लगा काटने होठों को।
रह-रह करता यांद विष-मयी, उस वाणी की चोटों को ॥
दुनिया समझ रही है कितना, मूर्ख नीच अति छोटों को।
नहीं देखती अपने अन्तर- की वह मन भर खोटों को ॥

लगा सोचने—"वैभव पाकर, मानव पशु बन जाता है।
अपने उसे अहं के आगे, नजर नहीं कुछ आता है ॥
अपने को ही सब से आगे, सब से ऊंचा रखता है।
अपने से अतिरिक्त सभी को, तुच्छ नगण्य समझता है ॥
लेकिन कहो नगण्य किसी का, क्या कुछ खाता-पीता है।
वह भी इस दुनिया में अपने, स्वाभिमान पर जीता है ॥

□ अधिकार बनाम मदिरा

मुख्य सचिव जी ने जो पाये, अगर अरे ! अधिकार बड़े।
उन्नति करें राज्य की निश-दिन, करके सदा सुधार बड़े ॥

पड़ हुए बदकिस्मत कितने, दीन-दुखी लाचार बड़े ।
नहीं लगाता उनकी ख़ातिर, क्यों यह सेवादार बड़े ॥
और अनेकों करने वाले, कामों को बिसराता है ।
अंहकार में चूर सचिव क्यों, श्वान सदृश गुर्राता है ?
कुचले मान किसी का वह जो, है उसको अधिकार कहां ?
आदर-मान उसी को प्यारा, जो रहता इनसान यहां ॥

अगर काम मैं मन्त्री जी के, घर का निश-दिन करता हूं ।
अर्थ न इसका, मान उन्हीं के, घर पर गिरवी धरता हूं ॥
यौवन की अल्हड़ता ज्यों है, दुश्मन नेक विचारों की ।
मानव को कर देती अन्धा, मादकता अधिकारों की ॥

▭ प्रतिशोध की ज्वाला

जब अपमानित दिल में जलती, बदला लेने की ज्वाला ।
हो जाता है दग्ध उसी में, तिरस्कार करने वाला ॥
मैं वह 'दंतिल' हूं जो दिन को, तारे उन्हें दिखा दूंगा ।
याद हमेशा किया करेंगे, नाकों चने चबा दूंगा ॥
साध निशाना किसी दिवस मैं, ऐसा तीर चला दूंगा ।
मछली जैसे तड़प उठेंगे, ऐसा व्यक्ति बना दूंगा ॥

मांग न पायेंगे फिर पानी, जिसदम डंक लगा दूंगा।
मुझको समझ रखा क्या उसने, नानी याद दिला दूंगा।।
भाव दाल-आटे वाला सब, क्षण भर में बतला दूंगा।
नाम नहीं तो सदा-सदा को, अपना मैं बदला दूंगा।।

इन्हीं विचारों में वह डूबा, अपने घर को आया है।
बोला नहीं किसी से कुछ भी, ठीक न पीया-खाया है।।
ऐसी ही बेचैनी से फिर, सारी रात बिताई है।
लेता रहा करवटें लेकिन, नींद न क्षण भर आई है।।

□ मनोवेदना एक बीमारी

चैन नहीं लेने देती है, जो बीमारी हो तन को।
चैन कहां से होगा बोलो, जब बीमारी हो मन को।।
मान और अपमान अतः जो, समता से सह लेते हैं।
महापुरुष वे बनकर 'चन्दन', सदा सुखी रह लेते हैं।।
अन्य त्याग सब सरल समझलो, मान-त्याग पर सरल नहीं।
अमृत सारे पी लेते हैं, पीता कोई गरल नहीं।।
जोर-शोर से गूंज रहा था, दुनिया में डंका जिनका।
रावण, कौरव, कंस किसी को, चैन मिला क्या पल-छिन का;

छिपी हुई क्या कहो किसी से, उनकी गर्व-कहानी है ?
बेचैनी को चैन समझता, जो होता अज्ञानी है ॥
विडम्बना है नाम इसी का, मृग-तृष्णा ये सुख की है ।
छिपी हुई विष-बेल भयानक, इस में गहरे दुख की है ॥
मन में मासा मान न जिसके, रखता झूठी शान नहीं ।
वही देवता है धरती का, साधारण इनसान नहीं ॥

देव न बन पाये मन्त्री जब, 'दन्तिल' कैसे बन पाता ।
रह-रह करके गुस्सा उसको, सचिव महोदय पर आता ॥
नींद न आने पाई उसको, आखिर प्रातःकाल हुआ ।
उठ कर अपने काम-काज पर, तत्पर 'चन्दनलाल' हुआ ॥

☐ झरोखे के नीचे

झाड़ू और टोकरी लेकर, राजभवन में जाता है ।
स्वयं सफ़ाई करता 'दन्तिल' पत्नी से करवाता है ।
खड़ा भवन की खिड़की में नृप, नजर अचानक आता है ।
भवन-भित्ति के निकट बैठ झट, 'दन्तिल' अब सुस्ताता है ॥
झाड़ और टोकरी अपनी, अपने निकट टिकाता है ।
नहीं नृपति ने देखा मुझको, ऐसा भाव दिखाता है ॥

बैठा देखा जब 'दन्तिल' को, उसकी पत्नी आई पास।
पास तभी बैठा जाता है, करनी हो जब बातें ख़ास॥
क्षण भर मौन होगये दोनों, मुख-मुद्रा गम्भीर बनी।
सुनने और सुनाने वाली, वहुत रम्य तस्वीर बनी॥
उत्सुकता से सुनना बातें, और सुनाना कर लटके।
सुना-सुनाया वह कहलाता, जिसमें यह दुनिया अटके॥

८ 'दन्तिल बोला

निज पत्नी से बोला 'दन्तिल', प्रिये ! सुनो इक बात कहूं।
कहूं नहीं क्यों मैं तेरे से, तेरे ही जब साथ रहूं॥
कही नहीं जाये औरों से, औरों का विश्वास नहीं।
हो विश्वास कहां से जब हम, रहते भी तो पास नहीं॥
मैं जानूं या तू जाने बस, जाने नहीं तीसरा जन।
इसीलिये तुझको सब बातें, कहने का हो जाता मन॥

बुद्धू है अपना यह राजा, राज्य चलाना क्या जाने।
सचिव-भरोसे रहने वाला, फौज-खज़ाना क्या जाने॥
जिस ग़फ़लत में लुटती दुनिया, उसे हटाना क्या जाने।
रतन-जवाहर जड़े ताज की, लाज बचाना क्या जाने॥
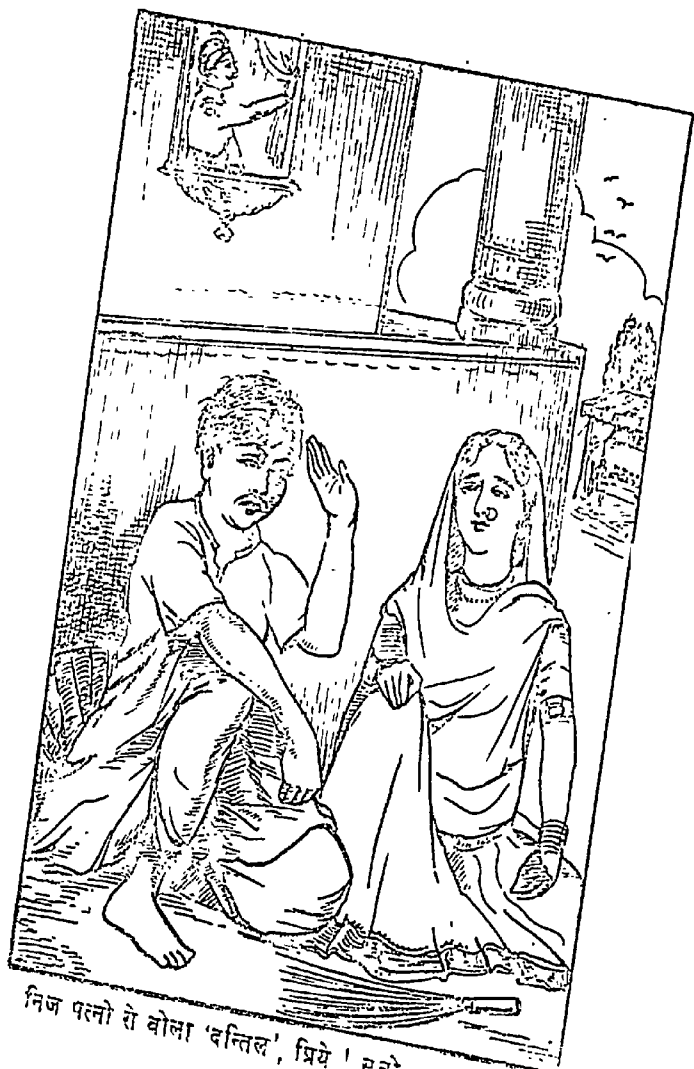
निज पत्नी से बोला 'दन्तिल', प्रिये ! सुनो इक बात कहूं।

कौन अहित वा हित करता है, निज बेगाना क्या जाने
क्या होती है दूर-दर्शिता, वह दीवाना क्या जाने ॥
गुप्तचरों से भले-बुरे का, भेद लगाना क्या जाने।
रंग-राग का बना हुआ है, जो परवाना क्या जाने ॥

○रुकिये-रुकिये

'दन्तिल' की वह पत्नी फ़ौरन, टोक बीच में देती है।
पहीं बोलने पाया आगे, रोक बीच में लेती है ॥

बस-बस रहने दो वह बोली, ज़रा होश से बात करो।
देव तुल्य हैं भूप हमारे, नहीं जोश में बात करो ॥
परम उदार हृदय का शासक, जैसा हमने पाया है।
भूतकाल में ऐसा कोई, सुनने में क्या आया है ?
चोर उचक्के गठकतरों का, जड़ से किया सफ़ाया है।
साहूकारों का सन्तों का, भारी मान बढ़ाया है ॥
नहीं नज़र में इसके कोई, अपना और पराया है।
एकसार है सारी जनता, तू-मैं भेद भुलाया है ॥
मिलता है इनसाफ़ सभी को, क्षीर-नीर बस है छनता।
घूस न खाते हैं अधिकारी, किसको देगी यह जनता ॥

जनता का जो करते शोषण, पोषण करते अपनों का।
निन्द्य-जीव हैं ऐसे शासक, घर जो भरते अपनों का ॥
जाते हैं वे नरक लोक में, मर करके पछताते हैं।
लाखों-अरबों वर्षों तक वेः चैन न पल भर पाते हैं ॥
ऐसी बात यहां पर लेकिन, देती नहीं दिखाई है।
भेद-भाव के बिना सभी की, होती सदा भलाई है ॥
जन-सेवी है कुशल प्रशासक, वीर-बहादुर भारी है !
यशोगान सम्मान उन्हींका, गाती दुनिया सारी है ॥

आज कहे सो कहे शब्द ये, नहीं कभी फिर कहना जी !
रहलूंगी मैं कहीं अकेली, धोखे में मत रहना जी !
राजा होता पिता प्रजा का, प्रजा पुत्र कहलाती है।
मुझ से यों बदनामी झूठी, नृप की सही न जाती है ॥

□ सुन तो ले!

बोला 'दन्तिल' पहले मेरा, क़िस्सा सारा सुन लेती।
गुण-अवगुण फिर उसमें से तू, मन चाहे सो चुन लेती ॥
न्याय नीति प्रिय नृपति हमारे, इससे कब इनकारी हूं।
उनके परम उदार हृदय का, तुम से अधिक पुजारी हूं ॥

केवल इतनी बातों से तो, चल सकता है काम नहीं।
छल-बल का है आज ज़माना, नृप में छल का नाम नहीं ॥
भला भूप यों भोलेपन से, कब तक भूप कहायेगा ?
तुम्हें दिखा दूंगा जल्दी ही, पृथ्वी-पति पछतायेगा ॥

छोड़ सभी कुछ मन्त्री जी पर, बैठा होकर आप नचीत।
कर लेना विश्वास किसी का, राजनीति की रही न रीत ॥
मन्त्री अपने अधिकारों का, पूरा लाभ उठायेगा।
राज्य-भ्रष्ट कर भोले नृप को, भूप स्वयं बन जायेगा ॥
क्या न अनादि काल से ऐसा, जग में होता आया है ?
जिसका दाव चला उसने ही, अपना काम जमाया है ॥
'श्रेणिक' नृप को श्रेणिक-सुत ने, नहीं जेल में डाला क्या ?
राजा बनने को फिर विष का, पिला न देते प्याला क्या ?
'उग्रसेन' को 'कंस' नृपति ने, पिंजरे में क्यों बन्द किया ?
राज्य छीनने का भूपों ने, क्या न परस्पर द्वंद्व किया ?
ज़ोरू ज़मीं और ज़र देखो, ज़ोरावर के हो जाते।
बुद्धू और आलसी राजा, इन तीनों को खो जाते ॥

▭ मन्त्री की चाल

दुष्ट सचिव यह नई-नई नित, चालें चलता जाता है।
राजा का विश्वास-पात्र बन, उनको छलता जाता है ॥

ऊपर से रहता है राज़ी, अन्दर जलता जाता है।
सूखा दीख रहा ऊपर से, अन्दर फलता जाता है॥
जिसके रोटी-टुकड़े खाकर, प्रतिदिन पलता जाता है।
मूंग उसीकी छाती पर अब, निर्दय दलता जाता है॥
ताज-तख्त पा लेने को अब, खूब मचलता जाता है।
मगर महा मक्कार सचिव कुछ, साथ संभलता जाता है॥
राजा जी की क़िस्मत का अब, सूरज ढलता जाता है।
लगता है नृप के हाथों से, राज्य निकलता जाता है॥
खोट छिपाने ओट बनाली, सुत का व्याह रचाने की।
करता जाता है तैयारी, ताज-तख्त हथियाने की॥

बहुत दिनों से कुछ अधिकारी, मिल कर माल उड़ाते हैं।
उसके संकेतों पर सारे, जाल रचाते जाते हैं॥

बड़ी सावधानी से अपना, कपट-जाल फैलाया है।
ऐसी कूटनीति का वेत्ता, नहीं नजर में आया है॥
किसी एक का पद कर ऊंचा, भारी मान बढ़ाया है।
किसी एक को दिखा प्रलोभन, अपने साथ मिलाया है॥
शस्त्र संवारे जाते छिपकर, किसने नहीं लखाये हैं?
छत्र चंवर ध्वज बाने भी तो, उसने विविध बनाये हैं॥

पड़ी ज़रूरत अगर समय पर, काम सभी वे आयेंगे।
राज्य-क्रान्ति कर मन्त्री को ही, अपना भूप बनाएंगे ॥

समझदार के लिये इशारा- काफ़ी, फिर क्या बतलाना।
बना बहाना पुत्र-व्याह का, राज्य चाहता हथियाना ॥
कूटनीति वालों के कोई, भेद कभी क्या मिलते हैं?
घुसते हैं किस बिल में ये किस, बिल से और निकलते हैं ॥

□ जीभ पर ताला

पत्नी बोली—'माफ़ करो मैं- पांव तुम्हारे पड़ती हूँ।
सुनकर बातें आज आपकी, मैं तो भारी डरती हूँ ॥
राजघराने की ये बातें, मुख से नहीं निकालो जी!
व्यर्थ अनर्थ न हो जाए बस, अपनी जीभ संभालो जी!
भले पता है सारा फिर भी, मुंह पर मुहर लगालो जी!
अपने को क्या लेना-देना, झाड़ उठो उठालो जी!
कोई भी हो चाहे राजा, हमको राज नहीं लेना।
धन-दौलत पद ऊंचा कोई, हमको ताज नहीं लेना ॥
बातें अगर किसी ने सुनलीं, नाहक मारे जायेंगे।
महल-सफ़ाई के भी पद से, शीघ्र उतारे जायेंगे ॥

खाने पीने रहने के सब, छूट सहारे जायेंगे।
रोने-धोने को हम दोनों, एक किनारे जायेंगे॥

राजा तो यों होगा गुस्से, निन्दा मेरी भारी की।
और जलेगा मन्त्री ऐसे, खोल पोल जब सारी दी॥
भला इसी में अपना समझो, मुख से कुछ भी नहीं कहें।
क्या-क्या होता है बस आगे, खड़े देखते यहीं रहें॥

▭ दीवार भी सुनती है

"है डरपोक बड़ो ही तू तो, बोला तत्क्षण 'दन्तिल' यों।
चिड़िया के छोटे बच्चे से, तेरा छोटा सा दिल क्यों?
तू है मैं हूं और तीसरा, सुनने वाला कौन यहां?
व्यर्थ बनें भयभीत, अरी! क्यों- करलें धारण मौन यहां?

नज़र न चाहे आये कोई, जमांदारनी कहती है।
दीवारों के कान लगाकर, दुनिया सुनती रहती है॥
समय नहीं लगता किंचित, बात फूटते दुनिया में।
पराधीन हो जाते मुख से, वचन छूटते दुनिया में॥
प्राण देह से नीर नैन से, मुख से जो निकली वाणी।
तीनों हाथ नहीं आते हैं, चेष्टा लाख करे प्राणी॥

नार पराई यथा बुरी है, बात पराई तथा बुरी।
अपने तक ही सीमित रहना, 'चन्दन' सुख की सत्य धुरी॥
मज़दूरों के लिये सदा ही, मौन उचित बतलाया है।
बातें करे वही जिसने कुछ, ऊंचा सा पद पाया है॥

उठ करके दोनों लगे, करने अपना काम।
काम बिना रहते नहीं, चाम और आराम॥

□ राजा का चिन्तन

हरिजन जोड़ी की ये बातें, राजा जी सुन पाते हैं।
लगा उबलने क्रोध हृदय में, नेत्र लाल हो जाते हैं॥
भावी चिन्ताओं ने नृप का, दिया कलेजा अरे! कचोट।
लगे सोचने—'मन्त्री मन में, क्या रखता है इतनी खोट?
सचिव महोदय ने तो मेरा, हुकम हमेश बजाया है।
बहता देख पसीना मेरा, अपना खून बहाया है॥
तो क्या नीति-प्रीति सब झूठी, अब तक रहा दिखाता है?
अजब पहेली उलझ गई कुछ, नहीं समझ में आता है॥
राष्ट्र-भावना मन्त्री जी की, झूठी है या सच्ची है?
कही बात 'दन्तिल' ने जो वह, पक्की हैं या कच्ची है?

बन कर भोला सचमुच ही क्या, अब तक मैं था भूल रहा ?
चढ़ कर संशय के झूले में, राजा का मन झूल रहा ॥

▭ गुप्तचरों को आदेश

आखिर अपने गुप्तचरों को, अपने निकट बुलाया है।
जांच और पड़ताल सही सब, करने को समझाया है॥
जाओ पता लगावो सारा, क्या यह गड़बड़झाला है।
बात गलत है या वास्तव में, कहीं दाल में काला है ?
सचिव-पुत्र का पाणिग्रहण भी, आया अजब निराला है।
तुम्हें कहूं क्या कितना मुझको, शशोपंज में डाला है॥
चैन बड़ा था, पड़ा आज क्यों, चिन्ताओं से पाला है।
देखा था सन्ताप नहीं कुछ, जब से होश संभाला है॥
सिवा आपके नहीं दूसरा, काम बनाने वाला है।
शान्त बनादो उसे जली जो, मन में संशय-ज्वाला है॥
अतः लगावो देर नहीं तुम, शीघ्र रहस्य ले आओ जी !
और बात की खाल खींच कर, सत्य स्थिति बतलाओ जी !

हाथ जोड़कर गुप्तचरों ने, कहा—'अभी हम जाते हैं।
गुप्त रूप से हाल वहां के, देख सभी हम आते हैं॥

रूप बदल कर पहुंच गए सब, देरी नहीं लगाई है।
और वहां से वापस आकर, यह हालत बतलाई है।।

□ बात यह है

संचिव महोदय के घर से ही, अभी-अभी हम आते हैं।
संदेहास्पद हाल वहां का, देख सभी चकराते हैं।।
गुप्त मन्त्रणा आदि ज़रा भी, नहीं कान में आई है।
बतलायें जो हाल वहां का, हमको दिया दिखाई है।।
देखे हैं हथियार संवरते, छत्र-चंवर भी नये बने।
अधिकारी ही नहीं वहां तो, माल उड़ाते बहुत जने।।
छल से बल से जैसा भी बस, काम बनाता जाता है।
वहां दाल में काला-काला, नज़र हमें कुछ आता है।।
किसी पुरुष ने खूब खिलाकर, सुन्दर बछड़ा पाला था।
सींग आगये तब स्वामी को, उलटा पकड़ उछाला था।।
वही कहावत मन्त्री जो पर, सोलह आने घटती है।
पेच लड़ाना जिसे न आता, उसकी कन्नी कटती है।।

□ कारावास में

'दन्तिल' से जो सुनी कहानी, गुप्तचरों ने वही कही।
राजा ने अब मानलिया है, वास्तव में है बात सही।।

सचिव महोदय जी के मन में, भारी बेईमानी है।
छान-बीन के द्वारा मैंने, बात सत्य यह जानी है॥
अब तो नहीं नृपति ने कुछ भी, सोचा देखा भाला है।
डाल सचिव को कारागृह में, लगवाया बस ताला है॥
हवा होगई सारी खुशियां, एक तरह सिर गाज गिरी।
धरी रह गई शादी सुत की, मुख पर ज़रदी आज फिरी॥

□ कारण की खोज

लगा सोचने मन्त्री मन से, मैंने नहीं बुराई की।
ध्यान रखा था सारों का हो, जो भी बनी भलाई की॥
जीवन में भी दुश्मन कोई, मैंने नहीं बनाया है।
फिर क्यों मेरे साथ किसी ने, ऐसा ज़ुल्म कमाया है॥

अपने प्रतिस्पर्धी लोगों पर, नज़र एक दौड़ाता है।
ऐसा लेकिन कोई भी नर, नहीं ध्यान में आता है॥
बड़ी देर तक दूर-दूर तक, अपनी बुद्धि लड़ाई है।
'दन्तिल' को दी गई डांट वह, याद अन्त में आई है॥
कौंध गई चपला-सी दिल में, दिल से पर्दा दूर हुआ।
करामात है उसकी सारी, उससे सभी फ़ितूर हुआ॥

उसी समय अपने प्रिय सुत को, मिलने वहीं बुलाया है।
आद्योपान्त खोल कर किस्सा, विधि से उसे सुनाया है॥

और नहीं है कोई बेटे! अपना दुश्मन इस जग में।
वैरी वही वही है कांटा, आज चुभा आकर पग में॥
मैंने डांट लगाई उस दिन, उसका भोगा यह परिणाम।
उसको राज़ी करने का ही, करना है अपने को काम॥
मधुर वचन से विनय लोभ से, उस पर क़ाबू करना है।
नीति-रीति की नौका लेकर, हमको पार उतरना है॥
जिसने काम बिगाड़ा वह ही, अपना काम सुधारेगा।
धारेगा जो क्षण भरमें ही, सारी बात संवारेगा॥
उलझन को सुलझाने की बस, यही सरल-सी सूरत है।
बड़ा वही होता है समझो, जिसकी जहां ज़रूरत है॥
जाओ, देर लगावो मत अब, फ़ौरन काम बनावो तुम।
बुद्धिमान हो आज बुद्धि का, चमत्कार दिखलावो तुम॥

○ अभी लीजिए

सविनय कहा सचिव से सुत ने, चिन्ता दूर हटाओ जी!
बनता है अब काम किस तरह, यही देखते जाओ जी!

गुत्थी का जब सिरा मिल गया, कठिन उसे सुलझाना क्या ?
'दंतिल' जैसे सेवक जन पर, मुश्किल काबू पाना क्या ॥
नहीं पता था जब तक इसका, तब तक ही कठिनाई थी।
इसकी तो हैं पूज्य पिता जो ! बिल्कुल सरल दवाई थी ॥
अभी मना करके 'दंतिल' को, अपना काम बनाता हूं।
ज़रा देखना जादूगर पर, जादू एक चालाता हूं ॥

☐ मनाने का मार्ग

ऐसा कहकर मन्त्री-सुत वह, अपने घर पर आता है।
मेवों से मिष्टान्नों से झट, थाल अनेक सजाता है ॥
ले पहुँचा 'दंतिल' के घर पर, खुशियां बहुत दिखाई हैं।
'दंतिल' ने सोचा--असवारी, आज इधर क्यों आई है ?
करने लगा प्रशंसा अपनी- प्रतिभा की वह मन ही मन।
जिसके द्वारा मेरा सारा, बिगड़ा काम गया है बन ॥

☐ क्या सेवा है ?

मन्त्री-सुत का स्वागत करके, छल से वचन सुनाया है।
सचिव-सुपुत्र ! सुनाएं कैसे, इतना कष्ट उठाया है ?

मेरे जैसे अधम पुरुष के, घर पर कैसे आये है ?
देख आपको आज यहां हम, फूले नहीं समाये हैं ।।
जागे भाग तलैया के ज्यों, राजहंस के आने से ।
हुई पवित्र झौंपड़ी मेरी, पावन चरण टिकाने से ।।
मेरे लायक सेवा हो जो, मेरे मालिक ! बतलाओ ।
झिझक और संकोच यहां पर, किसी किस्म का मत लाओ ।।

८ मुंह मीठा करो

'दंतिल' की इन बातों से वह, मन ही मन शर्माता है ।
दिल का दर्द दबाकर लेकिन, धीरज से बतलाता है ।।
अपना जो सम्बन्ध आपसे, चला देर से आता है ।
चाहे भूले सब जग मुझसे, नहीं भुलाया जाता है ।।
मेरी शादी में आए थे, राज-नगर के सब परिवार ।
मुंह मीठा करने का उसमें, तेरा भी तो है अधिकार ।।
औरों के घर गए हुए हैं, नौकर-चाकर देने को ।
तेरे घर पर स्वयं आ गया, थाल उठाकर देने को ।।
तेरी शुभ सेवाओं को हम तो, कैसे भला भुलायेंगे ।
सेवा से मेवा मिलता है, उक्ति सार्थ बतलायेंगे ।।

▭ परिवर्तन का परिणाम

मधुर-मधुर जब सचिव-पुत्र की, पड़ी कान में वाणी है।
'दंतिल'-दिल भी पिघल-पिघल कर, तभी हो गया पानी है॥
स्नेह सने बचनों से उसके, मन को अनुपम शान्ति मिली।
नहीं रोष अत्र शेष रहा है, है मुख पर मुस्कान खिली॥

बोला—किसी बात की कोई, आप न शंका लेश करें।
दास आपका ही हूं मैं तो, जो चाहे आदेश करें॥
जो भी आज्ञा होगी स्वामिन्! उसे सहर्ष बजाऊंगा।
मेरे योग्य बतावो सेवा, मेवा यह फिर खाऊंगा॥
मान बढ़ाया जिसने इतना, उसका मान बढ़ाऊंगा।
सच्चे स्वामी का मैं सच्चा, सेवक बन दिखलाऊंगा॥

प्रेम-प्रभाव बड़ा है जादू, जो सब पर छा जाता है।
मन्त्री-सुत के चरणों में झट, वह 'दन्तिल' आ जाता है॥

▭ जाल समेटो

वाणी थी या 'दंतिल' ने ये, अमृत मुख में घोला था।
अश्रु प्रपूरित नयनों से तब, सचिव-तनय यों बोला था॥

बहुत हो गया दंतिल ! दुख में- और न अधिक लपेटो तुम।
यही अभी तो सेवा है बस, अपना जाल समेटो तुम ॥
बोल न पाया कुछ भी आगे, उसका है रुंध गया गला।
पिघला 'दंतिल' सोचा उसने; निश्चित इसका करूं भला ॥

□ काम हो जायेगा

हाथ जोड़कर बोला–'मालिक ! और न कोई काम करें।
विनय यही है चरण कमल में, जायें घर आराम करें ॥
कल दोपहरी से पहले ही, सभी कष्ट कट जायेंगे।
सचिव महोदय को अपने घर, हंसते-हंसते पायेंगे ॥

मिली त्रिलोकी मन्त्री-सुत को, 'दंतिल जी' की वाणी से।
आग लगाने वाले ने ही, उसे बुझाया पानी से ॥
मन्त्री-सुत तब गया वहां से, मन का बोझ बना हलका।
लगा सोचने मन ही मन में, जल्दी आये दिन कल का ॥

□ दिन बड़ा छोटा

खुशियों में तो आंख झपकते, बीत दिवस बस जाता है।
पूरा होने में पर देखो, देरी वही लगाता है ॥

ऐसे ही उस रात ज़रा भी, नींद न आने पाई है।
गिन-गिन करके तारे उसनें, सारी रात बिताई है।।
अन्तर है क्या सुख में-दुख में, आज चित्त ने जाना है।
सुख की निस्बत दुख के दिन का, कितना कठिन बिताना है।।

सुख का वर्ष बने यदि पल तो, दुख का पल फिर वर्ष बने।
सुख दुख एक समान जिसे हों, पुरुष वही आदर्श बने।।
छोटे-बड़े सभी प्राणी हैं, इसीलिये सुख-अभिलाषी।
चाहे हैं वे गूंगे-बहरे, चाहे हैं भाषा-भाषी।।
ज्यों डरते नागों से चूहे, त्यों दुख से सब डरते हैं।
फिर भी है आश्चर्य ! लोग क्यों ! काम दुखों के करते हैं।।

□ चिन्तन-सुधा

अगर नहीं दुख प्यारा फिर क्यों, देते हैं दुख औरों को ?
बनकर धर्म निशानी प्राणी, देते क्या सुख औरों को ?
सुख को देने वाले ही सुख, बदले में बस पायेंगे।
देंगे दुख जो औरों को वे, बैठे अश्रु बहायेंगे।।
कभी आज तक इस दुनियां में, ऐसा व्यक्ति नहीं पाया।
विष पी करके अमर बने जो, नहीं दीखती वह काया।।

कर्म प्रकृति के नियमों को क्या, कोई उलटा सकता है ?
देकरके दुख औरों को क्या, शान्ति कभी पा सकता है ?
बुद्धिमान गुणवान पुरुष ही, इस पर ध्यान लगायेंगे।
'चन्दन मुनि' से शिक्षा लेकर, जो सत्पथ अपनायेंगे।।

□ बात का मोड़

अगले दिन जब हुआ सवेरा, 'दंतिल'-मन मुस्काया है।
पत्नी के सह राजभवन में, आज सहर्ष सिधाया है।।
कहने को तो झाड़ू आदिक, वहां लगाता जाता था।
पुनः-पुनः पर ऊपर को वह, आज लखाता जाता था।।
प्रातः से ही भूप प्रतीक्षा, "दंतिल" की ही करते थे।
देख-देख कर खिड़की में से, लम्बी आहें भरते थे।।
सुनने को उत्सुक थे अब क्या, देखें 'दंतिल' कहता है।
मेरी कल की कारगुजारी- से खुश कितना रहता है।।
आया देख उसे, कुछ छिपकर, खिड़की में नृप खड़े हुए।
लगता था पर शशोपंज में, आज खूब हैं पड़े हुए।।

□ पति-पत्नी की बात

उधर खड़े खिड़की में ज्यों ही, 'दंतिल' उन्हें लखाता है।
लेकरके मिस सुस्ताने का, बैठ वहीं पर जाता है।।

बातें करने जिसदम प्यारी, पत्नी के वह साथ लगा।
कान गड़ाकर सुनने का मन- भाव नृपति के चित जगा॥

बोला 'दंतिल'—जहा अकल के, राजा अच्छे होते हैं।
तुझे कहूं क्या कानों के वे, कितने कच्चे होते हैं॥
अपनी मति से अपनी गति से, नहीं काम वे लेते हैं।
जैसे कान भरे जायें बस, वैसा ही कर देते हैं॥
पितृ-तुल्य उस मन्त्री पर क्या, तरस ज़रा भी आया है?
निष्कारण ही हाय! देख लो! कारा-गृह पहुंचाया है!!

○ मन्त्री की महिमा

नहीं प्रजा की नहीं नृपति की, उसने कभी बुराई की।
जितनी भी हो सकी हमेशा, केवल एक भलाई की॥
उस जैसा तो राज-भक्त नर, कहीं न देखा—भाला है।
'चन्दन' मन्त्री क्या है सचमुच, मुक्ताओं की माला है॥
दुश्मन नहीं बनाया जिसने, अब तक एक ज़माने में।
आता है आनन्द उसे तो, गीत प्रीत के गाने में॥
छोटे-बड़े सभी को जिससे, उचित स्नेह सत्कार मिला।
पुरस्कार उस सज्जनता का, देखो भली प्रकार मिला?

जिसने राज्योन्नति में अपना, जीवन सदा बिताया है।
क्या उसका या-किसी जन्म के, पापों का फल पाया है?

○ बड़ी अजीब बात है!

तभी तुनक कर जमादारनी, बोली उस से झट-पट है।
तुम्हें सूझती आये दिन क्यों, ऐसी अटपट खटपट है?
पूरब में बहते हो अथवा, पश्चिम दिश में बहते हो?
जब देखो तब राजा जी की, निन्दा करते रहते हो!!
प्यारा-प्यारा अपना जीवन, लगता है क्या भार तुम्हें?
अथवा लगने लगा बतावो, खारा यह संसार तुम्हें?
लगे उसी का यश अब गाने, निन्दा जिसकी की थी कल!
होता है मालूम अकल में, नहीं आपका रहा दखल॥

○ उसकी निन्दा?

बनकर चकित उसी क्षण बोला, अपनी प्यारी रानी से।
नाहक दोष लगाती हो क्यों, मुझ पर खोटी वानी से॥
वैर रखूंगा मैं क्यों बतला? ऐसे उत्तम प्राणी से।
होती रही भलाई सब की, जिसकी शुभ जिंदगानी से॥

उन्नति कितनी हुई राज्य की, उसकी हो निगरानी से।
पाते दीन-दुखी संरक्षण, गुप्त-प्रगट उस दानी से ॥
देव तुल्य उस मन्त्री जी को, बुरा बताना दूर रहा।
कहदे कोई तो भी मुझ से, जायेगा क्या कभी सहा?

जिसने जनता और भूप की, खातिर जीवन वारा है।
सोते-जगते चलते-फिरते, सब का भला विचारा है ॥
जिसके मन में सेवाव्रत की बहती अविरल धारा है।
अपना मन्त्रीश्वर मेरे को, प्राणों से भी प्यारा है ॥

● सिर की सौगन्ध

पत्नी ने तब कल की सारी, घटना याद दिलाई है।
सुनते ही सौगन्ध उसी के, सिर की उसने खाई है ॥
मुझको तेरी इन बातों से, हैरानी अति भारी है।
ऐसी एक बात भी मैंने, मुख से नहीं उचारी है ॥
लगता है बस ऐसा तेरी- बुद्धि किसी ने मारी है।
मेरे लिये असत्य धारणा, अपने मन में धारी है ॥
भला भूप को मन्त्री जी क्यों, व्यर्थ मारना चाहेंगे?
उन्हें डुबोकर अपना बेड़ा, व्यर्थ तारना चाहेंगे ॥

अब भी मन्त्री जी की इज्जत, कमती है क्या राजा से ?
मन्त्री जैसी बात जमाता, जमती है क्या राजा से ?
बिना राज ही राजा जैसी, जो इज्जत-पूजा पाये।
तुम ही सोचो मन में खोटे, भाव भला वह क्यों लाये ?
गांव ओर को गीदड़ दौड़ा, तब ही तो बस जायेगा।
काल कूकता जिसके सर पर, पगली ! जिसदम आयेगा।।
होकर के मतिमान सुमति पर, पर्दा डाला जाये क्यों ?
आ रे बैल ! मार रे ! मुझको, उक्ति यथार्थ बनायें क्यों ?

□ तैयारी का कारण

छत्र, चंवर ध्वज, शस्त्र बनाके, करये राजा जी को भेंट।
भेंट नहीं रिश्वत कहलाती, नहीं पाप से लाग लपेट ।।
क्या न समय से पहले करते, स्वागत की तैयारी जी !
लोगों को पर-घर की शोभा, कभी लगी क्या प्यारी जी !
शंकाओं से भरे हुए हैं, इस दुनिया वालों के दिल।
चूहे खोद लिया करते हैं, अपने लिये अलग से बिल ।।

□ आश्चर्य और प्रश्न

चकित हुए नृप लगे सोचने, कैसा गोरखधन्धा है !
कल था अधम, आज है उत्तम, देव तुल्य वह बन्दा है !!

जिसे बताया दानव, मानव- उत्तम उसे बताता है !
क्या है सत्य, असत्य और क्या, नहीं समझ में आता है ॥
मुख्य सचिव यदि नेक एक है, कल फिर बुरा बताया क्यों ?
एक व्यक्ति की कही बात में, इतना अन्तर आया क्यों ?

यही समस्या जमादारनी- के भी सम्मुख आई है।
रह न सकी चुप, उसने आखि़र, अपनी जीभ हिलाई है ॥

"तब फिर कल क्यों बात मुझे वह, बैठे यहीं सुनाई थी ?
कहीं गई थी चरने या फिर, बुद्धि बेचकर खाई थी ?"

उधर भूप के मन में भी तो, प्रश्न यही था खड़ा हुआ।
जमादारनी से ही सुन कर, हर्ष उन्हें था बड़ा हुआ ॥
उत्कंठा उत्तर सुनने की, जगी नृपति के मन में अब।
'चन्दन' उत्सुक चित्त बतावो, धीरजता रख पाता कब ?

○ हां, हो सकता है

'दंतिल' बोला—कल तो मैंने, बोतल अधिक चढ़ाली थी।
अगली-पिछली कई दिनों की, सारी कसर निकली थी ॥

हो सकता है उसी वहक में, बोला हो कुछ ऊल-जलूल ।
उसके कारण कान पकड़ कर, मान रहा मैं अपनी भूल ॥
आगे को मैं मुख से कोई, नहीं कहूंगा बात फ़िज़ूल ।
कल जो हुई नशे में वह भी, गलती मेरी करूं क़बूल ॥
अधिक बोलना जिन लोगों का, है दुनिया में केवल काम ।
उन-सा मूर्ख न कोई नर है, जो बकते हैं प्रातः शाम ?
बिना विचारे बोले जाना, महा मुसीबत का है मूल ।
अपने ही हाथों से बोए, पैरों में चुभ जाते शूल ॥
महा मूर्खता के झूले में, मेरे सम जो रहते भूल ।
नहीं कभी भी बरसा सकते, खिले हुए वाणी के फूल ॥
कल तो सचमुच पहुंच चुका था, मैं मादकता-नद के कूल ।
कंधा पकड़ झिंझोड़ा तुमने, और सुधारी है वह भूल ॥
अपनी भूल भयानक को क्यों, और अधिक अब दूं मैं तूल ।
ज़रा करूंगा पैनी अब तो, बुद्धि हो गई मेरी स्थूल ॥
नहीं आज के बाद कहूँगा, बात किसी के भी प्रतिकूल ।
जो कुछ हुआ-हुआ अब उस पर, आओ मिलकर डालें धूल ॥

▭ यथार्थ यह है

मन्त्री जी की सज्जनता में, लेकिन कोई कमी नहीं ।
उनके जैसा सर्वहितैषी, जग-सुखदायक शमी नहीं ॥

बुरा विचारें बुरा करें वे, ऐसा उन पर असर नहीं।
बात यथार्थ सभी मानेंगे, आज मानते अगर नहीं ॥
सपने में भी नहीं बुराई, उनको छूने पाती है।
जब भी मन में आती है बस, एक भलाई आती है ॥

कोई भी तो कहे उन्हों से, कष्ट एक भी पाया है।
जो भी मिला मुझे तो, महिमा- गाता नहीं अघाया है ॥
धेले की भी हेरा-फेरी, नहीं, सदा पावन व्यवहार।
उसको कारागृह में देना, उचित न कहता हैं संसार ॥
ऐसा तो सन्तोषी सच्चा, होगा कठिन ज़माने में।
लगा हुआ है सब को ही जो, शान्ति सौख्य पहुँचाने में ॥
मैं तो कहता हूँ हर राजा, अपने राजा जैसा हो।
अपने मन्त्री जैसा सच्चा, नृप का मन्त्री ऐसा हो ॥

▫ पिया हो क्यों ?

सुनते ही बस जमादारनी, बनकर बिजली कड़की है।
बहुत दिनों से दबा रखी थी, अग्नि अचानक भड़की है ॥
मन्त्री जब है इतना अच्छा, उसको बुरा बताया क्यों।
मन को मस्त बनाने वाला, प्याला कहो चढ़ाया क्यों ?

कितनी बार तुझे समझाया, मुख मत इसे लगाया कर।
बनकर पागल इस दुनिया को, नाहक नहीं हंसाया कर॥

लोक और परलोक, धर्म पर, काजल अरे! फिराये जो।
यशः कीर्ति सज्जनता को फिर, मिट्टी बीच मिलाये जो॥
कभी गिरा डाले गलियों में, जेल कभी दिखलाये जो।
कभी नरक में यमदूतों से, शीशा ढाल पिलाये जो॥
घर का नहीं घाट का जिससे, मानव यह रह पाता है।
पक्का तो घर बनना क्या था, कच्चा भी बिक जाता है॥

▭ सुरा पर प्रहार

मस्त बनेंगे मदिरा पी जो, लोटेंगे वे नाली में।
वहां पड़े भी समझेंगे यह, सुरा सजी है प्यालों में।
जाकर कोई अगर उठाये, बोलेंगे बस गाली में।
'फ़र्क नज़र कब आता उनको, मां, बेटी, घर वाली में॥
सुरा न समझो ज़हर भरा है, बोतल चिट्टी-काली में।
जल में छिपी आग पी जाते, जड़मति ख़ामख़याली में॥
सुमन सुगन्धित कभी न खिलते, जैसे सूखी डाली में।
सुरा नहीं सुख दे सकती है, वैभव में—कंगाली में॥

उठ जाता विश्वास, अनादर- स्थान-स्थान पर होता है।
नशा उतर जाने पर वह नर, आंखें भर-भर रोता है॥
अपनी अपने खानदान की, लुटिया अरे! डुबोता है।
सदा-सदा को दुःख-भंवर में, खाता खुद भी गोता है॥
कितना ही फिर संभले लेकिन, कुछ भी प्राप्त न होता है।
वृद्ध बैल की तरह पाप का, वह तो बोझा ढोता है॥

बनता कोई कभी न उसका, नाना है या पोता है।
सभी बदलते उससे आंखें, जैसे बदले तोता है॥
पा करके नर-देही दुर्लभ, हाय! अकारथ खोता है।
अन्तकाल में अश्रु-सलिल से, अपना मुखड़ा धोता है॥

सरल हृदय सज्जन जन आस्तिक, निकट न इसके जाते हैं।
रह करके बस दूर सुरा से, जीवन को चमकाते हैं॥
मानव होकर मान-बड़ाई, जिसकी नहीं यहां पर है।
कहो जिन्दगी पशु-जैसी ही, उसकी नहीं यहां पर है?
पैसे जाते जेब-गांठ से, जग में होती भंडी फिर।
घृणित समझते सभ्य सयाने, दुर्गुण की इक डण्डी फिर॥

ज्यों चलती बन्दूक दुनाली, गाली की हो वर्षा त्यों।
प्रभु का नाम मद्यपायी के, मुख से भी फिर निकले क्यों?

ऐसी है यह सुरा-राक्षसी, रखती दूर भलाई से।
मद्यप नहीं घृणा करता है, जग की किसी बुराई से॥
दूर दया कर दिल से, दिल को- पत्थर तुल्य वनाती है।
हत्या तक भी करते करुणा, नहीं निकट आ पाती है॥

☐ त्याग करो

ऐसे सुरापान के पीछे, वन करके दीवाने तुम।
क्या वतलाऊं वहक गए कल, क्या-क्या कुछ अनजाने तुम॥
अभी लगावो हाथ कान को, करना होगा त्याग यहीं।
तुझको, मुझको खानदान को, डंस जाये यह नाग यहीं॥
मिला जहर है जिस शर्वत में, बोतल उसकी खोल जगत।
पता न अपनी बरवादी को, क्यों लेता यह मोल जगत!!

जिगर बढ़ाती, उम्र घटाती, निर्बल नजर बनाती है।
शक्ति क्षीण करके जीवन की, रोग अनेक लगाती है॥
गुर्दे नहीं कामके रहते, मदिरा पीने वाले के।
रोग लगाती पागलपन का, पीछे जीने वाले के॥
दूध, दही, घृत तजकर विष का, पीना भी क्या पीना है।
आदर रहित निकम्मा सूना, जीना भी क्या जीना है॥

कड़वी मीठी सच्ची अच्छी, सुन वनिता की बातों को ।
उसी समय ही लगा लगाने, कान युगल से हाथों को ॥
कहा—आज से सुरापान के, निकट नहीं मैं जाऊंगा ।
तेरी हित-शिक्षा पर सच्चे, श्रद्धा-सुमन चढ़ाऊंगा ॥
बन करके मैं अधम आदमी, नहीं नरक में जाऊंगा ।
पाया है तन मानव का तो, मानव बन दिखलाऊंगा ॥
यौवन मद में होकर अन्धा, मरना नहीं भुलाऊंगा ।
अच्छे नेक विचारों को ही, मन में सदा बसाऊंगा ॥
अगर गंवाऊंगा मैं जीवन, आखिर में पछताऊंगा ।
बतला पुनः-पुनः क्या ऐसा, उत्तम अवसर पाऊंगा ?

□ दोस्तों का दोष

बुरा बनाया मगर मुझे था, मुफ़्त पिलाने वालों ने ।
काम किया था दूर्जनता का, मित्र कहाने वालों ने ॥
पहले-पहल उन्हों के प्याले, पीछे मैंने मोड़े थे ।
दूर बला से रहने को ये, हाथ-पैर भी जोड़े थे ॥
वे थे कई अकेला मैं था, बात न सुनता कोई है ।
लगा पता अब उन मित्रों ने, लुटिया अरे ! डुबोई है ॥

दुश्मन लाख गुणे हैं अच्छे, ऐसे स्नेही दल से तो।
सदा बिगाड़ किया करते अरि, चालाकी से छल से तो॥

□ स्त्री का साथ

बहुत बचाया अधःपतन से, नारी हो तो ऐसी हो।
जिसने जन्म सुधारा पति का, प्यारी हो तो ऐसी हो॥

□ राजा पर असर

उधर भूप ने सोचा सुनकर, मैंने यह क्या कर डाला!
क़ैद किया सच्चे मन्त्री को, है न अक़्ल का दीवाला!!
नहीं कभी भी मन्त्री जी का, देखा गड़बड़ घोटाला।
अपने माथे मुफ़्त लगाया, अपयश का धब्बा काला!!
व्यर्थ अनर्थ हुआ जो मुझ से, हाथ नहीं है आ सकता।
ऐसा मन्त्री सपने में भी, नहीं कहीं पर पा सकता॥
अगर भरोसा कर न किसी का, अपनी अक़्ल लड़ाता मैं।
आज लाज के मारे गर्दन, नीची नहीं झुकाता मैं॥
सच्चे दिल से सेवा मेरी, जिसने सदा बजाई है।
सौदाई क्या भाई हूं, जो- उसको जेल दिखाई है॥

☐ मन्त्री की मुक्ति

उसी समय वह राजा दौड़ा, बन्दीगृह में जाता है।
अपने हाथों मन्त्री जी को, बन्धन-मुक्त बनाता है॥
पुनः-पुनः की क्षमा-याचना, आंखों में जल छाया है।
गजारूढ़ कर बड़े प्यार से, उनको घर पहुंचाया है॥

☐ 'दंतिल' की सफलता

लगा उछलने बांसों 'दंतिल', समाचार जब पाता है।
पूर्ण सफलता का मद उसके, मन में नहीं समाता है॥
एक विशेष हर्ष का झरना, उसके मन से फूट चला।
छोटों में भी करामात है, मानेगा मन क्यों न भला॥
समझा जाता तुच्छ जिसे है, वह भी महिमाशाली है।
प्रतिभा-बल से वाणी-बल से, 'दन्तिल' भी क्या खाली है?

छोटों के भी मन होता है, मान उन्हें भी प्यारा है।
'चन्दन' मुख्य सचिव 'दंतिल' से, बतलावो क्यों हारा है?

समापन के स्वर

'दोहज़ार चौवीस' निराला, विक्रम सम्वत् आया है।
शुक्ल पक्ष वैसाख सप्तमी, चित्त अधिक हरषाया है॥
जैन सभा 'बरनाला' की जो; देखो बड़ी पुरानी है।
वहीं कहानी रची सुहानी, सुनते सज्जन ज्ञानी हैं॥
'ऋषभदेव' से 'महावीर' तक, जिनवर जो चौबीस अहो।
उनके चरण-कमल में 'चन्दन- मुनि' है रखता शीश अहो॥

बरनाला
२०२४ वैसाख

२३

दया का फल

O
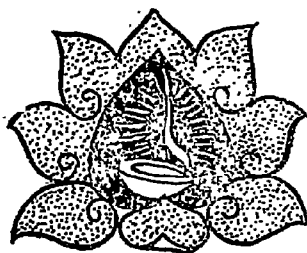
दया दिखाने का फल पाया,
पारावत ने यहां यथा, ।
दया-धर्म पर टिकी हुई है,
सहयोगों की सत्य-प्रथा ॥

□

- २३ - दया का फल

- धर्म का राज

दया किसी पर भी कर देना, दयावान का काम भला।
बदला भला भलाई वाला, सुबह नहीं तो शाम भला॥
बदला बुरा बुराई वाला, निकला करता मानो सत्य।
रोगी रोग बढ़ा लेता है, अगर नहीं रख पाता पथ्य॥
नर हो, पशु हो, चाहे पक्षी, भले भलाई करते हैं।
बुरे बुराई ही करते हैं, नहीं मौत से डरते हैं॥
छोड़ बुराई करो भलाई, नर-तन को तुम सफल करो।
जीवन-दान किसी को देकर, अपना जीवन कोष भरो॥
कथा एक पारावत वाली, सुनिये श्रोताओ! दे ध्यान।
प्राण बचाने वाले के फिर, कैसे बच जाते हैं प्राण॥

☐ जरा ही जीवन है

उड़ा जा रहा एक कबूतर,, हुआ पिपासा से व्याकुल।
बहुत उड़ानें मारीं लेकिन, मिला नहीं जंगल में जल॥
उड़ते-उड़ते पहुंच गया है, सुन्दर सरिता के तट पर।
पंछी कब ले जाया करते, घर पर पानी के घट भर॥
मन भर पानी पीने का ही, होता है उनका संकल्प।
दानों का पानी का संग्रह, करते नहीं विहंगम स्वल्प॥
शीतल स्वच्छ सलिल पी उसने, अपनी प्यास बुझाई है।
जल को जीवन कहने की बस, बात समझ में आई है॥

☐ मक्खी पर दया

मक्खी एक शहद वाली को, देखा पानी में बहते।
दुखी देख कर किसी व्यक्ति को, व्यक्ति दयालु न चुप रहते॥
पारावत ने सोचा—इसकी, जान बचा लेना उत्तम।
जान बचाने से बढ़ करके, होता है क्या दया-धरम ?
खड़ा-खड़ा ही उड़ा तुरत बस, ले आया पीपल का पान।
ले मक्खी के सम्मुख फैंका, क्या न विहग होते मतिमान ?
मक्खी चढ़ी पान के ऊपर, प्यारी जान बचानें को ?
स्वयं समझते जीव, न कोई, आता है समझानें को॥

त्रस कायिक जीवों में होता, इस स्तर का विकसित विज्ञान।
सभी प्राणियों को होते हैं, अपने-अपने प्यारे प्राण ॥

▫ कृतज्ञ भाव

सोच रही है मक्खी—पक्खी, दया नहीं जो दिखलाता।
मेरे इस लघु जीवन का बस, पता नहीं कोई पाता ॥
शहद पसन्द नहीं है इसको, वरना बहुत खिला देती।
पीता होता चाय अगर मैं, इसे अवश्य पिला देती ॥
उपकृति की स्मृति करना हो तो, बतलाया है उच्चादर्श।
कृतघ्नियों की चरणरजों का, चंडालिनी[1] न करती स्पर्श ॥

▫ पारावत पर संकट

वहीं वृक्ष की डाली पर जा, पारावत लेता विश्राम।
इतने में इक आया लुब्धक, जीव मारना जिसका काम ॥

---

१ "कर खप्पर सिर श्वान है, लहू जु खरड़े हत्थ।
छटकत मग चांडालिनी। ऋषि पूछत है वत्त" ॥
"तुम तो ऋषि भोले भये, नहिं जानत हो भेव।
कृतघनी की चरण-रज, छटकत हूं गुरुदेव !"

पारावत को लक्ष्य बना कर, धनु पर तुरत चढ़या तीर।
और उड़ाया बाज़ उधर से, घिरा विहग है भारी भीर॥
पारावत की मति चकराई, ऊपर-नीचे आया काल।
तू ही है रखवाला अब तो, सुनलो है प्रभु दीन-दयाल!
उडूं अगर है बाज़ सामने, नहीं उडूं तो लगता बान।
मुझे नहीं लगता है मेरे, बच जाएंगे अब तो प्राण॥
मन में प्रभु का ध्यान लगाकर, बैठ गया है आंखें मूंद।
पांखें क्या हिल सकती हैं ये, आंखें नहीं गिराती बूंद॥

अपनी आयु

कौन मारने वाला जग में, कौन बचाने वाला है।
आयु शेष जब तक है अपनी, कौन उड़ाने वाला है॥
खड़े शिकारी ने अंगुलियां, डोरे पर अब रखी तुरन्त।
दृश्य बदल जाता इतने में, आकस्मिकता है अत्यन्त॥
उसी शहद वाली मक्खी ने, मारा है आंखों पर डंक।
चूक गया है तीर निशाना, कटे बाज़ के दोनों पंख॥
उड़ा कबूतर जान बचाकर, गुण उस मक्खी के गाकर।
बाज़ गंवाकर, आंख सुजा कर, गया शिकारी अपने घर॥
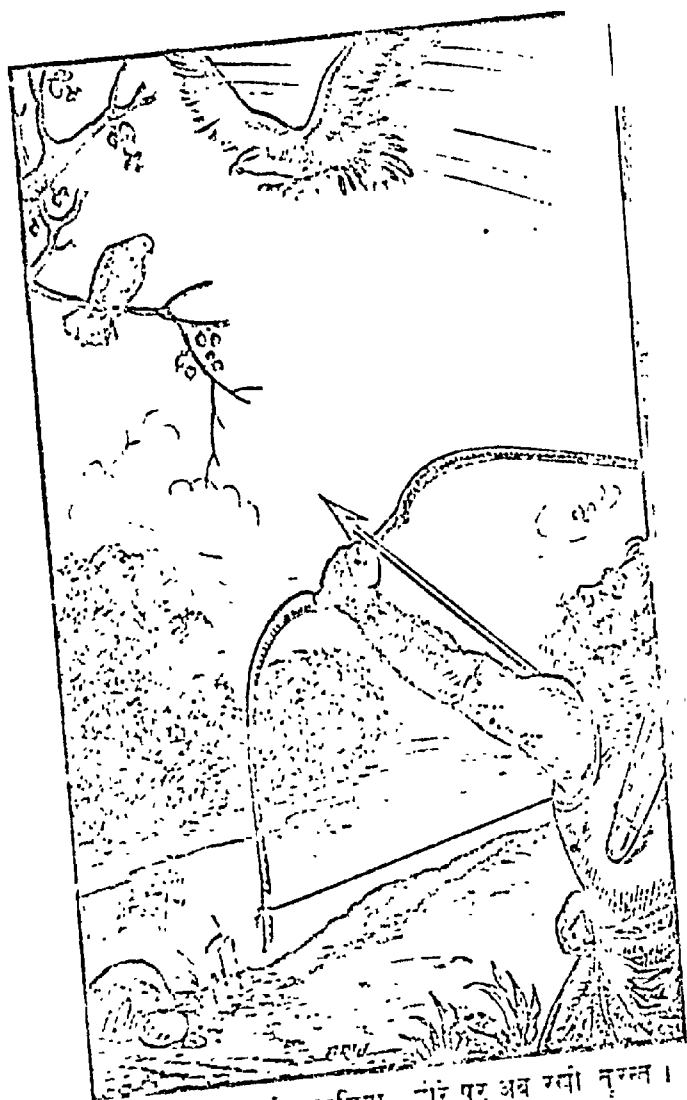
कथा-सार

मक्खो की यदि जान बचाई, पारावत ने पत्ता ला।
मक्खी जान बचाती उसकी, लुब्धक की आंखों पर खा॥
दया-धर्म का फल मिलता यों, कभी नहीं जाता खाली।
बड़े प्रेम से दया-धर्म की, पीओगे अमृत प्याली॥
अपनी जान लगा करके भी, रखते जो औरों की जान।
दीनानाथ किया करते हैं, दयावान का सदा बखान॥
मक्खी और कबूतर का यह, छोटासा रूपक अच्छा।
जिसे समझ सकता कोई भी, चाहे हो छोटा बच्चा॥

दो हज़ार इक विक्रम संवत, मास भला आषाढ़ चढ़ा।
'रामां मण्डी' में 'चन्दन' ने, दया-धर्म का पाठ पढ़ा॥

मेरे प्यारे पाठको! दया-धर्म लो धार।
भव-सागर से तुरत ही, करलो बेड़ा पार॥
प्रथम धर्म ही है दया, हिंसा पहला पाप।
अतः हृदय पर छापिए, दया-धर्म की छाप॥

रामां मण्डी
२००१ आषाढ

• २४ •

चांपसी मेहता

○

नहीं "शाह" लिख पाता कोई,
अगर नहीं होता वह शाह।
"शाह चांपसी" पढ़ लेने से,
'चन्दन' जागेगा उत्साह॥

○

० २४ ० चांपसी मेहता

दान की महिमा

दान,[1] शील, तप, भाव-मार्ग में, सर्व प्रथम आता है दान।
अन्य धर्म हैं अवयव उत्तम, दान धर्म है प्राण समान॥
दान सुपात्र-कुपात्र भेद से, द्विविध प्रथम बतलाया है।
पात्र विविधता हो जाने पर, दान विविध कहलाया है॥
जितने देय पदार्थ जगत में, बन जाते उतने ही दान।
ज्ञान-दान से भी उत्तम है, अभय दान का ऊंचा स्थान॥

---

१ उक्तं च—दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो, गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुंक्ते, तस्य तृतीया गतिर्भवति॥

बड़ा कौन ?

कर ऊंचा होने पर भी सिर, झुकता देने वाले का।
मानो वह आभार मानता, सचमुच लेने वाले का॥
बिना पात्र के, बिना वस्तु के, क्या देगा देने वाला।
बड़े भाग्य से ही मिलता है, हमें दान लेने वाला॥
देने वाला अगर बड़ा है, लेने वाला और महान।
वस्तु अतुच्छ स्वच्छ होती है, जिसका दिया जा रहा दान॥
शुद्ध वस्तु हो, शुद्ध पात्र हो, शुद्ध भाव हो, दान वही।
एतद्विषयक जैनधर्म का, 'चन्दन अनुसन्धान सही॥

विधि और कारण

दीक्षित हो जाने से पहले, जिनवर देते वर्षी दान।
इससे बढ़कर और आप क्यों, ढूंढ रहे शास्त्रीय प्रमाण ?
दिल देने वाले को मिलता, प्रतिफल में स्नेही का दिल।
तर्कजाल से शुद्ध प्रश्न को, नहीं बनाते बुद्ध जटिल॥
निष्फल कभी नहीं जाता है, किसी पात्र को दान दिया।
ज्ञान हमारा हो जाता ज्यों, जिसका हमने ज्ञान किया॥
वेश भिखारी का होने से, कभी न उसको समझो दीन।
प्राण समान सभी में होते, पढ़ते-सुनते परम प्रवीन॥

□ दान एक स्वभाव

भीख मांगने वाला भी तो, दे सकता उसमें से दान।
दान भाग्यशाली देते हैं, दे सकते हैं क्या धनवान ।।
शुद्धि चित्त की हो जाती है, शुद्ध दिया जाये जो दान।
शुद्धि देह की हो जाती ज्यों, प्रातः कर लेने से स्नान ।।
बिना स्नान के खान-पान के, दिवस नहीं जाता खाली।
दान हमेशा करने की फिर, आदत गई नहीं डाली ?
दान दीजिये लाभ लीजिये, श्रद्धा भक्ति शक्ति अनुसार।
दान-बीज से ही होता है, ऋद्धि सिद्धि का वट-विस्तार ।।
बोया गया खेत में दाना, सौ-सौ दाने देता है।
देने वाला देता है या, कई गुणा कर लेता है ।।

□ सभी उत्तम

अन्न-दान देता है कोई, कोई देता औषधि-दान।
देता कोई वस्त्र-पान तो, दे देता है कोई स्थान ।।
धीर वीर गम्भीर व्यक्ति ही, दानवीर बन सकता है।
उसका दान नहीं रुकता है, नहीं हाथ भी थकता है ।।
पीछे नहीं देखता दानी, खड़ा देखता सम्मुख पात्र।
देते-देते क्यों न पास में, गात्र एक रह जाये मात्र ।।

सब ने पढ़ा-सुना भी होगा, 'भामाशाह' सेठ का दान।
पारावत की रक्षा के हित, नृपति 'मेघरथ' देता प्रान॥
'शाह चांपसी' की 'चन्दन मुनि', की जायेगी अब चर्चा।
रखते जीवित गुणी पुरुष को, गुण की जो करते अर्चा॥

▭ गुजरात का गौरव

भारत में 'गुजरात' प्रान्त की, महिमा बड़ी निराली है।
प्रभावना प्रवचन की ऐसी, कहीं न देखी-भाली है॥
बसते हैं प्रत्येक शहर में, दान-दया के दीवाने।
तप के जप के ज्ञान-ध्यान के, अनगिनती हैं परवाने॥
धर्म, देश पर शीश जिन्होंने, हंसते-हंसते वारे हैं।
पुरावृत्त के नभ में चमके, कितने तेज सितारे हैं॥
आज उसी 'गुजरात' प्रान्त में, प्यारे पाठक! जाना है।
श्रमणोपासक दानवीर का, वर्णन सरस सुनाना है॥

राज वहां सुलतान 'मुहम्मद- वेग' चलानें वाले थे।
जनता के धन-दौलत पर जो, मौज उड़ाने वाले थे॥
उन्हीं दिनों का एक कथानक, मुझ को आज सुनाना है।
सेठ 'चांपसी मेहता' का कुछ, अद्भुत हाल बताना है॥

□ नगर सेठ

'चांपानेर' नगर के वासी, नगर सेठ भारी गुणवान।
सत्य भक्त अनुरक्त धर्म में, नर-काया में पुण्य निधान ॥
पर उपकृति से, सत्यादृति से, सत्कृति से शृंगारा तन।
वीतराग अरिहन्तदेव का, करते रहते भक्ति-भजन ॥
जड़ धन पर क्या होना था जब, नहीं अहं था गुण-धन पर।
आत्म-प्रभाव उतरतो मन पर, मन प्रभाव फिर जीवन पर ॥

जीवन में जो धर्म नहीं हो, वही दिखावा आडम्बर।
आडम्बर सूना होता है, जैसे सूना नीलाम्बर ॥

□ एक उमराव

'सादुल्ला खां' नामक भारी, रहता है उमराव वहीं।
जाति-भेद का उसके मन से, होता दूर प्रभाव नहीं ॥
हीन भावना वाला भूस्पृक्, एक नज़र कब लख सकता।
मुख मीठास खटास चित्त में, वहीं जमा कर रख सकता ॥
सेठ 'चांपसी' 'सादुल्लाखां', जाते मिल दरबार सदा।
प्रेम प्यार का वे आपस में, करते थे व्यवहार सदा ॥

८. सेठ की स्तुति

एक बार 'बारेठ' नाम का, चारण मग में उन्हें मिला।
'नगर सेठ' का पाकर दर्शन, सहसा अन्तर सुमन खिला॥
देख चकोर चांद को जैसे, फूला नहीं समाता है।
हर्ष-मत्त होकर वह उनकी, बड़ी प्रशंसा गाता है॥

दर्शन[1] आपका अचानक जो हुआ अहा !
कहूंगा मैं भाग्यशाली, अति यह राह है।
रोशन किया है नाम, जैन का ज़माने बीच।
दान में कुबेर से भी, बड़ा उत्साह है।
धीर हैं गम्भीर बलवीर पर-पीर-हर।
शाह के गुणों का कोई, पार है न थाह है।
चारण 'बरेठ' सेठ ! लाग न लपेट करे।
आपके तो सामने, नगण्य बादशाह है।

सादुल्ले से नगर सेठ की, महिमा सहन न हो पाई।
निन्दा सुन खुश होते दुर्जन, रीति अनादि चली आई॥

---

1 मनहरण छन्द

▭ नीच स्वभाव

नीच प्रकृति वाले मानव की, यही वृत्ति पाई जाती।
निन्दा सुनकर हर्षित होते, महिमा मन को कम भाती॥
निन्दा फूल, शूल यश-गाथा, माथा जाता सिकुड़ वहीं।
मर जाते हैं नाना-नानी, चलती उनकी पेश नहीं॥
फंसे फंसाये अगर सुनेंगे, शीश धुनेंगे बैठे वे।
और उधेड़ पता न वहां क्या, नीच बुनेंगे बैठे वे॥
कान खड़े कर लेते फ़ौरन, रसिया निन्दा सुनने के।
कांटे सदा बटोरेंगे वे, फूल नहीं वे चुनने के॥
निन्दा देती है सुख उनको, कहते और सुनाओ जी !
बैठे हो क्यों दूर, हमारे- आप निकट तो आओ जी !
हुई प्रशंसा अगर, कहेंगे- गोली इसे लगाओ जी !
रखा नहीं इन बातों में कुछ, व्यर्थ कान मत खाओ जी !

कंचन काया निरख मक्खियां, खुशियां नहीं मनाती हैं।
अगर कहीं पर रक्त-पीप हो, दौड़ वहीं पर आती हैं॥

भवन भले हो कितना सुन्दर, चींटो को कुछ काम नहीं।
रन्ध्र ढूंढती रहती उसमें, पायेगी आराम नहीं॥

सार-सार तज दुर्जन, छलनी, करते ग्रहण असार-असार।
'चन्दन' सज्जन और छाज का, आदरणीय मधुर व्यवहार।।

ऊपर जल ले जाना हो तब, पड़ता कष्ट उठाना है।
नीचे लाने को भी कुछ क्या, पड़ता जोर लगाना है?
ऐसे हो मन निन्दा आदिक, दुर्गुण में फंस जाता है।
जोर लगाने पर भी पूरा, ऊंचा कब उठ पाता है।।
बुरी वृत्तियां सदा काल से, लगतीं मन को प्यारी हैं।
अच्छाइयां अमृत-सी उनको- कहता कड़वी खारी हैं।।
जाते डूब तभी नर लाखों, तरता कोई प्राणी है।
उस साडुल्ले के दिल को भी, समझो यही कहानी है।।

○ कान भर दिये

मन ही मन से दुर्मन होकर, बादशाह के आया पास।
खूब लगाकर मिर्च-मसाला, सारा हाल सुनाया खास।।
कहा—'हजूर! भिखारी जो नर, जन्मजात कहलाता है।
दिया आपका खाता है पर, गुण बनिये का गाता है।।
लगे मुझे तो बहुत बुरे जो, शब्द स्पष्ट उच्चारे जो!
"बादशाह कुछ चीज नहीं है, सम्मुख सेठ! तुम्हारे जो।।"

ऐसा ढीठ भला क्या कोई, होगा और जमाने में !
रहता है जो निश-दिन तत्पर, बनिये के गुण गाने में ॥
ऐसी गंदी सड़ी जीभ को, मैं तो लेता खींच वहीं ।
मगर आपको बिना कहे कुछ, मैंने ऐसा किया नहीं ॥

▭ 'बारठ' और बादशाह

क़िस्सा सुन कर बादशाह को, भारी गुस्सा आया है ।
उसी समय दरबार बीच ही, 'बारठ' को बुलवाया है ॥
बादशाह तब कड़क-कड़क कर, उस पर गाज गिराता है ।
छोटे मुख से बड़ी बात कर, बनिये के गुन गाता है ?
धर्म नहीं यह तेरा, तुझको- शर्म नहीं किंचित आई ?
सारी की सारी ही कैसे, अक़ल बेचकर है खाई ?

रोषारुण[1] नेत्रों पर, दोनों- भौंहें टेढ़ी बनी हुईं ।
सूरत बादशाह की उस क्षण, असुरों जैसी बनी हुई ॥
"'बारठ' खड़ा हुआ है निर्भय, डगमग डोले पांव नहीं ।
बोला—मालिक ! बिन बनिये के, चल सकता क्या काम कहीं ?

---

1 क्रोध से लाल

□ वणिक विशिष्टता

उधर गया बाजार जिधर को, बढ़ा वणिक का एक कदम।
आगम-बुद्धि वणिक होता है, गुणिजन यों कहते हरदम॥
पिता पितामह प्रपितामह ने, देखो वे-वे काम किये।
छाती हो जाती है गजभर, उन कामों का नाम लिये॥
अपने धन को राष्ट्र-सम्पदा, सदा मानते आये हैं।
इसीलिये ही ठीक-ठीक गुण, मैंने इनके गाये हैं॥

□ एक प्रश्न

सच्ची बात सुनाने पर भी, शान्त नहीं वह कोप पड़ा।
बोले तब यों—बादशाह से, होता है क्या शाह बड़ा?

□ एक उत्तर

निर्भय होकर चारण बोला, इसका सुनलो यह इन्साफ।
बड़े प्रेम से इस दुनिया को, ज्यों जीवित रखते हैं आप॥
वैसे ही सारी दुनिया को, बनिया जीवित रखता है।
जो कुछ होता पास लुटाता, छोटा चित्त न करता है॥

▫ इतिहास है

सम्वत 'तेरह सौ पन्द्रह' में, कितना घोर अकाल पड़ा ।
दीन-दुखी की रक्षा को तब, कौन वीर था हुआ खड़ा ?
कच्छ 'भदेसर' का जो बनकर, चमका तेज सितारा था ।
'जगडूशाह' जगत में नामो, बनिया हो तो प्यारा था ।।
अपने इस 'गुजरात' देश का, जब इतिहास उठावोगे ।
स्वर्णाक्षर में अंकित उसका, नाम सामने पावोगे ।।
गुर्जरवासी कोई भी नर, उनको नहीं भुलायेगा ।
गुण-गम्भीर दानवीर वह, याद हमेशा आयेगा ।।

सारे ही 'गुजरात' देश में, छाया जब दुर्भिक्ष महान ।
शान बचाई आन बचाई, और बचाये सब के प्रान ।।
देश-भक्ति जागी 'जगडू' की, लाखों मन बंटवाया अन्न ।
अगर नहीं ऐसा होता तो, कैसी स्थिति होती उत्पन्न ?

मिला अनाज जहां से भी वह, दाम खर्च कर लाया था ।
किया उधार न पैसे का भी, सब को नक़द चुकाया था ।।
पर-दुख को दुख मान स्वयं का, सब का कष्ट मिटाया था ।
दया-धर्म के सेवक जन का, वह सिरमौर कहाया था ।।

घर जाइये

चारण ने यश-गौरव उसका, लम्बा-चौड़ा गाया है।
सुनते-सुनते बादशाह का, दिल भी अब घबराया है॥
अपनी महिमा सुनने का ही, उसको था अभ्यास बड़ा।
स्पष्ट बात कहने वाला कब, रह सकता है पास खड़ा॥
"बादशाह से शाह बड़ा" यह, शब्द न होने देते शान्त।
ज्यों तूफ़ान देख कर सागर, हो जाता है अधिक अशान्त॥
बादशाह ने कहा—न इतनी, लम्बी बात बनावो तुम।
सुनना नहीं पुराण तुम्हारा, अपने घर को जावो तुम॥

अतीत के गीत

गीत अतीत काल के गाना, बुद्धिमान का काम नहीं।
चले गये जो इस दुनिया से, लेना उनका नाम नहीं॥
बजा रहा बेसुरी बांसुरी, सुनना हमको नहीं पसन्द।
मृत-जीवनियां कहने का क्रम, अब तो होगा निश्चित बन्द॥
मैं जीवित बैठा हूं जिसके, गाये जाते गीत नहीं।
मुर्दों के पीछे पड़ जाना, कोई उत्तम रीत नहीं॥
आवश्यकता मुझे नहीं है, इन सब बीती बातों की।
बोलेगा तो आजायेगी, नौबत हाथों-लातों की॥

▭ मन की ग्रन्थि

चारण चला गया अपने घर, कहना क्या था और अधिक।
मन ही मन में बादशाह पर, करते हैं अब गौर अधिक॥
वारण[1] जैसा चारण कितना, अक्खड़ है अभिमानी है।
इसकी बात बना कर झूठी, अवसर पर दिखलानी है॥
बिना शाह के इसे दूसरा, देता नहीं दिखाई है।
"हां में हां" सादुल्ले ने भी, अवसर देख मिलाई है॥

▭ दुर्भिक्ष पड़ा

होनहार की बात निराली, कभी न टाली जाती है।
अगले साल अकाल पड़ा है, फटती सबकी छाती है॥
स्थान-स्थान पर गुर्जरवासी, तड़पे दाने-दाने को।
अन्न कहां है अब तो विष भी, प्राप्त न होता खाने को॥

पशुओं की दुर्दशा होरही, प्राप्त नहीं होता चारा।
पानी भी मुश्किल से मिलता, मीठा हो चाहे खारा॥
सूखे ताल-तलैया कूएं, रूठ गये दानी बादल।
निकल धरा से बसा हुआ है, लोगों की आंखों में जल॥

---

१ हाथी

भारी दुश्चिंतित जन-गण-मन, क्षण-क्षण तकने लगा गगन।
गगन छोड़ कर और कहीं पर, मेघों ने था किया गमन॥
प्रभु का नाम न लिया जा रहा, प्रभुवर के ही प्यारों से।
गगन गूंजता अन्न-अन्न की, करुणा भरी पुकारों से॥

मरते मानव पशु मरते हैं, भूखों मरते बेचारे।
सिवा अन्न के शस्त्र नहीं है, जो दुर्भिक्षों को मारे॥
जीवित जन भी मृत जैसे हैं, चिपकी अन्तड़ियां सारी।
बिना अन्न के मतिमानों की, मति क्या करती बेचारी॥
करुणा-जनक दृश्य का वर्णन, करना होता बड़ा कठिन।
चिकुर भले कोमल हों लेकिन, बंध सकते हैं क्या बिन पिन?

□ बादशाह की नीयत

देश वासियों की हालत पर, बादशाह मुस्काया है।
शाह-परीक्षा करने का यह, अच्छा अवसर आया है॥
उसी समय उस चारण को बस, अपने पास बुलाया है।
विषय अकाल परिस्थिति का वह, सारा हाल सुनाया है॥
मिर्च-मसाला अपने घर से, थोड़ा-बहुत लगाया है।
दुःख-दर्द का चित्र खींच कर, चारण को दिखलाया है॥

बादशाह ने फ़र्ज़ स्वयं का, मत्र का मत्र बिसराया है।
कपट-कला में कुशल बना यों, शब्द जोभ पर लाया है॥

□ शाह हो तो

दर्द भरे इस कठिन समय में, काम देश के आये जो।
सारे हो गुजरात देश को, पूरे वर्ष खिलाये जो॥
ऐसे किसो शाह को चारण! पास हमारे लाना जो!
प्रजा कष्ट में पड़ी हुई है, जीवन-दान दिलाना जो!
वरना शाह कहेगा अथवा, जो भी शाह कहायेगा।
राज-दण्ड से दण्डित होकर, बंदी-गृह में जायेगा॥
कोई भी हो चाहे फिर वह, नहीं छूटने पायेगा।
बादशाह उन दोनों को हो, भारी मजा चखायेगा॥

□ चारण का चित्त

चारण चकित होगया सुनकर, बादशाह की वाणी वह।
याद आगई उसको सारी, घटना आज पुरानी वह॥
लेकिन उसने अपना विस्मय, रखा ससीमित अपने तक।
किसो क़िस्म का बादशाह को, होने दिया न उसने शक॥

बोला—'बादशाह ने मुझको, जो भी हुक्म सुनाया है।
बिल्कुल सत्य समझ में मेरे, अक्षर-अक्षर आया है॥
शिरोधार्य है आज्ञा सारी, कभी नहीं उलटाऊंगा।
अभी सूचना देने को मैं, पास 'शाह'' के जाऊंगा॥'

□ खुली बात

बोला बादशाह—'तुम चाहे, पास किसी के भी जावो।
मगर देश का रक्षक कोई, "शाह" ढूंढ करके लावो॥
किसी वस्तु की जग में यों तो कमो और परवाह नहीं।
इस दुनिया में ऐसा कोई, तुम्हें मिलेगा "शाह" नहीं॥
फिर भी कहीं ढूंढने की मैं, देता तुम्हें सलाह नहीं।
डर लगता है दीन-दुखी की, लग जाये यह आह नहीं॥
अगर कमर कसले कोई तो, कोई मुश्किल राह नहीं।
अपना प्यारा-प्यारा फिर यह, होगा देश तबाह नहीं॥
करके सेवा मेवा खाने- की हो कुछ भी चाह नहीं।
होगा कैसे कहो सहायक, जिसके दिल में दाह नहीं॥
यों मत कहना किया किसी ने, पहले से आगाह नहीं।
अगर हुए असफल पाओगे, चारण ! कहीं पनाह नहीं॥

बादशाह की डाह भरी यों, बातें सुन चकराता है।
फिर भी धीर वीर वह चारण, मन मजबूत बनाता है॥
कर आदाब अदब से उनको, चला वहां से आता है।
कार्य क्रम वह मन ही मन से, जाता हुआ बनाता है॥
नहीं बढ़ाई बात ज़रा भी, बिल्कुल नहीं घटाई है।
पहुंच 'चांपसी' मेहता के घर, घटना घटी सुनाई है॥"

कहा—शाह जी ! बादशाह से, होड़ लगी यह भारी है।
'शाह' कहाने का बस केवल, एक वही अधिकारी है॥
अपने प्रिय 'गुजरात देश' के, प्यारे प्राण बचाने को।
एक वर्ष तक लगातार जो, देगा सब को खाने को॥
वरना 'शाह' कहे जो कोई, जो कोई कहलायेगा।
राजसभा में बादशाह से, कड़ा दण्ड वह पायेगा॥"

चारण के यों कहने पर बल- बड़ा बात के बीच पड़ा।
नगर सेठ तब बड़े प्रेम से, बोला होकर तभी खड़ा॥
चारण ! निष्कारण क्यों डरना, साधारण यह बात नहीं।
'शाह' शब्द के कारण क्या हम, सभी महाजन साथ नहीं ?

सारे बड़े महाजन मिलकर, कमर कहत की तोड़ेंगे।
वरना 'शाह' कहाना सारे, एक साथ ही छोड़ेंगे॥
उठो जोगिनी-तनय ! जाइये, एक मास का मांगो काल।
सारी वणिक जाति का सचमुच, समझ लीजिये बड़ा सवाल॥

एक मास की अवधि मांगली, चारण ने तब जाकरके।
बादशाह ने स्वीकृति देदी, मन ही मन मुस्का करके॥

▫ महाजनों की सभा

'नगरसेठ' ने नगर निवासी, सभी महाजन बुलवाये।
बादशाह के भाव-ताव सब, बड़े चाव से समझाये॥
लिये देश के लिये जाति के, लो अब हो जाओ तैयार।
जैनधर्म की हो प्रभावना, राष्ट्र धर्म से करलो प्यार॥
'शाह' शब्द की लाज बचाना, प्रमुख कार्य पहचानोगे।
दया-दान का उत्तम अवसर, मिला भाग्य से मानोगे॥
शक्ति छिपाना भक्ति छिपाना, सरल व्यक्ति का काम नहीं।
काम नहीं करने से होता, महाजनों का नाम नहीं॥

नाम लिखाने लगे सेठ सब, देर वहां पर कैसी थी।
क़दम बढ़ाया सब ने आगे, हिम्मत जिसमें जैसी थी॥

एक एक दिन को सब ने हीं, वारी झट लिखवाई है।
पूर्ण व्यवस्था चार मास को, चुटकी में बन पाई है॥

'बाकी आठ महीनों का क्या, करना हमें प्रबन्ध कहो?
नगर सेठ ने कहा सभी से, जो जंचता सानन्द कहो॥"

सभा उपस्थित सम्मत होकर, बड़े प्रेम से कहते हैं।
स्वधर्मी जन आस-पास के, गांवों में भी रहते हैं॥
उनका भी सहयोग हमें तो, निश्चित ही मिल जाएगा।
अन्न व्यवस्था करें पूर्ण हम, जन-जन जीवन पाएगा॥

इसी बात पर सहमत सारे, जैन बन्धु हो जाते हैं।
सब से पहले 'पाटन' में वे, जाने को ठहराते हैं॥

□ 'पाटन' की श्री

'चन्दन' पाटन बहुत बड़ी तब, नगरी समझी जाती थी।
श्रीमानों की मतिमानों की, बस्ती वह कहलाती थी॥
बड़े-बड़े बाजार वहां थे, बड़े-बड़े ही बने भवन।
भवनों में आने-जाने को, सूक्ष्म शरीरी बना पवन॥

बिना स्वच्छता के सुन्दरता, नहीं अकेली रह सकती।
छोड़ स्वच्छता गुरुणी शिष्या, सुन्दरता क्या रह सकती?
अभी बनाये गये भवन यों, दर्शक कर लेते अनुमान।
सेठ नहीं, सेठों के घर ही, कहते सेठ बड़े धनवान॥
अन्य समस्त गृहस्थ स्वस्थ हैं, श्रम करने के भी अभ्यस्त।
चित्त सरलता होने से ही, आपस में होते विश्वस्त॥

▭ नृपति और महाजन

नगरसेठ ले कुछ प्रमुखों को, उसी नगर में आये हैं।
स्वागत करके नृपति वहां के, फूले नहीं समाये हैं॥
आने का जब पूछा कारण, सभी सेठ सकुचाये हैं।
आखिर नगरसेठ ने दिल के, सारे भाव बताये हैं॥

'पाटन' के सब सेठ नृपति ने, अपने पास बुलाये हैं।
और कहा—'इस कारण से ये, नगरसेठ जी आये हैं॥
खोल-खोल दिल इनको चन्दा, दें खुद और दिलावें जी!
इसमें ही है है शान नगर की, हर्षित हो ये जावें जी!
महाजनों से लेना केवल, मेरा धन स्वीकार नहीं।
वरना एक जाति पर सारा, डाला जाता भार नहीं॥

साठ वारियां

"कहा सभी ने–अहो भाग्य है, सेठ लोग जो आये हैं।
पावन दर्शन पाकरके हम, फूले नहीं समाये हैं॥
लाख-लाख है धन्यवाद जो, हम को पहले याद किया।
अन्य नगरियों के नामों को, जो 'पाटन' के बाद किया॥
नही काम यह इनका अपना, काम सभी का सांझा है।
दुख-सुख सांझा समझ लीजिये, नाम सभी का सांझा है॥
हैं ये जैसे भाई सांझे, ग्राम सभी का सांझा है।
प्रेम-प्यार की दुनिया में धन- धाम सभी का सांझा है॥"

नहीं लगाथा समय ज़रा भी, दया-धर्म के प्यारों ने।
साठ वारियां लिखवाई हैं, बड़े हर्ष से सारों ने॥

दो स्वभाव

देना जिन्हें पसन्द नहीं हो, वे ही करते टालमटोल।
सोचेंगे देखेंगे फिर हो, धीरे से बोलेंगे बोल॥
पूछेंगे, अपने बेटे से, मैं तो हूँ घर से निवृत्त।
प्रश्न दान का आते ही यों, सकुचाने लगता है चित्त॥

देने वाले लाला जो यों, कहते मेरा नाम लिखो।
मेरे लायक़ सेवाओं का, मर्जी हो सो काम लिखो ॥
हमें काम से काम, नाम की- भूख नहीं है लाला जी !
कहता तन से मन से धन से, देवा देने वाला जी !

▫ धन्यवाद

नगरसेठ ने पृथ्वीपति का, पाटन के श्रीमानों का।
मधुर स्वरों से माना हैं जी ! धन्यवाद गुणवानों का ॥
किया हमें उत्साहित भारी, बने आपके आभारी।
नगरी धन्य, धन्य हैं भूपति, धन्य ! सेठ ये सुखकारी ॥
'पाटन' सचमुच 'पाटन' ही है, खाई जिसने पाटो है।
दाताओं को पैदा करतो, धन्य ! यहां की माटी है ॥

▫ दश दिन और

लेकर विदा वहा से फिर वे, नगर 'घोलके' आते हैं।
दश दिन का था काम वहां पर, बीस दिवस लग जाते हैं ॥
शेष रहे दिन दश ही केवल, काम बहुत निपटाना है।
'चांपानेर' नगर से पहले, 'धंधूके' भो जाना है ॥

तेज़ चाल से अतः सभी ने, आगे क़दम बढ़ाया है।
पथ में अति छोटा-सा सुन्दर, गांव 'हंडाला' आया है॥

☐ 'खेमोददरानी'

'खेमोददरानी' व्यापारी, बड़ा वहां कहलाता था।
सादा रहन-सहन ही उसको, सदा काल से भाता था॥
'महावीर' का समुपासक था, वड़ा निरभिमानी दानी।
दयावान नर के मुख से कब, निकला करती कटु-वाणी॥
सत्य धर्म से सदाचार से, प्यार उसे अति भारी था।
वीतराग अरिहन्तदेव का, मानो प्रेम पुजारी था॥
नहीं रात को भोजन करता, पीता क्यों अनछाना जल।
'सामायिक' से 'प्रतिक्रमण' से, करता पल-पल सकल सफल॥

☐ विचार-दर्शन

नहीं भूलते खाना-पीना, 'सामायिक' क्यों जाते भूल ?
भूल होगई—भूल होगई, कहना नियमों के प्रतिकूल॥
लोक और परलोक भूल कर, कर जाते हैं भूल बड़ी।
भूल-भुलैयां के खेलों में, प्रकृति क्यों अनुकूल पड़ी ?

पैसा ही परमेश्वर है यों, कहने वाले करते भूल।
फूल खिला जो देख रहे हो, होगा उसका कोई मूल ॥
आने वालों को जाना है, पर धन साथ नहीं जाता ?
धन-प्रिय जन को कभी जगत में, धर्म-भाव है नहिं भाता ।

समय नहीं मिलने पर क्या तुम, रहने देते हो भोजन ?
केवल अर्थ कमाने का ही, क्यों करते हो आयोजन ?
आत्म-शुद्धि के लिये आचरण, धर्म-क्रियाओं का करना।
पाप-क्रियाओं से परभव से, परमात्मा से कुछ डरना ॥
सुखी वही है दुखी जनों का, कष्ट मिटाता तन-मन से ।
प्रेम धर्म से करता है वह, प्रेम नहीं करता धन से ॥
लोगों से स्तुति करवाने का, लोभ नहीं रखना मन में ।
स्तुति लायक कृतियां करने की, धुन रखिये निज जीवन में ॥

नम्र निवेदन

उसी सेठ के कानों में ये, शब्द अचानक आते हैं।
आज महाजन चांपानेरो, गांव निकट से जाते हैं ॥
सुनते ही नंगे पांवों से, दौड़ा-दौड़ा आता है।
हाथ जोड़कर सब शाहों को, ऐसे वचन सुनाता है ॥

'जय जिनेन्द्र' सब को सादर; शाहों ! प्रथम बुलाता हूं ।
स्वागत-सुस्वागत करता फिर, फूला नहीं समाता हूँ ।।
आया हूं मैं आशा लेकर, कष्ट ज़रा फ़रमाओगे ।
नम्र निवेदन अस्वीकृत कर, आगे आप न जाओगे ।।
नहीं निराश करोगे मेरे- मन की कली खिलाओगे ।
साधर्मी छोटे भाई को, अपने गले लगाओगे ।।

महाजनों का भ्रम

मेहता और महाजन सारे, जिसदम उधर लखाते हैं ।
बिल्कुल सीधा-सादा-सा इक, बनिया सम्मुख पाते हैं ।।
कच्चे पड़ने लगे सभी वे, और सोचते मन ही मन ।
पता नहीं यह विनय मना कर, क्या मांगेगा निर्धन जन ?
अच्छे बने महाजन हम तो, जहां कहीं भी जाते हैं ।
वहीं मांगने वाले देखो, दौड़े-दौड़े आते हैं ।।
नहीं समझते संकट में खुद, आज हमारी नैया है ।
निकले हैं एकत्रित करने, हम भी वही रुपैया है ।।

ऐसे सोच-समझ कर बोले, साहस भंग न करना जी !
अवसर लख कर मांग हमारे, सम्मुख अपनी धरना जी !

□ कलेवा कीजिये

'खेमो' बोला—मेरी कुटिया, पावन आप बनाओ जी !
दूध कलेवा लिये बिना मत, आगे क़दम बढ़ाओ जी !
प्रात:काल भला क्या कोई, भाई ऐसे करता है ?
छोड़ पन्थ में भाई का घर, पद क्या आगे धरता है ?
यही विनय है मेरी तो बस, बड़े-बड़े सब शाहों से।
दूध कलेवा लेकरके ही, जाना इच्छित राहों से ॥
भाई हैं सब आप बड़े तो, मैं भी छोटा भाई हूं।
सभी स्वधर्मी भ्राताओं के, लिये सदा सुखदायी हूं ॥
भाई क्या जो भ्राताओं के, काम नहीं कुछ आता है।
पता नहीं यमदूत भूत या, ऊत और कहलाता है ॥
देख पसीना भाई का जो, अपना रक्त बहाता है।
वास्तव में विद्वानों द्वारा, वह भाई कहलाता है ॥
अधिक कहूं क्या आप बड़े हैं, भाई हूं बस छोटा मैं।
अर्पित करना चाह रहा हूं, प्रेम-भक्ति का लोटा मैं ॥

□ अभी नहीं, फिर

'खेमो जी' के विनय भरे ये, शब्द कान में पड़ते हैं।
हुआ उन्हें विश्वास, मांग तो- नहीं अर्थ की करते हैं ॥

कहा उन्होंने–'तुमने जो यह, भारी प्रेम दिखाया है।
रोम-रोम प्रत्येक व्यक्ति का, भाई जी ! हरषाया है ॥
भाई हो तो ऐसा ही हो, भ्राताओं को सुखदाई।
क्यों न धन्य हो पिता बताओ, क्यों न धन्य उसकी माई ॥

धन्यवाद हम देते तुमको, धन्य तुम्हारा जीवन है।
देख तुम्हारे प्रेम-प्यार को, गद् गद् सब का तन-मन है ॥
होता हर्ष हमें भी कितना, साथ अगर हम जा पाते।
सुन्दर सदन देखते, सब से, भ्रातृ-स्नेह भी पा जाते ॥
अत्यावश्यक कार्य हमें है, अतः शीघ्र ही जाना है।
करें क्षमा अतएव न हमको, कुछ भी पीना-खाना है ॥
पड़े हुए हैं हम उलझन में, सारे प्यारे भाई जी !
जाने में लाचार समझिये, संग तुम्हारे भाई जी !
आशा है मजबूर हमें अब, हरगिज़ नहीं बनायेंगे।
आया अगर कभी फिर अवसर, साथ आपके खायेंगे ॥

▭ प्रेम का प्रभाव

इसका 'खेमो जी' के मन पर, असर हुआ क्या कुछ उलटा।
शक्ति प्रेम की लगने से कर- सकती उलटे को सुलटा ॥

दुनिया तज कर 'वर्द्धमान' जब, होने लगे किनारे थे।
रुके नहीं क्या 'नन्दीवर्द्धन', के वे प्रेम-सहारे थे?
दो वर्षों के बाद 'वीर' ने, पंच महाव्रत धारे थे,।
देव-देवियों ने जन-जन ने, बोले जय के नारे थे॥
सती 'चन्दना जी' ने अपना सच्चा प्रेम दिखाया था।
लौट चले थे "महावीर जी", उनको फिर लौटाया था॥
'श्री थावर्चापुत्र' रुके थे, मातृ-प्रेम के ही नाते।
वरना जब वैराग्य जगा था, तब ही दीक्षित हो जाते॥

सच्चा प्रेम हमेशा अपना, रंग दिखाया करता है।
सच्चा प्रेम हमेशा कोमल, फूल खिलाया करता है॥
सच्चा प्रेम पंथ के कंटक, दूर हटाया करता है।
सच्चा प्रेम प्रेम की डोरी, नहीं कटाया करता है॥

□ आना ही होगा

'खेमो' बोला—'चाहे कुछ हो, आंगन पावन करना है।
किये बिना जलपान पांव भी, कभी न आगे धरना है॥
'चांपानेर' नगर से चलकर, आप महाजन आये हैं।
धन्य भाग ! जो घर बैठे ही, मैंने दर्शन पाये हैं॥

कौन किसी के घर आता है, कौन किसी के घर खाता।
साधर्मी वात्सल्य जोड़ता, प्रेम धर्म का यह नाता॥
बद्धाञ्जलि बन कर कहता हूं, आप नहीं इनकार करें।
धर्म-बन्धु की सादर विनती, हर्ष सहित स्वीकार करें॥

उत्तम आतिथ्य

ऐसा पक्का प्रेम देख कर, सभी विवश हो जाते हैं।
प्रेम और व्यवहार साधने, घर पर आखिर आते हैं॥
हर्ष भरे नयनों से खेमो, सच्चा स्वागत करता है।
रोटी-दही-मलाई-मक्खन, विधियुत सम्मुख धरता है॥

अतिथि-भावना

पाठ "अतिथिदेवो भव" वाला, यहां पढ़ाया जाता था।
भोजन आदर सहित अतिथि को, यहां खिलाया जाता था॥
भोजन से भी प्रेम भाव का, माना जाता ऊंचा स्थान।
ऊंची नहीं दुकान किन्तु वे, रखते थे मीठे पकवान॥
भारतीय मानस में 'चन्दन', अतिथि-भावना पलती है।
जैन भाइयों के घर पर क्या, नहीं वारियां चलती हैं?

दर्शन करने को जो आते, आते हैं क्या खाने को ?
खाना आप खिलाते उनको, धार्मिक प्रेम बढ़ाने को ।।
अतिथि-प्रेम से खा लेता है, चाहे हो रूखा-सूखा ।
भूखा प्रेम-भावना का वह, नहीं मिठाई का भूखा ।।
बिना सूचना मिले अतिथि का, आना माना है उत्तम ।
शुद्ध प्रेम से उसे खिलाना, माना है स्वागत सत्तम ।।

□ 'खेमो' की प्रशंसा

खाकर आखिर बोले सारे, धन्य ! तुम्हारी सेवा है ।
प्रेम भाव से प्रथम बार हो, ऐसा किया कलेवा है ।।
भोजन-सामग्री है सुन्दर, विनय और भी बढ़कर है ।
धर्म-भावना प्रेम-भावना, वह तो सब से चढ़ कर है ।।
भातृ-प्रेम के मधुर भाव को, नहीं भुलाया जायेगा ।
जायें हम अपने घर पर, प्रेम याद यह आयेगा ।।
सभी थकावट दूर होगई, तुम्हें तुम्हारे घर को लख ।
इन्द्रभवन क्या इसके आगे, कहते सारे घर को लख ।।

लिपा-पुता अति सुन्दर घर है, कहीं धूल का काम नहीं ।
साफ़ सफ़ाई नहीं अधूरी, मक्खी तक का नाम नहीं ।।

जहां-जहां तक भी अय खेमो ! दृष्टि हमारी जाती है।
सभी वस्तुएं पूर्ण व्यवस्थित, स्पष्ट सामने आती हैं॥
दीवारों पर रेत नहीं है, नहीं कहीं भी जाले हैं।
इससे लगता रहने वाले, श्रम से जीने वाले हैं॥
बिछे हुए ये दरी-ग़लीचे, मन को कितने भाते हैं!
अभी-अभी हों झाड़े मानो, स्वच्छ नज़र यों आते हैं॥
होता है अनुमान इसी से, अक़लमन्द सब घरके हैं।
करते नहीं पसन्द ज़रा भी, गर्त-गन्द सब घरके हैं॥

● घर के चित्र

टंगा चित्र अश्लील कहीं पर, नहीं दिखाई देता है।
घर भर का मन पावन प्यारा, यहीं दिखाई देता है॥

मित्रो ! चित्रों से पहचानो, मानस घर के स्वामी का।
किसी सदाचारी का घर है, अथवा घर खल-कामी का॥
गन्दे चित्रों से ही होता, गन्दा वातावरण सदा।
वातावरणों द्वारा बनता, बुरा-भला आचरण सदा॥
तन ढांका जाता वस्त्रों से, मन भी कुछ ढांका जाता।
परिधानों से नर-नारी का, अन्तर मन आंका जाता॥

शौच अशौच भाव का परिचय, अभिरुचि से हो जाता स्पष्ट।
कामुकता अस्पष्ट न रहती, चित्र-चयन विधि से संपृष्ट॥

□ अब जाने दो

तड़क नहीं है भड़क नहीं है, सदा सादगी प्यारी है।
इसी दृष्टि से सारे घर की, सुन्दर सज्जा भारी है॥
ऊंचे कुल की ऊंची बातें, किसको नहीं लुभायेंगी।
मिलने वाले महाजनों की, मन कलियां खिल जायेंगी॥
कहना रखा तुम्हारा हमने, अब तो हम को जाने दो।
काम अधूरा पड़ा अभी जो, उसे शीघ्र निपटाने दो॥

○ अब भोजन हो

'खेमो' बोला—'कष्ट जरा सा, यह भी और उठाना जो।
बनता है वह हलवा-पूरी, भोजन करके जाना जो!

बड़े प्रेम से आग्रह करके, सेठों को ठहराया है।
विधि से विविध तरह का भोजन, भक्ति सहित करवाया है॥

काम का नाम

बिठला कर सम्मान सहित फिर, खेमो वचन सुनाते हैं।
कौन कार्य से आप सभी मिल, सेठ कहीं पर जाते हैं ?
गोपनीय यदि बात नहीं हो, मुझको भी बतलावो जी !
निज सुख-दुख में लघु भाई को, हिस्सेदार बनावो जी !

एक बारी

बड़े प्रेम से सेठ सभी तब, सारी बात बताते हैं।
नहीं छिपाते कुछ भी उनसे, हृदय खोल दिखलाते हैं।।
चिट्ठे पर फिर 'खेमो' का भी, नाम लिखा उन सारों ने।
और बढ़ा कर हाथ, हाथ पर, दिया टिका उन सारों ने।।
यही सत्य है एक यहां से, बारी लेते जायेंगे।
सभी तरह से सेठ सुखी है, क्यों खाली लौटायेंगे ?
हमने इतना समय निकाला, कभी न निष्फल जाने का।
कितना अच्छा लाभ मिलेगा, हमें यहां पर आने का।।
यहां नहीं जो आते हम सब, बारी हमें न मिलनी थी।
चिन्ता से मुरझाई मुद्रा, नहीं कली सम खिलनी थी।।
आये नहीं, नहीं यह लाया, अपनी किस्मत ले आई।
सुख-दुख का यह सच्चा सांझी, मिला हमारा लघु भाई।।

▭ 'खेमो' की खुशी

नाम टोप में देख स्वयं का, फूला नहीं समाता मन।
संघ-समक्ष विनय से ऐसे, 'खेमो' बोला मधुर वचन॥
बहुत हर्ष है, साथ आपके- अपने को जो पाता हूं।
पूज्य पिता जी की आज्ञा ले, पास आपके आता हूं॥

○ पितृ-भक्ति

वैसे कहदूं जो कुछ भी मैं, कभी नहीं उलटाते वे।
मेरे किये हुए कामों पर, खुशियां खूब लुटाते वे॥
लेकिन एक पुत्र के नाते, मेरा है कर्त्तव्य यही।
जो कुछ भी मैं करूं ग़लत सब, जो कुछ भी वे करें सही॥
विना पिता जी की अनुमति के, काम नहीं मैं करता हूं।
जो कुछ भी वे देते आज्ञा, सिर-आंखों पर धरता हूं॥
जो कुछ भी है सारा उनका, मानो पुण्य-प्रताप सभी।
उनकी करुणा से ही घर पर, आये चल कर आप सभी॥
समझो मेरे जन्म-जन्म के, नष्ट होगये पाप सभी।
जैसा मुझे मिला है वैसा, उत्तम पाएं बाप सभी॥
दूर-दूर रहते मेरे से, क्लेश-कष्ट-संताप सभी।
प्रभु-गुरु-पिता नाम जपनेसे, हो जाते हैं जाप सभी॥

तीनों ही ये तीर्थ तुल्य हैं, देखो दुनिया नाप सभी।
उड़ जाता है धूआं बन कर, जीवन का अभिशाप सभी ॥
पूज्य पिता जी का पद प्यारा, पुत्रों को सुखदाता है।
मुझको तो प्रत्येक कार्य में, स्मरण प्रथम हो जाता है ॥

ऐसे कहकर उठकर सीधा, पास पिता के जाता है।
विनयभाव से चरण-कमल में, सादर शीश झुकाता है ॥
घर पर आये हुए संघ का, सारा हाल सुनाता है।
जाति राष्ट्र की शुभ सेवा का, आया समय बताता है ॥
आज देश गुजरात-गगन पर, दुख के बादल मंडराये।
बड़े-बड़े ये सेठ लोग सब, चल कर अपने घर आये ॥
पड़ा देख दुर्भिक्ष भयंकर, इनसे सहना मुश्किल था।
जनता की पीड़ा के सम्मुख, चुपके रहना मुश्किल था ॥
नाम काम आराम छोड़कर, अलख जगाते फिरते हैं।
दुखियों के ये दर्दी दर-दर, कर फैलाते फिरते हैं ॥

मांगा नहीं इन्होंने मुझसे, मैंने ही पर पूछ लिया।
ऐसे आने का क्या कारण ? कुछ हिम्मत कर पूछ लिया ॥
जैसी भी हो आज्ञा मुझको, पूज्य पिता जी! दो फ़रमान।
घर पर इतने सेठ पधारे, इनका जैसे हो सम्मान ॥

□ पावन प्रेरणा

कहा पिता जी ने—अय खेमो ! तेरा भाग्य सवाया है।
घर बैठे ही ऐसा उत्तम, अवसर कर में आया है॥
गया किसी के साथ नहीं धन, नहीं किसी के जायेगा।
इससे सेवा करने वाला, बुद्धिमान कहलायेगा॥
गया हुआ धन तो अय बेटा ! संभवतः मिल जाता है।
लेकिन बीता हुआ समय क्या, हाथ किसी के आता है ?
मेरे मन के दीप प्रज्वलित ! मेरे नयन सितारे हो !
धर्म-जाति-कुल-राष्ट्र-जगत की, पुत्र ! लाज रखवारे हो !
जितना भी ले सके लाभ तू, ले लेना ही उत्तम है।
भरे ख़ज़ाने खोल आज सब, दे देना ही उत्तम है॥
नहीं अर्थ का अर्थ अगर वह, सेवा करने में असमर्थ।
अर्थ कमाना, भरा ख़ज़ाना, जाना जाता सारा व्यर्थ॥
जा जल्दी कर हाथों से यह, चला नहीं जाये अवसर।
अगर-मगर का काम नहीं है, हो जायेगा नाम अमर॥

□ एक नहीं तीन सौ साठ

पूज्य पिता जी की शिक्षा सुन, फूला नहीं समाया है।
पितृ-चरण में प्रणमन करके, हर्षित होकर आया है॥

लेकरके तब चिट्ठा उसने, अपनी क़लम चलाई है।
लिखी तीन सौ साठ बारियां, टीप उन्हें पकड़ाई है॥

▫ दुबारा लिखिये

चकित होगये सभी महाजन, 'खेमो' ने क्या खाई भांग।
इतनी लिखी बारियां जिनकी, कभी न कोई करता मांग॥
नगरसेठ जी बोले—'खेमो! अपने मन को स्वस्थ करो।
समय और सामर्थ्य सोच कर, बारी में निज नाम भरो॥
भावुकता में बहकर ऐसा, कदम उठाना ठीक नहीं।
चिन्तन ही देते हैं केवल, दे सकते हम सीख नहीं॥
सौ दो सौ की बात नहीं है, लाखों जन ही खायेंगे।
लिखो एक भी बारी तो हम, फूले नहीं समायेंगे॥
बोझ उठाना एक वर्ष का, खेल नहीं है बच्चों का।
सुनते ही बस कांप कलेजा, उठता अच्छे अच्छों का॥

बारी एक लिखना भी तो, किसी बड़े दानी का कार्य।
बारी एक बर्ष की पूरी, आप लिखाते हो अनिवार्य॥
लाखों और करोड़ों का ही, खर्चा करना है भारी।
सोच-समझ कर लिखवाते हैं, अपनी बारी संसारी॥

रहने दीजिये

वोला 'खेमो'–लिखा गया जो, कृपया उसे करो स्वीकार।
दानी नहीं, नहीं अभिमानी, मैं हूं सेवा का हकदार॥
सारी दुनिया स्वार्थ-पूर्ति हित, खर्च वहुत हो करती है।
पता नहीं परमार्थ कार्य में, व्यय करते क्यों डरती है॥
पर-उपकार-परायण नर ही, नर-पुंगव कहलायेगा।
देगा नहीं यहां पर जो वह, आगे जा क्या पायेगा?

पुरुषों के प्रकार

चार जाति के पुरुष वताते, हमें हमारे जैनागम।
उत्तम, मध्यम, अधम, नीच यों, भेद मिटाता मन का भ्रम॥
दयाधर्म में देता ज्यादा, अपने हेतु लगाये कम।
इस दुनिया में 'चन्दन मुनि' वह, दानी सज्जन 'सर्वोत्तम॥'
पुरुष दूसरा अपनी खातिर, जैसे खूव खरचता धन।
वैसे ही वह दयाधर्म में, नहीं संकुचित करता मन॥
पुरुष तीसरा अपने हित तो, रखता चित्त विशेष उदार।
दयाधर्म में अपने धन का, करता नहीं कहीं व्यवहार॥
चौथा पुरुष न खाता-पीता, नहीं दया में देता धन।
मुष्टिवद्धता द्वारा अपना, दिखला देता मूंजीपन॥

अन्तिम दोनों की गिनती में, मुझे कभी मत आने दें।
'उत्तम' बनना सरल नहीं है, 'मध्यम' तो बन जाने दें॥
प्राप्त हुए इस शुभ अवसर का, कुछ तो लाभ उठाने दें।
'चन्दन' सेवा से तन मन धन, जीवन सफल बनाने दें॥
ऐसे कहकर सब को घर के, अन्दर वह ले जाता है।
बना हुआ था भारी "भौंरा", खोल द्वार दिखलाता है॥

पड़े ढेर के ढेर जवाहर, हीरे मोती लाल वहां!
पता नहीं कुछ कितने अरबों, खरबों का था माल वहां!!
एकत्रित धनराशि देखकर, चकित होगये सेठ सभी।
इतनी माया एक स्थान पर, देखी हमने नहीं कभी॥

बोला 'खेमो'–हाथ और दिल- खोल उठाओ दौलत ये।
मत सकुचाओ चाहे जितनी, लेते जाओ दौलत ये॥
दीन-दुखी के काम लगाओ, सफल बनाओ दौलत ये।
मांग रहा जब देश हमारा, क्यों न उठाओ दौलत ये॥
लिये जाति के लिये देश के, अर्पण है जीवन सारा।
कहो मूल्य क्या रखता है फिर, धन तो है जड़ बेचारा॥

इस धन से इस जाति देश की, सदा सुरक्षित शान रहे।
दयाधर्म कब सिखलाता है, औरों पर अहसान रहे॥
सम्यग् दृष्टि समझता रहता, आत्माओं को सदा समान।
इसीलिये तो दयाधर्म से, उसे नहीं होता अभिमान॥

□ छोटा भाई है या बड़ा?

बात सुनी-जब 'खेमो जी' की, सेठों साहूकारों ने।
दांतों तले दबाई अंगुलि, सारे उन दातारों ने॥
लगे सोचने माया जिसकी, अरबों से भी ज्यादा है।
लेकिन उसका जीवन कितना, ऊंचा सीधा-सादा है॥
दौलत पाई दिल भी पाया, दुर्लभ मणि-कांचन संयोग।
सोच न सकते समझ न सकते, आश्चर्यान्वित हैं हम लोग॥
शक्तिमान पर भक्तिमान हो, यही यहां आश्चर्य महान।
देखा क्या धनवान कहीं पर, विनयवान बन देता दान?
जल से भरा घड़ा जो होता, शब्द नहीं करता बिल्कुल।
आधा घट ही छलक-छलक कर, दिखलाता लोगों को जल॥

□ बड़ों का रूपक

बड़े बड़ी मुश्किल से बनते, आदर यहां बड़ों का है।
वृक्ष फूल फल देता 'चन्दन', पूर्ण प्रभाव जड़ों का है॥

इस धन से इस जाति देश की, सदा सुरक्षित शान रहे।

एक बड़े हलवाई जी ने, इक दिन बड़े बनाये थे।
पास मिठाई-थालों के ही, उनके थाल सजाये थे॥

जो भी गाहक आता, कहता- अजी! दीजिये चार बड़े।
चार और भी देदो ये तो, बड़े स्वाद हैं यार ! बड़े॥
आज आपने हलवाई जी ! खूब किये तैयार बड़े।
नहीं कभी भी खाए हमने, ऐसे नक़द-उधार बड़े॥
जी करता है खाते जाएं, तेरे बारम्बार बड़े॥
बने हुए हैं आज हाट में, रौनक और बहार बड़े।
दूर-दूर से आते दौड़े, लेने को नर-नार बड़े॥
नहीं मांगते बर्फी-पेड़े, सब को हैं दरकार बड़े।
ऋषि मुनि संन्यासी भी खाते, खाता सब संसार बड़े॥
आहें भरते कितने देखे, देख-देख बीमार बड़े।
बालक बूढ़े युवा सभी से, पाते हैं सत्कार बड़े॥
नहीं मिठाइयां मन को भातीं, पाते जायकेदार बड़े।
सभी मिठाइयों से हैं बढ़कर, सब में हैं सरदार बड़े॥
पता नहीं क्या खुशियों के हैं, ऐसे ये भण्डार बड़े।
बने हुए प्रत्येक व्यक्ति के, दिल के जो दिलदार बड़े॥

मिठाइयों का क्रोध

आये जितने लोग बड़े हो, लेने को बस आये थे।
बड़े दीजिये—बड़े दीजिये, ऐसे शब्द सुनाये थे॥
सभी मिठाइयां गर्म होगई, नाम बड़ों का सुन करके।
लगी बड़ों से कहने ऐसे, गुस्से में जल-भुन करके॥
बनी हुई हम घी से फिर भी, कहता कोई नहीं बड़ी।
बने तेल के बड़े तुम्हें ही, कहती दुनिया घड़ी-घड़ी॥
क्या है अरे! बड़प्पन तुम में, बैठे हो जो तन करके?
दो कौडी के बिकते दो-दो, सदा तेल में बन करके?

बड़ों का उत्तर

कहा बड़ों ने—बड़बड़ बहनों! क्यों यह व्यर्थ लगाई है।
बड़े बड़े जब कष्ट उठाये, पदवी तब यह पाई है॥
पहले तो हम मूंग मर्द थे, बन गए नारी दलने से।
सारी रात भीगकर जल में, खाल खिंचाई मलने से॥
सिल-बट्टे के नीचे पीछे, अपने को पिसवाया था।
नया जनम ले करके मानो, पीठी नाम रखाया था॥
कसर अभी भी बाकी होंथी, बहनों! सुनो तबाही में।
तप्त तेल से भरी हुई जो, डाला हमें कड़ाही में॥

इतने पर भी कष्टों का कुछ, अन्त नहीं हो पाया था।
शूली की-सी तीक्ष्ण नोक पर, हमको हाय ! चढ़ाया था ।।
आह न की परवाह न की कुछ, नहीं कभी भी घबराये।
शूली से जब नीचे उतरे, बड़े-बड़े हम कहलाये ।।

८ 'खेमो' बड़ा है

विना दान के विना धर्म के, बड़े नहीं बन पाते हैं।
बड़े-बड़े जो कष्ट उठाते, बड़े वही कहलाते हैं ।।
देश धर्म हित कष्ट जिन्होंने; जग में नहीं उठाया है।
ऐसे लोगों ने धरती पर, नहीं बड़ा पद पाया है ?
बड़े मनुष्यों के जीवन की, बात निराली होती है।
पर उपकृति करने की अपनी, आदत डाली होती है ।।
वाणी में माधुर्य अहर्निश, मन में उनके चैन सदा।
जैसे भी हो भला जगत का, करते हैं दिन-रैन सदा ।।
झुक कर दान दिया करते हैं, पावस ऋतु में मेघ सजल।
फल देने के खातिर ही तो, झुक जाते हैं वृक्ष सफल ।।

'खेमो' जैसा दिल का दानी, कहीं न देखा भाला है।
लाल गोदड़ी का यह पाया, हमने आज निराला है ।।

दर्शन करवा दो

बोले सारे सेठ—सेठ ! से, धन्यवाद के अधिकारी।
जितने मालदार हो उतने, सीधे-सादे हो भारी ॥
लेकिन जिसने ऐसा अद्भुत, हीरा बेटा पाया है।
मिलने का उस बड़े सेठ से, सब का मन हो आया है ॥
इतना कष्ट उठाया है तो, इतना और उठावो जी।
पूजनीय चरणों के मंगल- दर्शन हमें करावो जी !
सारे ही हम हैं उत्कंठित, देरी नहीं लगावो जी !
मनोभावना सफल बनाकर, मन की कली खिलावो जी !

पिता जी के पास

पास पिता जी के उन सब को, 'खेमो जी' ले आता है।
शाहों से भी बड़े शाह के, शुभ दर्शन करवाता है ॥
दिव्यात्मा के दर्शन पाकर, फूले नहीं समाते सब।
'जयजिनेन्द्र' बोलकर सविनय, अपना शीश झुकाते सब ॥
विविध तरह की बातें करके, मन का मोद बढ़ाते सब।
बीच-बीच में उनकी सुनते, अपनी बात सुनाते सब ॥
दानवीरता उनकी, उनके, सुत की फिर बतलाते सब।
मन ही मन में वृद्ध सेठ जी, जाते थे सकुचाते तब ॥

सेठों ने आभार सेठ का, बहुत-बहुत ही माना है।
कहा विनय से—पास आपके, सफल हमारा आना है॥
भाग्यशील हम, हमें हमारे,- पुण्य यहां ले आये हैं।
धन्य ! आपके पुत्र जिन्होंने, दर्शन आज कराये हैं॥

आते अगर न पास आपके, तो कैसे बल होता प्राप्त।
अल्प समय में काम हमारा, हो सकता था नहीं समाप्त॥
मुक्त किया है चिन्ताओं से, सिर से बोझ हटाया है।
चले किसी शुभ सायत में थे, जिसने मेल मिलाया है॥
'खेमो' सचमुच क्षेमंकर है, नहीं दूसरा ऐसा नर।
सेवा, दान, भक्ति से धन से, जो समता सकता हो कर॥
आप सरोवर कमल फूल ये, आप पेड़ तो हैं ये फल।
अगर आप हैं मेघ निराले, ये हैं उसका शीतल जल॥
जैन-गगन के चांद आप हैं, तो ये तेज सितारे हैं।
इनके जैसा भाई पाया, जागे भाग्य हमारे हैं॥

○ हम सेवक हैं

कहा सेठ ने—'सेठों ! हमको, लज्जित नहीं बनाओ जी !
सेवक हैं हम आप सभी के, सेवा कुछ बतलाओ जी ?

गांव निवासी भाई हम हैं, हमको नहीं भुलाओ जी !
फिर भी अपने चरणों से यह, पावन कुटी बनाओ जी !
बूढ़ा हूं, दो क़दम आपके, साथ नहीं चल पाऊंगा।
बैठा-बैठा अतः यहां से, मैं जिनदेव मनाऊंगा ।।

'जय जिनेन्द्र' बोलते सारे, हाथ जोड़ कर जाते हैं।
स्नेह सरलता देख सेठ की, फूले नहीं समाते हैं ।।

○ एक विनय है

लौटे 'खेमो जी' को लेकर, बोले हाथ जोड़ कर सब।
एक विनय यह मान लीजिये, आग्रह-बुद्धि छोड़ कर सब ।।
सादा-सा साधारण-सा यह, अपना वेश उतारें अब ।
स्वच्छ, सुरम्य, नवीन, क़ीमती, कपड़े तन पर धारें अब ।।
कहना इतना और मानिये, जब सब कहना माना है।
बादशाह के पास आपको, हमें अभी ले जाना है ।।

बड़े विनय से 'खेमो' बोला, जाना है तो जाऊंगा।
वेश नहीं बदलूंगा अपना, क्षमा आपसे चाहूंगा ।।
इसी वेश में सजता हूं मैं, इसीलिये यह रहने दें।
कोई कुछ भी अगर कहेगा, उसे खुशी से कहने दें ।।

कहा 'चांपसी मेहता' ने यों, बड़ा वेश होता या गुण।
अच्छे कपड़ों द्वारा वोलो, क्या ढंके जाते अवगुण ?
स्वच्छ वस्त्र से स्वच्छ चित्त की, समझो है कीमत भारी।
'खेमो जी' की सेवाओं से, लाभान्वित हों नर-नारी॥

▭ 'चांपानेर' का बाजार

एक पालकी में 'खेमो' को, आग्रह युत विठलाते हैं।
चल कर 'चांपानेर' नगर में, सारे खुश-खुश आते हैं॥
शाहों के सिरमौर 'शाह' के, जन जव दर्शन पाते हैं।
जय-जयकार बुलाते सारे, फूले नहीं समाते हैं॥
चला 'चांपसी मेहता' मिलकर, चले नगर के शाह सभी।
'खेमो' को ले चले मान से, राजसभा की राह सभी॥
देख रही है इनको जनता, मन में भर-उत्साह सभी।
वादशाह के पास जा रहे, मिल कर सारे 'शाह' सभी॥

▭ वादशाह और शाह

जव पहुंचे सव राजसभा में, बादशाह ने किया सवाल।
कैसे आये नगर सेठ जी ! आप सभी हैं तो खुशहाल ?

हुआ प्रसन्न हृदय है मेरा, आप सभी को देख यहां।
यहां नहीं थे क्या इतने दिन, गये हुए थे आप कहां?
नगरसेठ के बिना सभा का, रहता पड़ा अधूरा काम।
मिलकर सारे आज पधारे, कहदो योग्य काम का नाम॥

□ यह बात है

नगरसेठ 'श्री खेमो' को तब, अपने आगे करते हैं।
बड़े विनय से बादशाह से, मधुर वचन उचरते हैं॥
नामदार! ये सेठ साल का, सारा बोझ उठायेंगे।
सूखा पीड़ित लोगों को नित, खाना मुफ्त खिलायेंगे॥
सारे हो 'गुजरात देश' को, देंगे ये जीवन का दान।
यही निवेदन करने आये, सुनिये प्यारे अय सुलतान!

□ गांव कितने हैं?

पतले-दुबले एक वणिक को, जिसदम सम्मुख पाते हैं।
देख सादगी बादशाह तो, विस्मित हो रह जाते हैं॥
वस्त्र नवीन नहीं है तन पर, डाला नहीं दुशाला है।
अंगूठी पहनी न हाथ में, नहीं गले में माला है॥

मोड़-मरोड़ नहीं पगड़ी में, लगा हुआ धोती में जोड़।
शाहों का सिरमौर शाह यह, देगा कमर कहत की तोड़?
मुझे बनाया जाता है या, है वास्तव में बात सही?
कैसे झूठी मानी जाये, 'मेहता' ने जो बात कही।।
क्या इन गुजराती गांवों में, बसते ऐसे-ऐसे सेठ!
शहरी सेठों के हो जाते, केवल मोटे-मोटे पेट।।
लक्ष्मी गांवों में रहती है, शहरों में है आडम्बर।
इसीलिये श्री नगर सेठ ने, दिया इसे पहला नम्बर।।

बादशाह ने पूछ लिया है, कितने गांव आपके नाम।
नाम आपका क्या है 'चन्दन', और आप क्या करते काम।।

□ पली और पायली

'खेमो' बोला—नामदार जी! पास गांव दो रखता हूँ।
बड़े अनोखे बिना भूमि के, खास गांव दो रखता हूं।।

खोल गठड़िया पली, पायली, उनको तब दिखलाता है।
मेरे हैं दो गांव यही बस, साफ़-साफ़ समझाता है।।
तेल और घी इसी पली से, ग्राहक गण को देता हूं।
और अनाज पायली से मैं, माप-माप कर लेता हूं।।

लेता दाम नहीं मैं ज्यादा, ठग्गी का कुछ काम नहीं।
सारी बरकत इन दोनों की, क्या ये मेरे ग्राम नहीं?
पत्नी, पायली की करुणा से, भरा हुआ मेरा भण्डार।
धर्म, शर्म, सत्कर्म, नर्म का, टिका हुआ इन पर व्यवहार॥

पूज्य पिता जी जीवित मेरे, दया धर्म के जो भण्डार।
मैं चलता हूँ उसी मार्ग पर, कुल-पुरुषों का जो व्यवहार॥
सात पीढ़ियों से इस कुल में, व्यसन नहीं आया कोई।
राज, समाज, व्यक्तियों द्वारा, घृणित न कहलाया कोई॥
सदाचार से प्यार निरन्तर, इसीलिये व्यवहार-कुशल।
अकुशल पलता आस-पास जब, खेला जाता हो छल-बल॥
नियत समय पर सात्विक भोजन, जल से जीवन मिलता है।
अति सिंचन से क्या फूलों का, कोमल जीवन खिलता है?
वही सुखी रह सकता जिसका, मर्यादित आहार-विहार।
किंचित हुआ अमर्यादित वह, पड़ ही जाता है बीमार॥
पूज्य पिता जी से, प्रभुवर से, मिलता मुझे सहारा है।
सत्य, शील, सन्तोष, दयामय, धर्म अहिंसा प्यारा है॥

सेवक हूं मैं सब शाहों का, देते ये सम्मान बड़ा।
बादशाह के सम्मुख लाकर, किया गया है मुझे खड़ा।

बड़ा नहीं हूं बड़ा बनाया, बड़े-बड़े इन लोगों ने।
आज आप से मिलवाया है, आकस्मिक संयोगों ने॥
समझ रहा मैं भाग्यवान हूं, सेवा का अवसर पाकर।
मेरा नहीं स्वभाव समझिये, मिलना यों आगे आकर॥

□ पास विठा लिया

नामदार जी चकित होगए, सुनकर 'खेमो जो' की बात।
बिठलाया है पास आपके, पकड़ प्रेम से दोनों हाथ॥
भरी सभा में वादशाह ने, उनकी खातरदारी की।
'चन्दन' सत्य प्रशंसा ऐसे, खुश-खुश होकर भारी की॥

कितने सुखी और फिर कितने, कुलाभिमानी होते हैं।
बिल्कुल सीधे-सादे बनिये, ऐसे दानी होते हैं॥
देख-देख दिल दानी-मानी, पानी-पानी होते हैं।
दानी दयावान नर कोई, क्या कटु वाणी होते हैं?
होने को इस जग में कितने, राजा रानी होते हैं।
मगर उन्हीं से एक शाह ही, बस लासानी होते हैं॥
यों तो दुनिया में अनगिनती, पण्डित ज्ञानी होते हैं।
दान दया के बिना न कोई, धर्म निशानी होते हैं॥

जो प्राणों से धन प्रिय कहते, पामर प्राणी होते हैं।
लोभ-जाल में फंसे हुए नर, कौड़ी कानी होते हैं॥
कर्त्तव्यों को भूल गये वे, उलझी तानी होते हैं।
अन्त समय में याद उन्हें ही, नाना-नानी होते हैं॥

▭ शाह बड़ा

बादशाह है "शाह" बाद में, खेमो जी ! तुम शाह बड़े।
देश जाति की लाज बचाने, लेकर जो उत्साह खड़े॥
मात-पिता हैं धन्य ! आपके, धन्य ! धरा गुजरात हुई।
कही कभी थी 'चारण' ने जो, 'चन्दन' सच्ची बात हुई॥

आगे और बोलते ऐसे, जीवन वे चमकायेंगें।
जीव-दया के साथ पुरुष जो, दान-धर्म अपनायेंगें॥
भूखे को दे पहले भोजन, पीछे ही खुद खायेंगें।
मेरा है विश्वास फूलते- फलते वे नित जायेंगे॥
सुखी सभी हैं शाह घरों में, सब को फिर सुखदाई हैं।
नज़र हस्तियां हमको ऐसी, नहीं कहीं पर आई हैं॥
'शाह' आप हैं सारे सच्चे, सच्चे सारे भाई हैं।
बादशाह उन सब शाहों की, करते बहुत बड़ाई हैं॥

कहलाते हो 'शाह' सदा से, कहलाते ही रहना है।
सारी वणिक जाति के खातिर, बादशाह का कहना है॥

▫ सेवा कार्य

शाह सभी सम्मानित होकर, चले गये निज स्थानों को।
लगा खिलाने खाना 'खेमो', क्षुधा-व्यथित इनसानों को॥
क्षुधा-तृषा से पीड़ित होकर, त्याग रहे जो प्राणों को।
शान्ति मिली उन सब के मन को, उनकी प्यारी जानों को॥
मोती के दानों से बढ़कर, गिनो अन्न के दानों को।
ज्ञान-दान भी देता 'खेमो', क्षुत्पीड़ित सन्तानों को॥
नगर-नगर में गांव-गांव में, अन्नालय खुलवाये हैं।
पूर्ण व्यवस्था करने को फिर, सच्चे लोग लगाये हैं॥
पल्ला जो फैलाते आये, खाली कभी न लौटाये।
लौटाये मरघट से मानो, जीवन ज्यों-त्यों बच जाये॥
एक वर्ष तक अन्न-दान कर, भारी लाभ कमाया है।
भूख-प्यास से दिया न मरने, सारा देश बचाया है॥

पशुओं ने भी पाया चारा, मरे नहीं वे भी भूखे।
किस्मत में थे चाहे उनके, तूड़ी या टांडे सूखे॥

मिला पंक्षियों को भी दाना, गाना यश का वे गाते।
दाना-पानी इन्हें न मिलता, तो बेचारे मर जाते ॥

मूक प्राणियों की सेवा का, लाभ नहीं होता है कम।
मात्र मानवों की सेवा का, देता क्या उपदेश धरम ?
जगज्जन्तुओं की सेवा का, धर्म पढ़ाता उत्तम पाठ।
भूत मात्र से मैत्री ही तो, माना जाता धर्म विराट ॥
सभी सुखाकांक्षी हैं प्राणी, सुख पहुँचाओ करो दया।
अवसर पर श्री जिनवाणी से, 'चन्दन' क्या चुप रहा गया ?

▫ 'खेमो' ही था

'खेमो' ही था जिसने इतनी, दौलत का यों त्याग किया।
'खेमो' ही ने प्राणि-मात्र के- साथ शुद्ध अनुराग किया ॥
'खेमो' ही था जिसने ऐसा, रोशन ज्ञान-चिराग किया।
जन्म-भूमि 'गुजरात देश' का, हरा-भरा फिर बाग किया ॥
जाति धर्म पर देश धर्म पर, कर डाला सब न्योछावर।
वीर-बहादुर नर 'खेमो जो', गूंज रहा घर-घर से स्वर ॥
मिट्टी का कण-कण है मानो, कहता 'खेमो जो' सोल्लास।
उपकारी को भूल न सकता, भारत का सुन्दर इतिहास ॥

यश जीवन है अयश मरण है, उक्ति यहां होती चरितार्थ।
'चन्दन मुनि' संगीतों द्वारा, समझाया करता भावार्थ॥
दया दान की सच्ची महिमा, समझाने का किया प्रयास।
धर्मी बनने वाले सज्जन; पहले यही करें अभ्यास॥

'चन्दन मुनि' की शिक्षा मानो, करना दान, नहीं अभिमान।
अगर किया अभिमान दान का, दूषित होगा दान-विधान॥
जीवन सुखी बनाने की यह, कुंजी बतलाता 'चन्दन।'
दानी बन कर 'श्री जिनेन्द्र' के, चरणों में करिये वन्दन॥

□ रचना-काल

दो हजार तेवीस विक्रमी, 'बरनाला' में चातुर्मास।
श्रद्धा-भक्ति-धर्म पर बढ़ता, श्रोताओं का दृढ़ विश्वास॥
जय जिनवर की, जैनधर्म की, जोर लगा करके बोलो।
'चन्दन' की आवाज आरही, मत सोवो आंखें खोलो॥

० २५ ०

यात्रा-संगीत

○

द्वन्द बना करता माया से,
यात्रा से मिलता आनन्द !
'चन्दन' जीवन ही जब यात्रा,
यात्रा कैसे होगी बन्द !

○

विहार-पथ के नगरों में उपदेशामृत का पान करने के लिये हजारों नर-नारी प्रवचन सभा में पहुँच जाया करते थे

□ २५ □ यात्रा-संगीत

□ जीवन एक यात्रा

वास्तव में यह सारा जीवन, यात्रा ही कहलाता है।
जब से जनमा तब से मानव, यात्रा करता आता है॥

लेकिन जैन-साधु का जीवन, पाद-विहार प्रधान रहा।
चरण-करण सयुत विहरण से, देना ज्ञान महान कहा॥

धन्य सन्त वे लम्बी-लम्बी- यात्रायें जो करते हैं।
सत्य-सूर्य चमका कर छाया- मिथ्यात्वों को हरते हैं॥

नहीं पहनना पग में जूते, करना नहीं सवारी फिर।
जैन-सन्त क्या करते देखो, स्वर्ण-छत्र की छाया सिर?

लेकिन अधिक न दूर देखलो, आस-पास ही हम घूमे।
फिर भी जहां-जहां घूमे हैं, पड़ीं वहीं पर बस घूमें॥

तीन-चार उन यात्राओं का, यत्किंचित है हाल लिखा।
लिखा गया संक्षिप्त परन्तु, करके खूब ख़याल लिखा॥

प्रिय पाठक-गण! बड़े प्रेम से, पढ़ना और पढ़ाना जी!
शिक्षा पाना लाभ उठाना, जीवन शुद्ध बनाना जी!
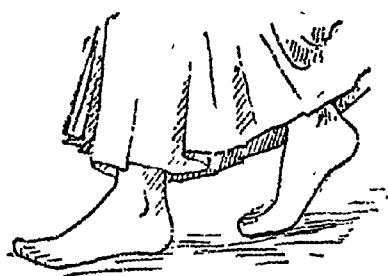
□ १ □

दुआबा देखा

□ आंखों देखा हाल

हमने प्रथम दुआबा देखा, डेढ़ वर्ष का जोखा-लेखा।
चक्कर खूब लगाकर देखा, जीवन सुप्त जगाकर देखा॥
कसबे, शहर निराले देखे, उनमें रहने वाले देखे।
जाट, मुसलमां, लाले देखे, हुक्के के मतवाले देखे॥

लगड़े, लूले, अन्धे देखे, रोगी, सोगी, गन्दे देखे।
हाहाकार मचाते देखे, फिर भी धुआं उड़ाते देखे॥

तेली, दर्जी मेहतर देखे, धोबी, नाई, ज़रगर देखे।
बाबू, मुन्शी, नौकर देखे, छोटे-मोटे अफ़सर देखे॥
पेट ब-मुश्किल भरते देखे, गुड़गुड़ लेकिन करते देखे।

किस-किस का हम हाल सुनायें, नज़र जिधर भी आप घुमायें।
मिल जायेंगे हुक्काबाज़, पण्डित, पीर, सराफ़, बजाज।

बड़ी एक हैरानी देखी, वहम भरी जिन्दगानी देखी।
पुजती मड़ी-मसानी देखी, दुनिया यह दीवानी देखी।
दूर-दूर तक जाते देखे, काफ़ी कष्ट उठाते देखे।
देवी-दर्शन पाते देखे, मस्तक खूब घिसाते देखे।

जेंटिलमैन निराले देखे, फ़ैशन के मतवाले देखे।
फिल्मों के दीवाने देखे, फ़िल्मी गाते गाने देखे।
और बतायें क्या-क्या देखा, पूरा प्रस्तुत करदूं लेखा।
कितना भी मैं लिखदूं चाहे, पूर्ण न होगी वर्णन-रेखा।

□ प्राकृतिक सुषमा

वसुधा वहां तरावट वाली, रहती है हरदम हरयाली।
हरी-भरी हर अंगुआ डाली, फुदके-चहके कोयल काली।

तरह-तरह के बेलें-बूटे, खड़े हुए हैं बड़े अनूठे।
दिलकश खूब वहां नज्ज़ारे, बिछा हुआ है सब्ज़ा सारे ॥
बाग़ समान मनोहर वन है, मस्त मोर का होता मन है।
वन जीवन का सच्चा धन है, मिलता स्वच्छ प्रकाश पवन है ॥
आते नज़र पहाड़ कहीं हैं, ऊंचे बेशक बहुत नहीं हैं।
दिखला अपनी शान रहे हैं, सब को कर हैरान रहे हैं ॥

□ 'जेजों' को 'घोलो'

'जेजों' नगर पहाड़ी ऊपर, चौमासा इक किया वहां पर।
छोटे से दो जैनी स्थानक, करने को पौषध सामायिक ॥
छोटे-बड़े सभी नर-नारी, सन्तों सतियों के हितकारी।
छोटा सा यह एक नगर है, भक्ति-भावना बहुत मगर है ॥
कभी यहां थी रौनक भारी, आते खद्दर के व्यापारी।
अब यह बिल्कुल बात सही है, रौनक सारी सिमट रही है ॥

देखे वहां बहुत ही बन्दर, भरी शरारत जिनके अन्दर।
पल में आते, पल में जाते, दिन भर रहते धूम मचाते ॥
इनकी आदत ऐसी खोटी, नहीं तवे की छोड़ें रोटी।
जो भी वस्तु नज़र में आई, आंख बचाई और उड़ाई ॥

फिर तो हाथ भला क्या आना, व्यर्थ वाद में शोर मचाना।
है स्थानीय निराली बोली, लोग इसे कहते हैं 'घोली'॥
दुर्भर खाना दुर्भर पीना, लोगों का है ऐसा जीना।

□ 'नवांशहर'

'नवांशहर' भी इक चौमास, हुआ धर्म का बहुत प्रकाश।
हैं धनपात्र जैन जन अच्छे, भक्तिमान हैं बूढ़े-बच्चे॥
सोलह घर हैं जैनी सारे, स्थानकवासी पक्के प्यारे।

□ 'फगवाड़ा'

क्षेत्र अन्य भी देखे अच्छे, धर्म-भावना वाले सच्चे।
घूम-घाम 'फगवाड़ा' आये, भक्ति देख कर मन हर्षाये॥
थोड़े से घर जैन अगर हैं, रखते श्रद्धा बहुत मगर हैं।
प्रातः प्रवचन नित करवाते, रौनक भारी लोग लगाते॥
स्थानक भी है साताकारी, करते धर्म जहां नर-नारी।
शूगर-मिल है यहां निराला, धूएं से जन जीवन काला॥
काम वहां पर सभी मशीनी, दानेदार बने नित चीनी।
देर न कुछ भी लगने पाती, मिन्टों में बोरी भर जाती॥

वर्षा ऋतु के दिन जब आते, मोटे मच्छर गज़ब दिखाते।
मच्छरदानी लोग लगाते, सुख को नींद तभी सो पाते।

मण्डी है नव नगर पुराना, दोनों ने मिल जल्दी जाना।

ज्योतिषियों को जो अति प्यारी, रची "मेघमाला" गुणकारी।
वैद्यों को जो प्रिय अत्यन्त, "मेघविनोद" बनाया ग्रन्थ।
वैसे वैद्य नहीं थे दूजे, "पूज्य" नाम से जग ने पूजे।
जैन यतीश्वर मेघ ऋषीश्वर, देर हुई है हुए यहीं पर।

□ 'होशियारपुर'

'होशियारपुर' देखा जाकर, आए भाषण खूब सुनाकर।
यही निकाला हमने सार, लोग यहां के हैं हुशियार।
"जैन स्थानक" बहुत बड़ा है, नगरी के जो बीच खड़ा है।
सौ के लगभग जैनी घर हैं, जैनधर्म में जो तत्पर हैं।
है यह काफी नगर पुराना, नव भवनों से लगे सुहाना।
जिनमें रौनक रहे अपार, लम्बे-लम्बे हैं बाज़ार।
नदिया का जो देता धोखा, "चोआ" नगरी निकट अनोखा।
छोटे-छोटे पास पहाड़, मानों पुर के पहरेदार।

"बंगा"

देखा क्षेत्र अन्य इक 'बंगा', भक्ति-भावना से जो रंगा।
पन्द्रह-बीस यहां घर सारे, जैनधर्म अनुयायी प्यारे।
छोटा सा है नहीं बड़ा है, नगरी के जो मध्य खड़ा है।
स्थानक भी वह साताकारी; जिसकी शोभा सचमुच न्यारी।
कभी-कभी चौमासे होते, लोग ज्ञान सुन मन-मल धोते।
नव है मण्डी, नगर पुराना, काफ़ी रेल्वे रोड सुहाना।

"ऊना"

अजब पहाड़ी नगर निराला, "ऊना" भी जा देखा-भाला।
एक वहां पर जैनो लाला, हमने अधिक न डेरा डाला।
भाषण सात सुनाकर आये, लोग बहुत ही प्रेमी पाए।
पार न करना जिसे सुखाला, चार मोल का पथ में नाला।
बालू बहुत पर थोड़ा पानी, जिसको देख हुई हैरानी।

'ददयाल'

'जेजों' पास गांव 'ददयाल', भक्ति जहां की बड़ी कमाल।
सरल हृदय के हैं नर नारी, सन्त-सती के प्रेमी भारी।

□ "राहों"

देख हमें जो भारी हर्षी, "राहों" नगरी भी जा स्पर्शी।
पांच-सात घर जैनो चाहे, प्रेम न उनका कौन सराहे।
बना स्थानक वहां प्रशस्त, धर्म-भाव के जन अभ्यस्त।
कभी यहां थी रौनक भारी, बिखर चली है अब वह सारी।
जिनका आज चमकता नाम, जैन दिवाकर "आत्माराम"।
जनमे यहीं "चोपड़ा" कुल में, रखते सभी सदा ही दिल में।

□ 'बलाचौर'

"बलाचौर" का क्या है कहना, भक्ति-भाव ही जिसका गहना।
धर्म-ध्यान के लें जो सपने, घर हैं पन्द्रह-सोलह अपने।
बड़ा संगठित छोटा सा संघ- चढ़ा धर्म का जिस पर रंग।
सुनते लोग प्रथम व्याख्यान, खोला करते बाद दुकान।
अद्भुत गुण यह सिर्फ यहीं है, ऐसा नियम न अन्य कहीं है।
बने हुए दो "स्थानक" सुन्दर, सामायिक हो जिनके अन्दर।
बालक भी करते सामायिक, बात याद यह रखने लायक।
चौमासे करवाते रहते, भारी लाभ उठाते रहते।
पांच सहस जन संख्या पुर की, प्रेमी दया-धर्म सतगुरु की।
सन्त प्रसन्न जहां रहते हैं, अच्छे क्षेत्र उन्हें कहते हैं।

□ "जालन्धर शहर"

पुर 'जालन्धर' भी जा आये, प्रवचन-प्याले बहुत पिलाये।
लोग वहां के पक्के प्रेमी, साताकारी धर्मी-नेमी।
सौ से ऊपर जैन सदन हैं, पास जिन्हों के बड़े भवन हैं।
स्थानक भी है एक पुराना, तिन मंजिला है और सुहाना।
चातुर्मास जहां पर होते, ज्ञान-गंग में लगते गोते।
वीतराग की परम पुजारन, सती 'पार्वती जी' उपकारन।
यहां विराजीं काफ़ी साल, जैन-संघ को किया निहाल।

करते-करते धर्म-प्रचार, जंगल के प्रति किया विहार।
'चन्दन' इतने अर्सा बाद, आया देश पुराना याद।

'दो हज़ार' मगसिर का मास, "माछीवाड़ा" किया निवास।
लिखने-पढ़ने का उल्लास, फैलाता है नया प्रकाश।
देखा हुआ लिखा यह हाल, लिखने वाला 'चन्दनलाल'।
गुरुवर मेरे "पन्नालाल", षटकाया के जो प्रतिपाल।
दीनदयाल तपस्वी सन्त, जिनकी कृपा-दृष्टि अत्यन्त।
रखते मेरे सिर पर हाथ, इसीलिये मैं रहता साथ।
गुरु-करुणा का ले आधार, शिष्य उतरता भव से पार।
पाठक ! दो पढ़ने में ध्यान, होगा क्यों न कहो कल्याण।

२ जंगल देश के पौधे

□ १-"जीरा"

"दोआबा" से आकर अब हम, "जीरा" ठहरे वर्षावास।
वर्षों की आशा फलने से, सकल संघ में था उल्लास ॥
दयाधर्म-प्रेमी उत्साही, तपानुरागी बड़भागी।
"स्थानकवासी" घर हैं सोलह, मिथ्याडम्बर के त्यागी।
सुनने को व्याख्यान प्रेम से, दौड़े आते श्रावक जन।
जिनवाणी के श्रवण मात्र से, विकसित कर लेते तन-मन।
कहते—जल्दी जय बुलवाते, भरता नहीं हमारा-मन।
आठों पहर सुनाते रहिये, हमें प्रेम से शास्त्र-वचन"।

दिगम्बरों की, वैश्य, अरोड़े, खत्री लोगों की जो भक्ति।
उसे भुलाने की अपने में, पाता नहीं ज़रा भी शक्ति॥
जिसकी स्मृति रह जाये मन पर, भक्ति वही होती उत्तम।
वही प्रकाश है उत्तम जिससे, छट जाता है सारा तम॥
नये भक्त भी मिले यहां पर, सामायिक करने वाले।
"महामन्त्र" की जप कर माला, भवसागर तरने वाले॥
सुबह, दुपहरी, शाम, कथा में, रौनक का था पार नहीं।
त्याग, तपस्या, सामायिक की, ऐसी लखी बहार वहीं॥
दर्शन करने वाले भारी, बाहर से भी आते थे।
श्रावक लोग उन्हों की सेवा, करके अति हर्षाते थे॥

२-फरीदकोट

इसके बाद किया चौमासा, शहर-"फरीदकोट" में जा।
यथा शान्ति का अनुभव होता, घूम-घुमाकर घर पर आ॥
"उन्नीसौ अट्ठासी" वाला, याद आगया मुझे "बसन्त।"
क्योंकि इसी दिन श्री गुरुवर ने, मुझे बनाया जैनी सन्त॥
उस दिन कहते लोग यहां पर, ऐसा उत्सव नहीं हुआ।
नहीं सुना, देखा है ऐसा, उत्सव पहले कहीं हुआ॥
भरी हुई थी मण्डी, जनता- बैठी थी कुछ खड़ी हुई।
शान्ति बनी थी ऐसी—सूई, शब्द सुनाती पड़ी हुई॥

चाव संघ का चढ़ा ...

याद श्रावकों की हो श्राई, आज उसी अवसर के साथ ॥
संयम का उत्साह बढ़ाते, और चढ़ाते वर वैराग।
लाड़ लड़ाते पालन करते, मानो मैं आया गृह त्याग ॥
"रूपलाल जी" श्रावक नामी, स्मृति में है उनका उपकार।
शब्दों से आभार मानना, केवल सांसारिक व्यवहार ॥
"श्री विलायतीराम" बोथरा, उनके भाई "प्यारालाल।"
"वोरूमल जी" "अक्की वाई", याद रहेंगे सब चिर काल ॥
मैं न भूल सकता, तब कैसे, भला भूल सकते ये लोग।
स्मृति होती है तो दोनों को, यही विचित्र एक संयोग ॥

रहा ठाठ चौमासे में जो, नहीं भुलाया जा सकता।
प्रेम अपूर्व सभी का मुझसे, नहीं बताया जा सकता ॥
सौ से ऊपर 'स्थानकवासी", जैन जनों के घर प्यारे।
धर्म-ध्यान व्याख्यान भक्ति में, आगे रहते हैं सारे ॥

□ ३-४–"मुक्तसर" और "मलोट"

गये "मुक्तसर" और सुनाये, यहां सात व्याख्यान भले।
ठहरे बड़े प्रेम से आखिर, आगे जाने को निकले ॥

हमें पहुंचना जहां स्थान वह, सुन्दर मण्डी बड़ी मलोट।
भक्त लोग लेते आये हैं, खोट मिटाने को प्रभु-ओट॥
श्रावक भक्ति किया करते हैं, साधु-साध्वियों की मन से।
मन से सेवा करने वाला, करता तन-धन-जीवन से॥
दुमंजला है "स्थानक" सुन्दर; साता पहुंचाने वाला।
एक वार तो ठहरेगा ही, मुनि आगें जाने वाला॥
दश-बारह ही घर हैं जैनो, लेकिन प्रभु के भक्त सभी।
धर्म-ध्यान व्याख्यान आदि में, रहते हैं अनुरक्त सभी॥

□ ५–"अबोहर मण्डी"

गये "अबोहर" देखा हमने, लोगों में उत्साह बड़ा।
श्रावक कहते—गुरु-सेवा का, अवसर प्रतिदिन कहां पड़ा॥
"स्थानकवासी" घर हैं दस ही, फिर भी आते लोग अनेक।
कथा-प्रेम के द्वारा होती, सारी सभा सहज में एक॥

□ ६–"संगरिया मण्डी"

किये कई व्याख्यान वहा पर, "संगरिया" के लिये चले।
नहीं सड़क जाती थी कोई, पगडण्डी से हम निकले॥

कुछ कांटों से कुछ रेतो से, हुए मार्ग में व्यथित बड़े।
धैर्य तभी परखा जाता है, जब मानव पर कष्ट पड़े ॥
कष्ट पन्थ का भूल गये सब, जब देखा जन-मन का चाव।
चावों का ही पड़ता "चन्दन", सबके मन पर अमिट प्रभाव ॥

जैन और जैनेतर आते, सुनने को व्याख्यान भला।
श्रोताओं के सम्मुख हो तो, खिलती है वक्तृत्व-कला ॥
कुछ गुरुओं से, कुछ शास्त्रों से, कुछ श्रोताओं से सीखा।
कुछ वक्ताओं से सीखा तब, ज्ञान हुआ था कुछ तीखा ॥
सदा ग्रहण करते रहने पर, सब कुछ सीख लिया जाता।
जिसने सीखा अगर नहीं कुछ, उससे कुछ न दिया जाता ॥
हमने दिया लिया लोगों ने, लेन-देन होता व्यापार।
लेता नहीं, नहीं जो देता, कौन चढ़ेगा उसके द्वार ॥
अगर नहीं हो तो लेलो जी ! हो तो देदो खोलो दिल।
जिसको लेना आता उसके, लिये नहीं देना मुश्किल ॥

अग्रवाल ब्राह्मण आदिक सब, प्रेम दिखाते रहते थे।
भक्तिभाव से भाषण सुनने, मिलकर आते रहते थे ॥
खुली गोचरी थी हर घर की, नहीं कहीं कोई अलगाव।
मुनियों के कर दर्शन सबके, मन में भारी उठता चाव ॥

नामी श्रावक "चिमनलाल जी", सबसे आगे रहते थे।
कथा-श्रवण हित बड़े प्रेम से, सब से कहते रहते थे ॥

☐ ७—"हनुमानगढ़"

"संगरिया" के आगे आता, गढ़ हनुमान शहर अच्छा।
सन्त-समागम द्वारा हर्षित, होता हृदय सदा सच्चा ॥
सार्वजनिक व्याख्यानों की ही, सुन्दर यहां व्यवस्था थी।
तत्क्षण स्मृति हो आई किंचित, अपनी बाल्यावस्था की ॥
हिन्दी का प्रारंभिक शिक्षण, इसी शहर में पाया था।
जीजा "श्री गोपालचन्द जी", ने अति स्नेह दिखाया था।
बहन और बहनोई जी की, छाया में जो थी माया।
आज उसी बचपन का सारा, दृश्य स्मरण-पट पर आया ॥

ओसवाल "श्री स्थानकवासी", दश-ग्यारह ही घर सारे।
आपस में अति प्रेम-प्यार से, मिलकर रहते थे सारे ॥
माहेश्वरी ब्राह्मण क्षत्रिय, अग्रवाल जन भी आते।
बड़े चाव से हमें गोचरी, लाने को घर ले जाते ॥
सन्तों के प्रति सत्श्रद्धा का, दर्शन हमने पाया स्पष्ट।
स्पष्ट बात है भक्ति-शक्ति से, अष्ट कर्म हो जाते नष्ट ॥

भारत भक्ति-प्रधान देश है; उक्ति नवीन नहीं प्राचीन।
इसीलिये भगवान स्वयं ही, होते भक्तों के आधीन॥
सन्त लोग भी आते-जाते, धर्म-प्रेम से हो आकृष्ट।
भेद डालना भेद पालना, माना जाता है निकृष्ट॥
समता धारी साम्य-प्रचारक, "चन्दन" होते सच्चे सन्त।
सच्चे सन्तों की ही हम को; आवश्यकता है अत्यन्त॥

☐ ८—चौटाला

देखा हमने "चौटाला" भी, जहां जैन घर केवल तीन।
दयाधर्म में भक्ति भाव में, रहते हैं जो नित तल्लीन॥
सार्वजनिक करवाये भाषण, रौनक का था पार नहीं।
प्रेम वहां का हम जीवन भर, सकते कभी बिसार नहीं॥

☐ ६—"मण्डी डबवाली"

करते धर्म-प्रचार वहां से, "डबवाली मण्डी" आये।
जैसे पीछे छोड़े वैसे, प्रेमी भक्त यहां पाये॥
धर्म-प्रीति के धर्म नीति के, धर्म-रीति के दीवाने।
धर्मी दीवानों को कोई, दीवाना ही पहचाने॥

यहां "समांबाई" तपसिन ने, मासखमन तप धारा था।
वातावरण तपस्या का हो, वना दिया तब सारा था॥
ऐसी देवी कोई होती, जो निज धर्म निभाती हो।
वायु सुगन्ध वही लाती जो, मलयाचल से आती हो॥
बहुत देवियों को उसने ही, सामायिक सिखलाई थी।
दयाधर्म की ज्योति अखण्डित, जनता बीच जगाई थी॥

इस "डबवाली मण्डी" में हो, गुरुवर ने धारा संयम।
संयम लेने का सदियों से, चला आरहा है उपक्रम॥
विक्रम "उन्नी सौ छासठ" का, संवत आ जाता है याद।
याद श्रेष्ठता ही आती है, "चन्दन" मानो बिना विवाद॥
याद दिला देती है जनता, जिसने देखा वह उत्सव।
पुरी द्वारका में जाकर क्या, गोकुल को भूले माधव?
पूज्य-प्रवर "श्रीचन्द" पूज्य जी- की वाणी अमृत-धारा।
कितने भव्य जनों को जिसने, है भव-सागर से तारा॥

मण्डी यह पंजाब प्रान्त में, अति नामी कहलाती है।
जन-संख्या स्थानीय निरन्तर, क्रमशः बढ़ती जाती है॥
ओसवाल के अग्रवाल के, जैनों के घर हैं कुछ एक।
स्थानकवासी-दयाधर्म का, जिन में भारी भरा विवेक॥

□ १०–"खिओवाली"

चले "खिओवाली" अब आये, देखो श्रद्धा-भक्ति अनन्त।
क्यों न प्रशंसा की जाए तब, जब श्रावक हों श्रद्धावन्त॥
'काला' और 'कपूरासिंह' क्या, करें कई सामायिक जाट।
जाटों की इस बस्ती में है, दया धर्म का अद्भुत ठाट॥

□ ११–"गीदड़बाहा मंडी"

चले वहां से "गीदड़बाहा", जहां बिका करती नसवार।
इसे सूंघने में ही मानो, मिलता हो सुख का भण्डार॥
जैन-अजैन सभी लोगों में, सन्तों के प्रति श्रद्धा-भाव।
देख-देख मन प्रमुदित होता है, मन में उठते धर्म-उठाव?
स्वच्छ "जैन स्थानक" में करते, श्रावक सामायिक मिल-जुल।
मिलते-जुलने से ही होती, धार्मिक चर्चाएं खुल-खुल॥
ओसवाल भी अग्रवाल भी, महावीर के भक्त सभी।
मानव-धर्म एक है सब का, तथ्य यह झूठा हुआ कभी?

चौमासे भी होते रहते, बड़े ठाठ के साथ यहां।
लेते लाभ सभी जन मिलकर, श्रय "चन्दन" दिन-रात यहां॥

□ १२–'त्योना'

'त्योना' जाने की तैयारी, करता 'चन्दन मुनि' का मन।
'झुम्बा' में इक रात लगाकर, प्रातः तत्क्षण किया गमन॥
"रामामल" जी पिता हमारे, आने को ही कहते थे।
संयम लेने से पहले हम, "त्योना" में ही रहते थे॥
पहली बार यहां पहुँचे हम, संयम लेने के पश्चात।
बचपन जहां बिताया, खेले- कूदे थे शिशुओं के साथ॥
नर-नारी उत्सुक होकरके, आये दर्शन करने को।
मानो आए सन्त-चरण में, भव-सागर से तरने को॥
जहा पढ़ी "गुरुमुखी" निहारा, गुरुद्वारा वह जाकरके।
शिष्य "नरैणसिंह" के सत्कृत, करते सम्मुख आकरके॥
बड़े प्रेम से भाषण सुनने, आये दौड़े नर-नारी।
याद रहेगी हमें हमेशा, भक्ति दिखाई जो भारी॥
ठहरे दो दिन मात्र यहां पर, चले "भटिण्डा" पुर की ओर।
सन्तों का आगमन श्रवण कर, नाचा श्रावक-जन-मोर॥

□ १३–"भटिण्डा"

सट्टेबाजों की आवाजें, मानो चीर डालतीं कान।
आवाज़ों से खींचा जाता, मानो किसी शक्ति का ध्यान॥

पल-पल में ललकार लगाते, चारों ओर दलाल खड़े।
बड़े-बड़े जन धन-आशा से, इस धंधे में यहां पड़े ॥
धनी सुखी नर होने पर भी, सन्तों के हैं भक्त परम।
धर्म रुचा करता प्राणी को, अगर उदय हो पुण्य करम ॥

किला यहां का बहुत पुराना, दर्शनीय है ऊंचा स्थल।
खड़ा कभी का अभी देखलो, गिनता नहीं आखिरी पल ॥

स्टेशन पर है भीड़-भड़ाका, सात गाड़ियां चलतीं साथ।
यात्री इधर-उधर से आते, लिये वस्तुएं अपने हाथ ॥
इससे उतरे उसमें बैठे, बड़ी शीघ्रता से सारे।
चलिये जल्दी करिये गाड़ी, सीटी इसीलिये मारे ॥
क्षण में खाली हो जाता है, क्षण में भर जाता स्टेशन।
ज्यों विचार-राशि से भरता, खाली होता मानव-मन ?
कौन किसी को यहां जानता, जाते सारे निज-निज स्थान।
केवल जाने का ही रखते, आने वाले सज्जन ध्यान ॥
इस दुनिया को स्टेशन समझो, जाने को ही आये हम।
मिला प्रतीक्षालय रहने को, समय बचा है देखो कम ॥
दिल की धड़कन रुकते ही बस, कट जायेगी टिकिट अभी।
पता नहीं है इस स्टेशन पर, आना होगा या न कभी ॥

जिनके पास नहीं है संबल, गाड़ी में क्या खायेंगे ?
नहीं सवारी उन्हें मिलेगी, पैदल चल घर जायेंगे ॥
ले जायेंगे नहीं कमाकर, वे क्या मुंह दिखलायेंगे।
समय किया बरबाद, जिन्होंने, वे जन तो पछतायेंगे ॥
जाना हो जब इस स्टेशन से, खाली हाथ नहीं जाना।
साथ जा सके वैसी दौलत, लेना या खाना-खाना ॥
पछताने का समय न आये, "चन्दन मुनि" का समझाना।
वही सयाना समझो जिसने, मेरा यह कहना माना ॥

लगभग तीस यहां घर जैनो, अग्रवाल भो जैन अनेक।
करते हैं सामायिक सम्वर, अनुकम्पा की रखते टेक ॥
दया-दान में रहते आगे, चौमासे करवाते हैं।
आए गये भाइयों की जो, सेवा बहुत बजाते हैं ॥

भाषण में नर-नारी भारी, संख्या में नित आते थे।
वीतराग की सुनकर वाणी, फूले नहीं समाते थे ॥
लेने बहुत दूर तक आये, बहुत दूर तक छोड़ गये।
आने को फिर विनय सुनाकर, श्रद्धा से कर जोड़ गये ॥
गये नियम भी लेकर काफी, सामायिक का, सम्वर का।
प्रत्याख्यान किया जाता है, दिल से मिथ्याडम्बर का ॥

□ १४–"रामां मंडी"

चले वहां से "रामां मण्डो", अच्छा है सत्संगी क्षेत्र।
सव में श्रद्धा-भाव भरा है, वतलाते थे सब के नेत्र ॥
आये बहुत दूर तक लेने, भक्ति-भाव से नर-नारी।
भीड़-भाड़ थी वालक दल की, लेकिन सव से ही न्यारी ॥
सामायिक करने का सुन्दर, "स्थानक" वना हुआ भारी।
श्रावक और श्राविकाएं हैं, श्रमण-संघ के हितकारी ॥
करते नित सामायिक सम्वर, सुनते भाषण सुधा-समान।
यहां ओसवालों के घर हैं, अष्टाविंशति अंक प्रमान ॥
होते हैं चौमासे भी तो, सदा प्रेम के साथ यहां।
जैन अजैन सभी की रौनक, लगती है दिन-रात यहां ॥
सती, सन्त भी आते रहते, लेने भक्तों की संभाल।
"श्री गुरु पन्नालाल" साथ में, लाया है "मुनि चन्दनलाल" ॥

□ १५–"कालांवाली मंडी"

चले यहां से "कालांवाली"- मण्डी का स्थल है आया।
जैन-अजैन सभी लोगों को, पूर्णतया प्रेमी पाया ॥
प्रतिदिन सार्वजनिक भाषण में, जनता की लग जाती धूम।
सव जिनवाणी सुनकर प्राणी, प्रेम-सहित उठते हैं झूम ॥

जब प्रस्थान लगे हम करने, उमड़ पड़ी मंडी सारी।
सम्वत् चौरासी में जैसे, वरसी थी वर्षा भारी॥
कैसे भूला जाये बोलो, प्रेम वहां के लोगों का।
त्याग-भाव के सन्मुख ठहरा, कब आकर्षण भोगों का?

८ १६--"सिरसा"

चले वहां से "सिरसा" आये, किये जहां छह चौमासे।
श्रावक नये-पुराने सारे, धर्मी-प्रेमी हैं खासे॥
एक स्थान पर रहने का हम, कारण भी बतलाते हैं।
सच्चे साधु पुरुष सच्चाई, कहदो कभी छिपाते हैं?
"स्वामी विनयचन्द जी" प्यारे, प्रज्ञाचक्षु तपस्वी सन्त।
अपने युग के जाने-माने, त्यागी वैरागी अत्यन्त॥
शिखर दुपहरी की वेला में, आग उगलता जब आदित्य।
तप्तांगन में बैठ ध्यान धर, जपते थे जिनवर को नित्य॥

दर्शन करने को तब आते, दौड़-दौड़ कर सारे जन।
तिल धरने को स्थान न मिलता, हिलता मानो नहीं पवन॥
धन्य! धन्य! की आवाजों से, गूंजा करता तब आकाश।
त्याग तपस्याओं पर होता, आंखों देखा दृढ़ विश्वास॥

पता लगाने को जन कोई, रखता अपने नंगे पैर।
नानी याद उसे आ जाती, तुरत चाहता अपनी खैर ॥
छाया में आकरके कहता, करनो नाम इसीका है।
त्याग सभी कर सकते इस पर, ठेका नहीं किसीं का है ॥

एक बार चौमासा भर वे, रहे मात्र पीकरके तक्र।
एक बार जल आधारित हो, चला मास भर तप का चक्र ॥
शान्ति, सरलता, सहिष्णुता ने, स्थान यहीं पर था पाया।
रुचता नहीं कभी आडम्बर, रुचती नहीं कभी माया ॥
ऐसा मधुर बोलते जिससे, श्रोता का मन होता मुग्ध।
भैंस भले काली भूरी हो, धवल धवलतम होता दुग्ध ॥
चरण-करण के आराधन में, समय मात्र का नहीं प्रमाद।
"महावीर" प्रभुवर की वाणी, रखते आप अहर्निश याद ॥
हैं सतयुगी पुरुष ये कोई, कहते यों दुनिया वाले।
धन्य वही मुनि होता "चन्दन"; जो चारित्र अमल पाले ॥

भव-सागर से पार पहुंच कर, भव्य मानते शान्ति परम।
कर्म तोड़ने वाले का दिल, कभी न देखा यहां नरम ॥
उन्नीसौ पंचानव आश्विन, शुक्ल चौथ दिन ले अनशन।
पार्थिव-देह त्याग कर तत्क्षण, किया स्वर्ग के लिये गमन ॥

डोली निकली धूम-धाम से, जय-जय से गूंजा आकाश।
जितना था उससे भी बढ़कर, बढ़ा श्रावकों का विश्वास॥
उग्रतपस्वी ऐसे मुनिवर, होते निश्चित कहीं-कहीं।
इनके स्वर्गवास होने पर, नज़र आ रहे अन्य नहीं॥
पुण्य प्रभाव बड़ा था इनका, वर्णन करना नहीं सरल।
वाणी थक जाए कर वर्णन, कुछ ऐसा था पुण्य प्रवल॥
उनकी सेवा भक्ति बजाई, जो कुछ हमसे बन पाई।
इसीलिये छह वर्ष निरन्तर, पाई स्थिरता सुखदाई॥

सेवा करते रहे हमारी, सारे ही भाई-बाई।
सेवा किसी व्यक्ति से लेकर, नहीं भूलना श्री भाई!
श्रावक 'जमनादास'' खास वह, छज्जड़ "पन्नालाल" भला।
बहुत याद थी इन दोनों को, सेवा की शुभ श्रेष्ठ कला॥
उस चौबारे को क्या भूलें, जहां बिताये इतने साल।
साताकारी क्षेत्र धर्म में, दे सकता सहयोग विशाल॥
गोत्र गवैया "लाल कन्हैया", "श्री कपूरचन्द जी जैन।"
"रुग्घामल" "भगवानदास जी", प्रतिक्रमण कर पाते चैन॥

दानशील तप-धारी श्रावक, दया पुजारी बड़े उदार।
सुनो विशेषण आगम वाला, प्राकृत शब्द "अवंगुय द्वार॥"

'चन्दन' विस्तृत वर्णन करके, मानो मान रहा आभार।
सेवा करना सीखो देखो- मेरे लिखने का यह सार ॥

▭ १७–"टुढाल"

"पड़िहारी" होकरके आये, नगर "टुढाला" हम चलकर।
पले वहां जन मातृ-अंक में, भक्ति भावना में पलकर ॥
जैन-अजैन सभी लोगों ने, लाभ उठाया अति भारी।
पूरे एक कल्प तक ठहरे, भक्ति सदा होती प्यारी ॥
पन्द्रह-सोलह होंगे घर सब, "स्थानकवासी" जैनों के।
निशि-भोजन के त्याग नियम थे, कुछ भाइयों वा बहनों के ॥
चौक बीच करवाये भाषण, जन-जन ने था भाग लिया।
जाट सिक्ख आदिक ने काफ़ी, मद्य-मांस का त्याग किया ॥
तजा किसी ने जूआ चोरी, हुक्का बीड़ी या सिगरेट।
नियम किसी ने लिया भरेंगे, न्याय-नीति से अपना पेट ॥
सामायिक का माला का भी, कइयों ने था नियम लिया।
कुछ बहनों ने सदा-सदा को, असली रेशम त्याग दिया ॥

"रोढ़ी" के कुछ जैन यहां पर, नित्य कथा में आते थे।
अन्य अनेकों लोगों को भी, संग प्रेम से लाते थे।

□ १८-रोड़ो'

विनति श्रवण करके लोगों की, अब हम "रोड़ी" में आये।
उनने भी बाजार बीच में, प्रतिदिन भाषण करवाये॥
भाषण का जो ठाठ जमा वह, नहीं भुलाया जा सकता।
ऐसा पक्का प्रेम किसी ही, पुर में पाया जा सकता॥
नियम "ढुढालों" जैसे कुछ-कुछ, लिये यहां भी लोगों ने।
सामायिक के माला के प्रण, किये यहां भी लोगों ने॥

जंगल देश निवासी श्रावक, बड़े सुदृढ़ "स्थानकवासी।"
दृढ़-धर्मी प्रिय-धर्मी होते, मोक्ष-सुखों के अभिलाषी॥
सतियां, सन्त अगर हों पुर में, दर्शन करते श्रद्धा से।
सुनकर मंगलपाठ, चरण में- सिर फिर धरते श्रद्धा से॥
सूत्रों की वाणी के रसिया, पाए जाते लोग इधर।
वैसे जो कुछ गुरु फरमादें, हर्षित होते हैं उस पर॥
मिथ्यात्वों से पाखण्डों से, रहती बहनें दूर अनेक।
जागृत अपने मन में रखते, श्रावक गण थे विनय विवेक॥

छिद्रान्वेषी नहीं, भद्र हैं, गुरुओं के प्रति हितकारी।
देख सन्त को खिल उठते हैं, यथा वसन्ती फुलवारी॥

रहता हो मर्यादा में जो, देते उसको ही सम्मान।
क्रिया-पात्र है कितना कोई, कर लेते हैं झट पहचान ॥

◻ सुफला यात्रा

सन्तों की संगति में आकर, तजा किसी ने निशि-भोजन।
पीना छूना नहीं, सुरा से- दूर हुए जन शत योजन ॥
अनछाना जल कभी न पीना, करना फिर सामायिक नित्य।
विविध नियम लेने वालों के, सुधरे ऐसे दैनिक कृत्य ॥
तजा किसी ने द्यूत, किसी ने, मद्य, मांस, अण्डे आखेट।
कहीं किसी ने चिलम छोड़दी, हुक्का, बीड़ो वा सिगरेट ॥
तजा किसी ने चमड़ा, रेशम, साबुन छोड़े चर्बीदार।
तजी किसी ने सट्टा-बदनी, मदिरा आदिक का व्यापार ॥
माला "नमोक्कार" की जपना, खप जाना परमार्थों में।
पाप अगर है तो दुनिया में, है अपने ही स्वार्थों में ॥
सत्संगी बन गये नये जन, बने पुराने सुदृढ़ महान।
ऐसी मंगल मयी हमारी, यात्रा का सुनलो व्याख्यान ॥

◻ पूज्य श्री की स्मृति

पूज्यपाद आचार्य प्रवर "श्री- जीवनराम" महान हुए।
कहा नहीं जा सकता है क्या, वे भगवान समान हुए ॥

"जंगल" के ये क्षेत्र सलोनें, समझो सारे उनकी पौध।
विना सूर्य के सूर्य विकासो, कमल न पा सकते उद्बोध?
सिद्ध-वचन, समदर्शी प्यारे, निश्छल शान्त सरल जीवन।
उपकारी जीवन का जैसे, निर्मल शान्त तरल जीवन।।

उपकृति की विस्मृति क्या होती? कृतियां उनकी अमर महान।
सोचो कितना ऊंचा है जी! जीवन में प्राणों का स्थान।।
श्री सद्गुरु की छाया में "मुनि- चंन्दन" महका करता है।
क्या न शिष्य की लघु आत्मा में, गुरु का तेज उतरता है?

▭ इतिहास है

इस संक्षिप्त विवेचन द्वारा, किया सुरक्षित नव इतिहास।
एक दीप से पा लेते हैं, वहुत पांथ जन नया प्रकाश।।
'गढ़ सार्दूल' महीना फाल्गुन, 'चन्दन' ने लिख दी स्मृतियां।
स्मृतियों पर हो आधारित हैं, मानव की सारी कृतियां।।

पाठक! पढ़ना प्रेम से, यात्रा का संगीत।
घर बैठे ही जानिये, यहां-वहां की रीत।।

सार्दूलगढ़ (ढुडालां)
२००२ फाल्गुण

३ पंचकूला की दिशा

"मानसा मण्डी"

"जंगल देश" घूम कर आये, स्थान 'मानसा मण्डी' पाये।
भक्ति यहां पर देखी भारी, हुई चौक में कथा हमारी।
जनता का था क्या ही कहना, आये बहुत से भाई बहना।
नियम हुए थे बस अनगिनती, कुछ दिन रहे मानकर विनती।
यहां "किशोरचन्द जी" श्रावक, लायक जैन संघ के नायक।
खुलो "जैन कन्या शाला" है, 'स्थानक' भी ऊंचा आला है।
दश-बारह घर जैनो सारे, "स्थानकवासी" पक्के प्यारे।
दया-धर्म से प्रेम निराला, करते हैं सामायिक माला।

□ "भीखी"

चल करके फिर "भीखी" आये, सार्वजनिक उपदेश सुनाये।
सारी जनता हर्षित भारी, आते बहुत रहे नर-नारी।
चाहे थोड़े जैन यहां हैं, ऐसे भाई और कहां हैं?
दया धर्म के दृढ़ विश्वासी, सच्चे जैनी "स्थानकवासी"।
कर अनुनय हमको ठहराया, धर्म-प्रेम अच्छा दिखलाया।
आखिर हुआ विहार हमारा, अब तक भी है याद नजारा।

□ "सुनाम"

करके मग में फिर विश्राम, पहुंचे चलकर शहर 'सुनाम'।
बात याद यह रखने लायक, होती खूब यहां सामायिक।
बूढ़े बालक और जवान, नित्य सुना करते व्याख्यान।
मण्डी पीछे ये वे जाते, प्रवचन में सब पहले आते।
देखा स्थानक साताकारी, काफी जैनी हैं नर-नारी।
दया-धर्म के ये दीवाने, मुनियों के हैं भक्त पुराने।
कैसे जाये उन्हें भुलाया, अनुपम प्रेम हमें दिखलाया।
साधु-श्रावकों की यह जोड़ी, मिलती है पर मिलती थोड़ी।
"वीतराग" के परम पुजारी, देखे हमने सब नर-नारी।

□ "सामाना"

गये यहां से हम सामाना, क्षेत्र एक जो बहुत पुराना।
सुनकर प्रवचन यहां सवेरे, लोग लगाते मण्डी डेरे।
दिन भर नहीं शकल दिखलाते, काफ़ी रात गये घर आते।
आठ पहर के बाद दिखाई, देते प्रायः बाई-भाई।
घर तो हैं पैंतीस यहां पर, दयाधर्म में जो अति तत्पर।
छोटा है न और बड़ा है, जैनी 'स्थानक' यहां खड़ा है।
'स्थानक' केवल है इकतल्ला, शुरू यहीं से जैन मुहल्ला।

□ "पटियाला"

दिल न लगा 'पटियाला" आये, लोग बड़े ही प्रेमी पाये।
दया-धर्म पर श्रद्धा सच्ची, भक्ति-भावना ऊंची अच्छी।
प्रवचन सुनने को सब आते, सुनकर खुशियां बहुत मनाते।
अस्सी-नब्बे जैनी घर हैं, सन्त सती के भक्त-प्रवर हैं।
विनयशील हैं जाने-माने, पर न हमें आए पहुँचाने।

□ "अम्बाला"

पहुंचे चलकर तब अम्बाला, शहरों में जो शहर निराला।
लोग यहां पर धर्म-पुजारी, अरिहन्तों पर श्रद्धा भारी।

जो भी यहां साधुजन आते, सब वे मिल जुल प्रेम दिखाते।
काफ़ी घर हैं लोग सुखी हैं, श्रावक होकर मोक्ष-मुखी हैं।
खुला यहां है जैन-भण्डार, देखा, उपजा हर्ष अपार।

□ "अम्बाला छावनी"

कुछ दिन में "अम्बाला" छोड़ा, गये "छावनी" ठहरे थोड़ा।
छोटा सा था इक चौवारा, हो सकता था नहीं गुजारा।
फिर भी भाषण कई सुनाये, लोग प्रेम से काफ़ी आये।
गिनती के घर "स्थानकवासी", भक्ति-भावना जिनमें खासी।

□ "मलाना"

छोड़ छावनी गये "मलाना", कसबा है जो बहुत पुराना।
दिये अनेक वहां व्याख्यान, जिनसे होता लाभ महान।
थोड़े चाहे जैनी घर हैं, भक्ति हृदय में बहुत मगर है।
सन्त यहां पर कम हैं आते, रोका हमको जाते-जाते।

□ "साढौरा"

क्षेत्र अन्य क्षेत्रों से न्यारा, फिर "साढौरा" नगर निहारा।
घर हैं जैन यहा पर खासे, होते कभी-कभी चौमासे।

"जैनो स्थानक" साताकारी, करते धर्म जहां नर-नारी।
सब ने मिल ठहराया हमको, प्रेम अतीव दिखाया हमको।
भक्त "रामजीदास" निराले, सबसे आगे रहने वाले।
बन्दर यहां बहुत ही रहते, छेड़े बिना नहीं कुछ कहते।
लोग चाहते थे चौमासा, पर थी और हमारी आशा।
करके भारी धर्म-प्रचार, आखिर हम ने किया विहार।

□ "डेराबसी"

"डेराबसी" नगर फिर आये, भक्ति देखकर मन हर्षाये।
"वीर-जयन्ती" यहां मनाई, चारों ओर खुशी अति छाई।
जन-जन प्यारा परम पवित्र, सुनकर सारा वीर-चरित्र।
हर्षित था हरइक नर-नारी, झूम उठी थी नगरी सारी।
लगे वहां से जिसदम जाने, जैन-अजैन न कोई माने।
विनती उनकी कर स्वीकार, किया और फिर धर्म-प्रचार।
भक्त "पंचकूला" से आये, भक्ति साधुओं को ले जाये।
हम को आने की तब गुरुकुल, विनती सब ने की थी मिलजुल।

□ "पंचकूला"

देखा जाकर "गुरुकुल" प्यारा, बहती मानो विद्या-धारा।
देख हमें विद्यार्थी प्यारे, झूम उठे खुशियों के मारे।

व्यक्त सभी ने की अभिलाषा, यहीं आपका हो चौमासा।
निर्णय किन्तु न हम ले पाये, तभी सदस्य वहां सब आये।
यही उन्होंने अर्ज़ गुज़ारी, विनयि मानिये आप हमारी।
सोचो; सन्त आप हैं दो ही, कठिन नहीं चौमासा कोई।
"श्री इन्द्राजसिंह" अधिष्ठाता, बोले बहुत रहेगी साता।
पण्डित "श्री केदारनाथ जी", बोल उठे वे यही बात जी।
सब ने मिल मजबूर किया यों, चौमासा मनज़ूर किया यों।
चौमासे में कुछ दिन कम थे, आस-पास यों घूमे हम थे।

□ "बनूड़"

नगर बनूड़ निराला देखा, सच्ची श्रद्धा वाला देखा।
जितने भी हैं भाई-बाई, उनमें लगन बहुत ही पाई।
जो भी सन्त वहां पर आते, सेवा सब की बहुत बजाते।
बना हुआ है "जैनी स्थानक", करते लोग जहां सामायिक।
प्रेम-कथा सुनने को भारी, दौड़े आते थे नर-नारी।
बीस जैन घर होंगे सारे, याद हमें जो रहते प्यारे।
बोले–'हमको तो थी आशा, करवायेंगे हम चौमासा।
पल्ले लेकिन पड़ी निराशा, यह भी समझो एक तमाशा।
अतः कल्प तो दे ही दीजे, और निराश नहीं अब कीजे।'
सब का प्रेम देख यों भारा, करना कल्प अतः स्वीकारा।

फैलाते यों धर्म प्रकाश, 'गुरुकुल' पहुँचे हम सोल्लास।
विनयपात्र सब छात्र निहारे, स्वच्छ गात्र-मन रखने वारे।
करते नित सामायिक सारे, लगते बहुत-बहुत ही प्यारे।
नमोक्कार जब पढ़ते मिलकर, रहते सुमन हर्ष के खिलकर।
स्वर्ग समान प्रकृति की छाया, विद्या-केन्द्र बहुत मन भाया।
चारों ओर बिछी हरियाली, दर्शक-चित्त मोहने वाली।
कूलों की भी प्यारी कलकल, मनको मुग्ध बनाती पलपल।
कूलें क्या हैं? नन्हीं नदियां, जिनको बहते बीती सदियां।
कभी सूखने यह न पातीं, कलकल करती बहती जातीं।
देखा जाये बैठ किनारे, करतीं मानो सुखद इशारे।
यहां बैठ क्या सुनता कलकल, तेरा जीवन जाता पल-पल।
इसकी लेले प्रथम खबर तू, करना धर्म शीघ्रता कर तू।

•

रेल्वेलाइन पास निराली, रेल वहां दो इंजन वाली।
एक सड़क जो 'शिमला' जाती, अपनी अजब छटा दिखलाती।
दौड़ा करती उस पर कारें, 'घग्घर' की भी निकट बहारें।
लखकर उसकी शान निराली, सदा बजाते दर्शक ताली।
वेगवती निर्मल जलधारा, दिखलाती है नया नज़ारा।

जिस दम सम्मुख नजर उठाते, खड़ा हिमालय पर्वत पाते।
देख उसे फूले न समाते, भारत मां का मुकुट बताते।
नन्हें-नन्हें हाथ उठाकर, ताली मस्ती सहित बजाकर।
बागों में ज्यों चहके बुलबुल, बालक बोला करते मिलजुल।
स्वर्ग हमारा प्यारा गुरुकुल, धर्मवान है सारा गुरुकुल।

गुरुकुल स्थापित करने वाले, गुरु-चेले दो भोले-भाले।
'धनीराम जी' 'कृष्णचन्द्र जी', भूल न सकते उन्हें कभी भी।
जैन जगत ने साथ दिया है, गुरुकुल यों यह खड़ा हुआ है।

पूर्ति और शुभेच्छा

दोहजार पर सम्वत तीन, धर्म-ध्यान में रहते लीन।
किया यहां 'चन्दन' चौमास, भक्ति-शक्ति का मिला प्रकाश।

धर्म-प्रचार जहां हो जाता, क्षेत्र वही सन्तों को भाता।
सच्चे सेवक सच्ची सेवा, धरती का यह मीठा मेवा।
सेवा सबसे उत्तम धर्म, यही श्रेष्ठतम उत्तम कर्म।
शत-शत बार करो अभिनन्दन, जो सच्चा सेवक हो 'चन्दन'।

जैनेन्द्र गुरुकुल पंचकूला
२००३ चातुर्मास

□ ४ □

सम्वत्-क्रम

□ वि. सं. १६८८

"उन्नी सौ अट्ठासी" विक्रम, वार बृहस्पति भव्य वसन्त।
कृपा-दृष्टि कर श्री सद्गुरु ने, मुझे बनाया जैनी सन्त।
पूज्य पिता "श्री रामामल जी", आज्ञा देकर बने उदार।
नगर "फरीदकोट" में आई, दीक्षा के दिन नई बहार।
आज्ञा देना बहुत कठिन है, क्योंकि पुत्र पर होता मोह।
मोह जीतने वाला मन से, छेड़ा करता है विद्रोह।
संयम की आज्ञा देना ही, सेवा है जिन-शासन की।
लेखक से ली जाती जैसे अनुमति पुनः प्रकाशन की।

महाराज "जयरामदास जी", पूज्य-प्रवर 'श्री आत्माराम।'
उनके पावन शुभागमन से, सिद्ध होगये सारे काम ॥

□ वि. सं. १९८९ "मण्डी डबवाली"

"डबवाली मण्डी" में पहला, किया नवासी का चौमास।
नव दीक्षित मुनि सब से पहले, करता शास्त्रों का अभ्यास ॥
शास्त्राभ्यास नहीं होने से, संयम का पालन दुष्कर।
नींव सुदृढ़ होने से ऊपर, मंजिल बन पाती है स्थिर ॥
नवदीक्षित मुनि को सिखलाते, जैन साधु का जो आचार।
"आचारः प्रथमो धर्मः" का, सूत्र हमें देता आधार ॥
आवश्यकी क्रियाएं सारी, सविधि सीखना करना जी !
क्योंकि स्वयं के संयम द्वारा, होता पार उतरना जी !

□ वि. सं. १९९० से १९९५ "सिरसा"

छह चौमासों से "सिरसा" में, धर्म-ध्यान का ठाठ लगा।
प्रज्ञाचक्षु स्थविर मुनिवर को, सेवा का उत्साह जगा ॥
सेवा से मेवा मिलता है, कौन चूकता अवसर से।
जो सेवा के लिये तरसता, हृदय न वह कैसे हरखे ?

हर्षित कृषक यथा होते हैं, जब मन चाहा घन बरसे।
बहुत हर्ष से रहे वर्ष छह, सेवा में ही हम "सिरसे॥"
"सिरसा" की वे सीधी गलियां, सीधे लम्बे हैं बाजार।
सीधे-पन की उत्तमता को, कौन नहीं करता स्वीकार?
जैसा "सिरसा" बसा हुआ है, बसा हुआ वैसा "ब्यावर।"
जीव एक ही होता फिर भी, भेद युग्म ज्यों त्रस, स्थावर॥
चारों ओर बहुत हरियाली, बड़े-बड़े हैं सुन्दर बाग।
विविध भान्ति के विहंगमों का, सुनने को मिल जाता राग॥

जहां पुराना "सिरसा" था वह, "थेड़" नाम से आज प्रसिद्ध।
सभी तरह से किसी समय में, कहते थे वह नगर समृद्ध॥
कालचक्र ने यहां किसी को, कभी न रहने दिया समान।
काल-व्याल से मोह-जाल से, बचने को कहते भगवान॥
क्षेत्र वही होता है लेकिन, मात्र अवस्थान्तर होता।
सभी अवस्थाओं में जैसे, द्रष्टा भोक्ता नर होता॥

"सिरसा" का श्रीसंघ सदा ही, सेवा करता सन्तों की।
सन्तों की सेवा से मिलती, ज्ञप्ति प्रगति के पन्थों की॥
विनयशील सेवा कर पाता, सत् श्रद्धा का ले संबल।
'चन्दन' कर्म-मुक्ति ही समझो, सत् सेवाओं का शुभ फल॥

□ वि. सं. १९९६ "रामां मण्डी"

छियानवें "रामां मण्डी" में, किया प्रेम से चौमासा।
"स्थानकवासी संघ" वहां का, मुनि-सेवाओं का प्यासा॥
धान्य निपज पाता खेतों में, क्षेत्रों में ही पाता धर्म।
विना धर्म के किसी व्यक्ति को, मिला बताओ क्या 'शिव-शर्म ?'

□ वि. सं. १९९७–१९९८ "फरीदकोट"

शहर "फरीदकोट में अगला, वर्षावास बिताया जो!
अठानवें के चौमासे का, वहीं सुअवसर पाया जो!
पूज्य-प्रवर 'श्री पृथ्वी शशि' की, दया मया थी अपरम्पार।
वर कविरत्न उपाध्याय 'श्री- अमरचन्द जी' का उपकार॥
बैठ उन्हीं के श्री चरणों में, शास्त्रों का अध्ययन किया।
अमृत मुझे पिलाया जो भर, जितना मुझ से गया पिया॥
ज्ञान-दान-दायक ही होते, पूर्ण सहायक जीवन में।
गायक गा सकता कितना पर, स्मरण किया करता मन में॥
सारे सहपाठी श्रमणों का, भूल नहीं सकते सहयोग।
भाग्ययोग के विना न 'चन्दन', मिल सकता ऐसा संयोग॥
भद्र प्रकृति 'श्री श्यामलाल गणि', 'प्रेमचन्द्र जी' विनयी सन्त।
श्रमण 'अमोलकचन्द्र' 'चन्द्र श्री', 'हेमचन्द्र जी' अति मतिमन्त॥

ज्ञानाम्बुधि 'श्री विजयचन्द्र मुनि', स्नेही पण्डित सन्त 'सुरेश'।
योग्य साधुओं का सम्मेलन, होता है स्मरणीय हमेश॥
संघ "फरीदकोट" वाले ने, की थीं सेवा तन-मन से।
सेवा सध सकती है "चन्दन", ऊंचे सात्विक जीवन से॥
सेवा करनी बहुत कठिन है, करवाना चौमास सरल।
सेवा से अघ का क्षय होता, चाहे कितना होय प्रबल॥

सुन्दर-सुन्दर नगर निराला, बाग-बगीचों की भरमार।
गल्ला मण्डी छोटी सी तो, लम्बे संकड़े हैं बाजार॥
कहीं जैन कन्या विद्यालय, कहीं निराला न्यायालय।
घण्टाघर है कहीं किला है, कहीं बना विश्रामालय॥
चार मंजिला सुन्दर 'स्थानक', लम्बा-चौड़ा बहुत विशाल।
पास किले के शोभा पाता, कहते जिसको 'बरकतहाल॥'

▭ वि. सं. १९९९ "जेजों"

उन्नी सौ निन्यानव का फिर, "जेजों" वर्षावास चला।
वर्षावास सदा करते हैं, सन्त धर्म के दीप जला॥
कसे तपस्याओं से जीवन, करुणा की बहती धारा।
सन्त जिसे प्यारे होते हैं, क्षेत्र वही हमको प्यारा॥

▭ वि. सं. २००० "नवांशहर"

"नवांशहर" दोआबा में था, दो हजार का चौमासा।
चौमासा करवाने को शुभ, रखते श्रावक अभिलाषा॥
प्रतिदिन प्रवचन सुनने का शुभ, अवसर क्यों खोया जाये।
सूर्य निकल आया हो तब क्यों, बिस्तर पर सोया जाये ?

▭ वि. सं. २००१ "जीरा"

'दोहजार इक' 'जीरा' जाकर, ठहरे वर्षावास भला।
सदुपदेश देने को होती, योग्य सन्त में योग्य कला॥
यह मेरा है यह तेरा है, सन्त कभी क्या रखते भेद।
भेद-भावना वाले का क्या. हो सकता है भव-विच्छेद ?
जैसे "मुन्शीराम" ज्योतिषी, सबको ज्योतिष बतलाते।
नहीं फीस का नाम, सभी ही- मिलकर उनसे हर्षाते॥

▭ वि. सं. २००२ "फरीदकोट"

नगर "फरीदकोट" ने पाया, 'दो हजार दो' का चौमास।
गुरु-चरणों में बैठ किया था, हमने प्रतिदिन शास्त्राभ्यास।

जिस पर मन की दृढ़ आस्था हो, उस पर दृढ़ होता विश्वास।
एक-निष्ठ बन जाने से ही, 'चन्दन' होता आत्म-विकास ॥

धर्म-ध्यान व्याख्यान कथा का, नहीं रहा था कोई पार।
तप, सामायिक, सम्वर आदिक- की थी खिली हुई गुलजार ॥
एक दिवस विद्या पर मेरे, जैन सभा ने सुने विचार।
निश्चित किया सभी ने करना, कन्याशाला का विस्तार ॥
बना महाविद्यालय आखिर, पाकर जन-जन का सहयोग।
लाभ उठाते जिससे सारे, प्यारे नगर निवासी लोग ॥

मास्टर "विद्यारत्न जैन" जो, बी. ए. कवि हैं गायक हैं।
वंश बोथरा के हैं हीरे, सुलझे हुए विचारक हैं ॥

जीवनराम पूज्य श्री जी की, मधुर दिलाती जग को याद।
मुंशीराम बोथरा जी के, खड़ी खेत में आज समाध ॥

अग्रवाल-कुल-भूषण जो थे, अद्भुत जैन सितारे थे।
यहीं जवाहरलाल मुनीश्वर, इक दिन स्वर्ग सिधारे थे ॥
जिनके चरणों में वैरागी- बनकर सीखे बोल-विचार।
पावन स्मृति होती है उनकी, विस्मृत हो न सके उपकार ॥

□ वि. सं. २००३ जैनेन्द्र गुरुकुल पंचकूला

संवत युग्म हज़ार तीन फिर, रहे पंचकूला गुरुकुल।
"श्री इन्द्राजसिंह" की देखी, भक्ति-भावना बहुत विपुल ॥
पण्डित "श्री केदारनाथ जी", करते सत्संगति से प्रेम।
धर्म-ध्यान के द्वारा ही बस, 'चन्दन' बरता करता क्षेम ॥

□ वि. सं. २००४ "सिरसा"

युग्म हजार चार का फिर हम; "सिरसा" वर्षावास रहे।
जिसकी लगन लगी प्रभुवर से, क्यों न परीषह सर्व सहे ?
परिचित सन्त सती आने से, प्रेम पुराना आता याद।
मिले हुए जन से मिलने में, मिलने का ज्यों आता स्वाद ॥

□ वि. सं. २००५ "जीरा"

किया पांचका चौमासा फिर, "जीरा" नगरी नामी में।
जगी अजैनों में भी श्रद्धा, महावीर जी स्वामी में ॥
बच्चों ने सामायिक सीखी, सीखे हैं पच्चीसों बोल।
सीख लिये नवतत्त्व किसी ने, सीखा प्रतिक्रमण अनमोल ॥

□ वि. सं. २००६ "फरीदकोट"

सम्वत् छह का फिर चौमासा, हुआ हमारा 'कोट फ़रीद।'
भक्ति-भावना ही सन्तों को, लेती अपने आप खरीद ॥
ठाठ रहा था और अधिक ही, पहले वर्षावासों से।
सफल किया जनता ने जीवन, अट्ठाइयों उपवासों से ॥

□ वि. सं. २००७ "जेजों"

'जेजों' दोआबा का यह फिर, शानदार था वर्षावास।
जिनवाणी की वर्षा द्वारा, सधता सत्वर क्षेत्र-विकास ॥
कभी-कभी थे हुए यहा पर, सार्वजनिक भी कुछ व्याख्यान।
दौड़-दौड़ नर-नारी आये, हुए अनेकों प्रत्याख्यान ॥
कथा चौक की याद रहेगी, अद्भुत ही नज्जारा था।
एक तरह से अगर कहें तो, उमड़ पड़ा पुर सारा था ॥

□ वि. सं. २००८ "बरनाला"

'बरनाला' में बड़े ठाठ से, हुआ आठ का चौमासा।
दया-धर्म के प्रेमी सज्जन, लाभ लिया करते खासा ॥

धर्म-रंग जब चढ़ जाता है, करते सामायिक सत्संग।
स्वास्थ्य श्रेष्ठ होता हैं तब ही, सुन्दर बन सकते हैं अंग।।
चलता अच्छा जैन स्कूल है, लोगों में उत्साह बड़ा।
ऐसा तो उत्साह किसी ही, नगरी में है नजर पड़ा।।

□ सि. सं. २००६ "मण्डी गीदड़वाहा"

दो हजार नौ 'गीदड़वाहा- मण्डी' की विनती मानी।
स्थानक अच्छा साताकारी, सुन्दर स्वच्छ हवा-पानी।।
जैन-अजैन सभी लोगों में, भक्ति-भावना को पाया।
नहीं भुलाया जाता जिसका, अन्न और पानी खाया।।
रौनक नहीं कथा में ऐसी, देखी होगी कहीं-कहीं।
चौमासे से अन्तिम दिन तक, अन्तर आया ज़रा नहीं।।
उन्नीसौ चौरासी का वह, नहीं भुलाया जाता वर्ष।
प्रथम बार वैरागी बन जब, पहुचा था मैं यहां सहर्ष।।
महाराज 'श्री विनयचन्द' का, एक मास का था उपवास।
सहज नहीं बतलाना तब जो, देखा जनता का उल्लास।।

'नन्दलाल' 'श्री लालचन्द' ने, नया भवन बनवाया था।
अपने ही चौबारों में तब, चौमासा करवाया था।।

□ वि. सं. २०१० "बलाचौर"

दो हज़ार दस 'बलाचौर' में, देखा प्रेम बड़ा भारी।
शास्त्र-श्रवण करने को आती, उत्साहित जनता सारी॥
जग न सकेंगी वे आत्माएं, जगा नहीं जिन में उत्साह।
रखो सदा उत्साह धर्म में, मानो मेरी सुखद सलाह॥
आस पास के गांवों से भी, दौड़े आते सत्संगी।
वीतराग की वाणी ने तो, जनता सारी ही रंगी॥
राज्य स्कूल में भी भाषण का, एक दिवस अवसर आया।
शिक्षक वर्ग, छात्रगण सब ने, बड़ा स्नेह था दिखलाया॥

□ वि. सं. २०११ "पट्टी"

दोहजार ग्यारह "पट्टी" में, सकल संघ का प्रेम मिला।
तोपों से क्या तोड़ा जाता, बना प्रेम का अगर किला?
छोटे-बड़े सभी लोगों में, पाई हमने भक्ति समान।
नहीं भक्ति का भूखा हो वह, बन सकता कैसे भगवान॥
सातों व्यसन बुरे बतलाये, बुरी बताई प्रथा दहेज।
जीवन मे सारे व्यसनों से, रखना उचित सदा परहेज़॥
पांच महाव्रत पाचों अणुव्रत, खोल-खोल समझाये थे।
जैन-अजैन सभी नर-नारी, फूले नहीं समाये थे॥

□ वि. सं. २०१२ "रायकोट"

दो हजार बारह में मानी, 'रायकोट' की विनय विशेष।
धर्म-जगत में पासकता है, विनय-शील ही पुण्य प्रवेश ॥
'नेकचन्द जी' सन्त तपस्वी, वयोवृद्ध 'मुनि बेलीराम।'
ठाणापति थे, बड़े चाव से- जपते श्री जिनवर का नाम ॥
कविवर मुनिवर 'दर्शन जी' ने, किया कथा का था अभ्यास।
सुनकर उनके गीत बढ़ रहा, जैन धर्म के प्रति विश्वास ॥
रही कथा में रौनक भारी, धर्म-ध्यान का ठाठ लगा।
जैन अजैन सभी के मन में, सच्चा ज्ञान-प्रकाश जगा ॥
आने-जाने वालों की भी, सेवा का था कहीं न अन्त।
जैन-संघ का बच्चा-बच्चा, देखा उत्साही अत्यन्त ॥

□ वि. सं. २०१३ "बरनाला"

दो हजार तेरह सम्वत में, आए फिर से 'बरनाला।'
बरनाला के वासी जपते, सन्त समागम की माला ॥
भेद-भावना यहां न देखी, लोग विवेकी भद्र भले।
सींचा जाए जो श्रद्धा से, धर्म-बीज क्यों नहीं फले ?
दिन-दिन बढ़ती जाती जनता, आज अधिक कल और अधिक।
त्याग, तपस्या, मुनियों के प्रति, प्रेम-भाव हर तरह अधिक ॥

□ वि. सं. २०१४ "बलाचौर"

'बलाचौर' दोआबा में था, बार दूसरी चौमासा।
बालक, युवक, वृद्ध रखते हैं, दयाधर्म की अभिलाषा॥
सामायिक का शौक बड़ा था, करते तीनों समय सही।
बूढ़े-ठेरे रोगी की ही, अनुपस्थिति बस कभी रही॥
'श्री बनारसीदास' यहां हैं, 'दोआबा-भूषण' भारी।
बारह व्रत आराधन करते, चारों स्कधों के धारी॥
त्यागी जूते खटिया के भी, सोते रजनी में अन्दर।
शास्त्रों के स्वाध्याय ज्ञान से, कर आलोकित मन-मन्दिर॥

□ वि. सं. २०१५ "मालेरकोटला"

जैनपुरी 'मालेरकोटला", पन्द्रह का था वर्षावास।
उग्र तपस्या के प्रति हमने, पाया लोगों में उल्लास॥
खुला "जैनस्थानक" रहता है, सन्त नहीं होने पर भी।
खुला खेत रखना पड़ता है, यथा बीज बोने पर भी॥
सामायिक का शौक बड़ा है, करते रहते तीनों काल।
तिल धरने को जगह न बचती, भाषण में भर जाता हाल॥
सार्वजनिक करवाकर भाषण, भारी प्रेम दिखाया था।
जाति वर्ग का भेद यहां पर, नहीं सामने आया था॥

यहां जैन कन्या विद्यालय, खुला हुआ है भारी एक।
छोटे-बड़े चार "स्थानक" भी, कौन न होगा हर्षित देख॥
दर्शन करने बाहर से जो, लोग यहां पर आते हैं।
जैन-संघ की लख कर सेवा, विस्मित ही रह जाते हैं॥
भक्ति देख कर, भाषण देकर, खुश-खुश बनता अपना दिल।
ऐसे क्षेत्रों में ही मानो, क्यों न बिताएं आयु अखिल॥
नियमाधीन सन्तजन होते, होता उनका अतः विहार।
'चन्दन' कभी नहीं हो सकता, एक समान सकल ससार॥

□ वि. सं. २०१६ से २०३१ "बरनाला"

दो हजार सोलह से लेकर, "बरनाला" में बसते हैं।
हम भक्तों को हमें भक्त जन, प्रेम कसौटी कसते हैं॥
कहीं मलिन-रेखाएं अब तक, नहीं देखने में आई।
सही परिस्थिति 'चन्दन मुनि' ने, कविता द्वारा बतलाई॥
सुनते हैं व्याख्यान प्रेम से, नित्यनेम से रहते हैं।
उधर गोचरी लेने आएं, विनय भाव से कहते हैं॥
लेते ज्ञान, दान भी देते, शक्ति छिपाते नहीं कभी।
प्रातः दर्शन करने वाले, लगते मानो जैन सभी॥
डेढ पहर तक बहनें भाई, ज्यों बस आने लगते हैं।
मंगलपाठ सुनाते गुरुवर, नहीं जरा भी थकते हैं॥

बीस जैन घर समझो सारे, बाकी नगर अजैनों का।
रंगा भक्ति से दिल है लेकिन, सब भाइयों वा बहनों का ॥

▫ जैन की परिभाषा

अरिहन्तों को माने, माने- अरिहन्तों की वाणी को।
जो सन्तों को माने, कहदो- जैन उसी ही प्राणी को ॥
बहुत अलग है जाति-पांति से, जैनधर्म की परिभाषा।
वही मुमुक्षु कहलाता है, जिसे मोक्ष की अभिलाषा ॥
पावनता के हेतु पाइये, मुनियों के पावन दर्शन।
पावनता के प्रति होता है, प्रति प्राणी का आकर्षण ॥
व्यक्ति-व्यक्ति की पावनता से, पावन होगा यह संसार।
पावनता के बिना न 'चन्दन', खुलता मुक्ति-पुरी का द्वार ॥

दो हजार त्रिशत का सम्वत, बीते पूरे पन्द्रह साल।
सारे साल हमारे खातिर, आए बनकर साधन-काल ॥
धर्म-प्रचार वहां होता है, जहां सन्त जन रहते हैं।
भक्ति,भाव को रखने वाले, सुख-सरिता में बहते हैं ॥
मेरे गुरुवर पूज्य तपस्वी, सन्त-प्रवर हैं 'पन्नालाल'।
चरणाराधन से 'मुनि चन्दन', बनो सभी बस मालामाल ॥

गुरुवर जी के दर्शन पाने, आये सतियां सन्त[1] अनेक।
गद्‌गद् मन यह हुआ हमारा, प्रेम भाव उन सब का देख॥
पूज्य प्रवर "आनन्द ऋषीश्वर, जी" भी यहां पधारे थे।
भक्ति-भाव से गद्‌गद् हम थे, सार्थक जन्म हमारे थे॥
भरे हुए बाजार सभी थे, उनके स्वागत के कारण।
दयाधर्म की पूज्य-प्रवर की, जय का ही था उच्चारण॥
विंशति द्वार बने वस्त्रों के, और अनूठी कागज-बेल।
कहते थे सब किस्मत ने ही, हमें कराया इनका मेल॥

---

१ आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी म०, रत्न मुनि जी, पुष्पऋषि जी, कुन्दन-ऋषि जी, चन्द्र ऋषि जी, विजय ऋषि जी महाराज।
पंजाब-केसरी जैन-भूषण उपाध्याय श्री प्रेमचन्द जी, श्री बनवारीलाल जी, श्री तुलसीदास जी, श्री नौबतराय जी महाराज श्री शान्तिमुनि जी।
नवयुग-सुधारक गणावच्छेदक श्री रघुवरदयाल जी, श्री राममुनि जी, श्री भद्रमुनि जी श्री सतीश मुनि जी महाराज।
पं० श्री प्रेमचन्द्र जी, तपस्वी श्रीचन्द्र जी, पं० श्री हेममुनि जी, पं० श्री कस्तूरमुनि जी, कविरत्न श्री कीर्तिमुनि जी महाराज।
पं० श्री नरेश मुनि जी शास्त्री साहित्यरत्न, पं० श्री उमेशमुनि जी महाराज।
श्री प्रेमचन्द जी, प्रवर्तक पं० श्री फूलचन्द्र जी 'श्रमण', विद्वद्‌रत्न श्री रत्नमुनि जी, व्याख्यान-वाचस्पति श्री कान्तिमुनि जी प्रभाकर श्री रोशनमुनि जी।
श्री प्रकाशमुनि जी म० ठाणा २, आत्मनिधि पं० श्री त्रिलोकमुनि जी भण्डारी श्री पद्ममुनि जी, व्याख्यान-भूषण श्री अमरमुनि जी म०।

धन्यवाद है उन सब का हो, जो भी यहां पधारे सन्त।
जितने उनको हम हैं प्यारे, हम को भी वे प्यारे सन्त॥
रहे कल्प या अल्प रहे पर, हमें दिखाया पूरा प्रेम।
सच्चा सन्त नही दिखलाता, 'चन्दन' कभी अधूरा प्रेम॥

पं० श्री ज्ञानमुनि जी, साधुरत्न श्री शिवमुनि जी, डवल M. A. श्री भगवत मुनि जी, पं० श्री महेन्द्रमुनि जी, पं० श्री सुमनमुनि जी म०।

प्रसिद्धवक्ता, जैन-भूषण, पंजाब केसरी पं० श्री विमलमुनि जी, कविवर्य सिद्धवक्ता श्री दर्शनमुनि जी, श्री सुशीलमुनि जी, श्री राममुनि जी म०।

श्री प्रकाशमुनि जी, श्री पद्ममुनि जी, श्री विनयमुनि जी म०।

भण्डारी श्री ज्ञानमुनि जी, श्री धर्मवीर जी, श्री उदयमुनि जी, श्री ओम मुनि जी।

श्री मदनलाल जी म० श्री वलवन्तराय जी म० श्री मूलचन्द जी म० श्री फूलचन्द जी म० श्री रणसिंह जी म० श्री वदरीप्रसाद जी म० श्री प्रकाशचन्द जी म० श्री रामप्रसाद जी म० श्री रामचन्द्र जी म०।

व्याख्यान-वाचस्पति कविरत्न श्री सुरेन्द्रमुनि जी श्री योगेशमुनि जी म०।

नवयुग-सुधारक श्री जौहरीमुनि जी म० ठाणा २।
श्री हरिश्चन्द्र जी म० (केसरी शिष्य) ठाणा २।
श्री छज्जूमुनि जी म० ठाणा २
तपस्वी श्री टेकचन्द जी, वाणी-भूषण श्री पूर्णचन्द जी, श्री खजानमुनि जी म०।
श्री सत्येन्द्र मुनि जी ठाणा २
श्री त्रिलोकचन्द्र जी, श्री भगवानदास जी, श्री प्रीतम मुनि जी म०।

— इतिहास सुरक्षा

"'चन्दन मुनि' की चारु लेखनी, लिखती नये-नये संगीत।
संगीतों की सत्संगति से, सम्मुख आता समय अतीत॥
इसीलिये वर्षावासों की, सूचि सामने रख पाया।
'चरैवेति' है जिस साधक का- लक्ष्य कहां वह थक पाया॥
केवल सूचि मात्र रखदी है, किया नहीं विस्तार यहां।
लिखने वाले को मिल सकता, वर्णन का आधार यहां।
लिखे हुए का ही होता है, आगे चल कर अधिक महत्त्व।
तत्त्व-विदों से छिपा नहीं है, जो लिखने में होता तत्त्व॥

सती श्री लज्जावती जी, श्री अभय कुमारी जी, श्री सीता जी, श्री सावित्री जी, श्री महेन्द्र जी, श्री कौशल्या जी, श्री शान्ति देवी जी, श्री विमला जी, श्री उमेशकुमारी जी, श्री प्रमिला जी, श्री चम्पा जी, श्री कान्ता जी, श्री साधना जी, श्री मीना जी, श्री अर्चना जी, श्री अलका जी।

सती—श्री सुन्दरी जी, श्री आज्ञावती जी, श्री सत्यावती जी, श्री शारदा जी, श्री सुशीलादेवी जी, श्री शान्तिदेवी जी, श्री राजमती जी, श्री गुणमाला जी, श्री अर्चना जी।

सती—श्री कैलाशवती जी, श्री देवकी जी, श्री कुसुमप्रभा जी, श्री ओमप्रभा जी, श्री शशिप्रभा जी।

सती—श्री राजेश्वरी जी, श्री सुलक्षणा जी, श्री प्रमोदकुमारी जी, श्री अशोककुमारी जी।

सती—श्री प्रज्ञावती जी, श्री प्रमोदकुमारी जी ठाणा ३

सती—श्री प्रवेशकुमारी जी, श्री सुभापवती जी, श्री मोहनमाला जी।

सती—श्री वल्लभकुमारी जी, श्री कुलश्रेष्ठा जी ठाणा ३

प्रशस्ति

(गीतिका की ध्वनि)

युग बदलता है प्रतिक्षण, वक्त बीता जा रहा।
जो गया वह फिर न आता, 'काल' यह बतला रहा॥
किन्तु जो नरदेव इस भू- पर सफल अवतार ले।
दुःख, भय और द्वन्द्व करते, दूर सब संसार के॥
मार्ग दिखलाते निरन्तर, विश्व के कल्याण का।
विश्वं-मंगल काम उनका, धर्म है निर्वाण का॥
है अमित उपकार उनका, सकल ही संसार पर।
कर रहे कल्याण हम, उनके वचन-आधार पर॥

ज्ञान की वह विमल ज्योति, वीर प्रभु 'महावीर' थे।
जगत जीवों के सु-त्राता, धीर थे, गम्भीर थे॥

हैं विराजे वे हमारे, हृदय के शुभ स्थान में।
बुझ न सकतो यश:-ज्योति, काल के तूफान में॥
चरम तीर्थङ्कर जिनेश्वर, 'वर्धमान' सु-ज्ञात सुत।
सुवह-सायंकाल 'चन्दन', नमन करता भाव-युत॥
धर्म-शासन विजयकारी, चल रहा उनका प्रवर।
हैं हुए आचार्य उनके, पट्टधर शुभ ज्योति धर।
जैन का उज्ज्वल सितारा, विश्व में चमका दिया।
भूले हुए लाखों जनों को, सत्य-पथ दिखला दिया॥
है विशद उज्ज्वल उन्हीं की, ज्ञान-त्रिपुटी युक्त यह।
धर्म की आम्नाय सच्ची, क्लेश-द्वेष-विमुक्त यह॥

धर्म-ज्योति, धर्म - नेता, 'धर्मदास' आचार्य वर।
आम्नाय स्थानकवासियों- को गर्व है शुभ आप पर॥
दम, दया का, सत्य का, जयनाद जग में था किया।
अन्धकाराच्छन्न युग में, धर्म-दीप जला दिया॥
संघ उनका यह यशस्वी, सत्य का ही है पथिक।
प्रमुख गुण-पूजा यहां, होती सदा से है अधिक॥

शिष्य उनके थे यशस्वी, 'योगराज' महामुनि।
आचार्यवर सच्चे तपस्वी, थे मनस्वी सद्गुणी॥

सप्त व्यसनों का कराया, त्याग जन-जन को अकथ।
धर्म का -धोत कर, सब को दिखाया सत्य-पथ ॥
आप के ·चारित्र की थी, छाप जन-जन पर अटल।
जो ·शरण में आगया वह, कर गया जीवन सफल ॥

'श्री हजारीमल्ल' मुनिवर, शिष्य उनके अति विमल।
थे धनी छत्तीस गुण के, और निरमल ज्यों कमल ॥
दान का, सच्ची दया का, मर्म बतला कर प्रखर।
ज्ञान-नौका में बिठा, तारे हज़ारों अज्ञ नर ॥

'लालचन्द' अमन्द मतिधर, शिष्य उनके सरल थे।
धर्म के अवतार मानो, भावना से तरल थे ॥
प्राप्त कर श्रद्धा जगत की, वे अहं से दूर थे।
बोलते जब भी वचन वे, शान्त-रस भरपूर थे ॥

'पूज्य गंगाराम जी' थे, शिष्य उनके ज्ञान-धर।
धर्म का डंका बजाया, खेल करके जान पर ॥
समझलो सज्ज्ञान की, गंगा बहाई जगत में।
शान्ति, समता जग उठी थी, आपके हर भगत में ॥

जैन-अम्बर में चमकते, जो सितारे एक थे
'पूज्य जीवनराम जी', उज्ज्वल विमल सुविवेक थे ॥

शिष्य 'गंगाराम जी' थे, गाग[1]-सम पावन हृदय।
ज्ञान की गरिमा गज़ब थी, था अजस्र उनका विनय॥
घूम बांगड़ और दिल्ली; मारवाड़, प्रदेश में।
कष्ट भारी थे सहे, नव क्षेत्र के परिवेश में॥
शान्त आत्मा परम त्यागी, लौ जली थी ज्ञान की।
कामना करते निरन्तर, विश्व के कल्याण की॥

'भक्तराम' सुशिष्य उनके, भक्त प्रभु के थे अटल।
भक्ति-रस को बांट भक्तों- का किया जीवन सफल॥
अल्प भाषी, मधुर भाषी, भक्ति-रस में लीन थे।
सिंह-सम निर्भय विचरते, धर्म-मार्ग प्रवीण थे॥

शिष्य उनके अति यशस्वी, 'पूज्य श्री श्रीचन्द जी'।
मुनि-धर्म कर स्वीकार तोड़े, जगत के सब बन्ध जी॥
धर्म का उद्योत करके, नाश कर अज्ञान का।
क्या करूं वर्णन भला मैं, उस अलौकिक शान का॥
धर्म का झण्डा जगत में, आप ने लहरा दिया।
झूठ, शिथिलाचार को बस, आपने थर्रा दिया॥

---

१ गंगा-जल २ महिमा।

स्नेह उनके हृदय में था, और मीठे थे वचन।
था खिला जीवन उन्हीं का, ज्यों महकता हो चमन ॥
सप्त नय, नव तत्त्व का पुनि, सप्त भंग व द्रव्य का।
आप जब करते विवेचन, वह सभी को श्रव्य था ॥
गूढ़ तात्त्विक ज्ञान को भी, सरल सुबोध सु-स्पष्ट कर।
सरल शैली में बताते, श्रोतृ-जन का कष्ट हर ॥
थे खिचे आते सहस्रों, मनुज भेद-विभेद हर।
झूम उठते ज्ञान सुन कर, हृदय के सब खेद हर ॥
स्वर्ण जेसा वर्ण तन का, चमकता अति भाल था।
ब्रह्मव्रत के तेज से—, संदीप्त भाल विशाल था ॥
वृत्तियां मन की सरल थीं, शान्त रहते थे सदा।
साधुओं में आपका, सम्मान ऊंचा सर्वदा।

पूज्य श्री के शिष्य प्यारे, शान्ति-सागर धर्म-घर।
सन्त 'पन्नालाल जी'- गुरुदेव हैं मेरे प्रवर ॥
मोह ममता से रहित- जंजाल तोड़ा कर्म का।
त्याग का तप का खज़ाना, बहुत जोड़ा धर्म का ॥
स्वर्ण जैसी शुद्ध आत्मा, लीन प्रभु की भक्ति में।
शान्त हैं अक्लान्त हैं, अभ्रान्त आत्मिक शक्ति में ॥

है उन्हीं को ही कृपा, वरदान जीवन में मिला।
भाग्य का 'चन्दन मुनि' के, पुष्प नित रहता खिला॥
भक्ति युत सत्प्रेम मुझको, आज जनता दे रही।
ज्ञान के व्याख्यान सुनकर, ज्ञान भी कुछ ले रही॥

इस संक्षिप्त प्रशस्ति से, परम्परा का ज्ञान।
युग-युग तक होता रहे, 'चन्दन' ध्येय महान्॥
यथातथ्य वर्णन किया, नहीं अहं का लेश।
चन्दन काव्य-सुगन्ध को, देता रहा हमेश॥
मेरा-तेरा कुछ नहीं, सब कुछ मेरा मान।
चन्दन ! करना है अगर, हमें विश्व-कल्याण॥
जिनशासन के रसिक हों, जग के सारे जीव।
'चन्दन' दृढ़तम होयगी, तभी काव्य की नींव॥

शुभम्